नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सचूर्णिक-आगम-सुत्ताणि

भाग ७

आगम - ४३

"उत्तराध्ययन" निर्युक्ति एवं चूर्णि:

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से

श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर सूरीश्वरजी महाराज साहेब

श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब पचास साल पहेले परम पूज्य स्वर्गस्थ गच्छाधिपति आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है |

इस संघमें पूज्य साधू-भगवंत एवं साध्वी-महाराज के लिए उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है |

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सचूर्णिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

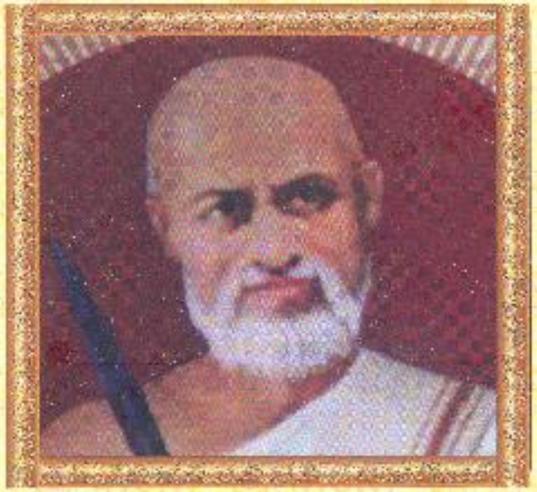

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

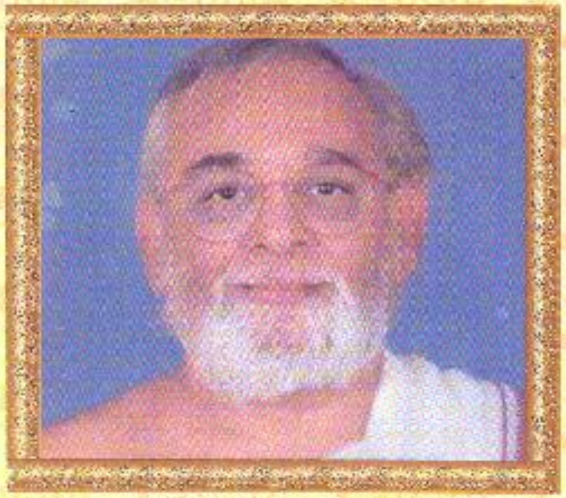

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

भाग-7 [४३] श्रीमन्ति उत्तराध्ययनानि

नमो नमो निम्मलदंसणस्स
पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"उत्तराध्ययन" निर्युक्ति: एवं चूर्णि:

[मूलं + भद्रबाहुस्वामी कृत् निर्युक्ति; + जिनदासगणि रचिता चूर्णि:]

[आद्य संपादक: - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म. सा.]
(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ **मुनि दीपरत्नसागर** (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

01/02/2017, बुधवार, २०७३ महा शुक्ल ५

'सचूर्णिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-७

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

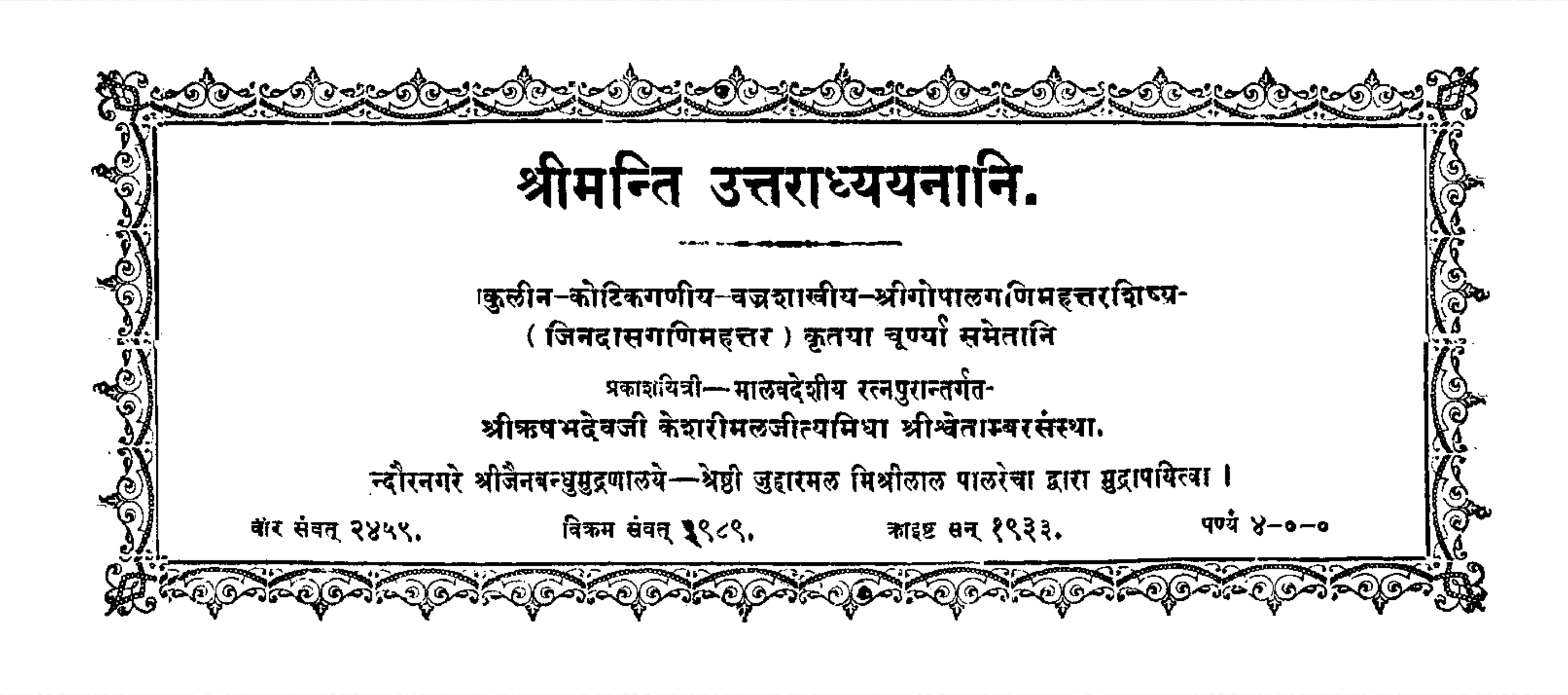

श्रीमन्ति उत्तराध्ययनानि.

कुलीन-कोटिकगणीय-वज्रशाखीय-श्रीगोपालगणिमहत्तरशिष्य-
(जिनदासगणिमहत्तर) कृतया चूर्ण्या समेतानि

प्रकाशयित्री—मालवदेशीय रत्नपुरान्तर्गत-
श्रीऋषभदेवजी केशरीमलजीत्यभिधा श्रीश्वेताम्बरसंस्था.

इन्दौरनगरे श्रीजैनबन्धुमुद्रणालये—श्रेष्ठी जुहारमल मिश्रीलाल पालरेचा द्वारा मुद्रापयित्वा ।

वीर संवत् २४५९. विक्रम संवत् १९८९. क्राइष्ट सन् १९३३. पण्यं ४-०-०

- **उत्तराध्ययन-चूर्णि: मूल "टाइटल पेज"**

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अव चूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ७०० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... ***......मुनि दीपरत्नसागर...***

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण* " इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना | *** मुनि दीपरत्नसागर...

~~~~~~

अनुदान दाता संस्था:- "श्री परम-आनंद श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ"

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठककर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब ५० साल पहेले परम पूज्य स्व. गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेंद्रसागरसूरीजी म०सा० ही है | इस संघमें पूज्य साधू भगवंत एवं साध्वीजीओ का उपाश्रय भी है जहा हर-साल चातुर्मास करवाके श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हूआ है |
~~~~~~

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सचूर्णिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ८ के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "स चूर्णिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई , उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे | समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रेज]पूना, शंखेश्वर, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.......मुनि दीपरत्नसागर

उत्तराध्ययन-चूर्णे: उपक्रम:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

श्रीउत्तराध्ययनचूर्णिः

प्राक् तावत् आवश्यकनन्दीअनुयोगद्वारदशवैकालिकनामधेयानामागमानां चूर्णयः संस्थयैतया प्रादुष्कृताः, अधुना तु श्रीमतामुत्तराध्ययनानां चूर्णिः प्रादुर्भाव्यते, यथा प्राक्तनचूर्णीनां मुद्रणे मूलसूत्राणि न धृतानि न च निर्युक्तिर्भाष्यं च धृते, किन्तु प्राङ्मुद्रितानामेव वृत्तिपुस्तकानां गाथाद्यंकाः पत्रांकाश्च धृताः तद्वदत्रापि न मूलसूत्राणि न च निर्युक्तिर्नापि भाष्यं च मुद्रितानि, किन्तु तत्र तत्र प्राङ्मुद्रितायाः श्रीशान्तिसूरिसूत्रितायाष्टीकाप्रतेः पत्रांका धृता गाथाद्यंका अपि तत्रस्था एव धृताः, एतस्या अपि चूर्णेः प्राङ्मुद्रितचूर्णीनामिव नात्यन्तमुपयोगः सूत्रार्थावगमे तथापि साहित्यरसिकानां पदार्थवैचित्र्यान्वेषणे भविष्यत्यवाप-योगोऽस्याः, प्रादुष्करणं चास्याः प्राचीनसाहित्यप्राकट्यायैव यतो नात्र ग्राहकसंख्या तथाविधा, भाषा प्राकृता विवृतिश्च संक्षिप्तेति हेतुरपि तत्र, भविष्यति चाशास्महे आचारांगसूत्रकृतांगभगवतीनां चूर्णीनां मुद्रणक्रिया, प्रार्थयामहे च सज्जनान् यदुत यत्किंचित् सूचनीयं विधाय कृपां ज्ञातव्यमिति

अलेख्यानन्दसागरैः

वीरसंवत् २४५९ आश्विनशुक्ला प्रतिपत्, सुरत

- उत्तराध्ययन-चूर्णे: पूज्यपाद आनंदसागरसूरीश्वरजी लिखित उपक्रम:

उत्तराध्ययन मूलसूत्रस्य विषयानुक्रम

मूलं	अध्ययनं	पृष्ठांक:	मूलं	अध्ययनं	पृष्ठांक:
०००१	०१ विनयसूत्तं	०१४	०२९१	१० द्रुमपत्रकं	१९९
००४९	०२ परिषह विभक्ति:	०५९	०३२८	११ बहुश्रुतपूजा	२०७
००९५	०३ चातुरंगियं	१०४	०३६०	१२ हरिकेशियं	२१४
०११५	०४ असंस्कृतं	११५	०४०७	१३ चित्रसंभूतियं	२२६
०१२८	०५ अकाममरणियं	१३९	०४४२	१४ इषुकारियं	२३३
०१६०	०६ क्षुल्लकनिर्ग्रन्थियं	१५५	०४९५	१५ सभिक्षुकं	२४६
०१७९	०७ औरभ्रियं	१७०	०५११	१६ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानं	२५५
०२०९	०८ कापिलियं	१८१	०५३९	१७ पापश्रमणियं	२५६
०२२८	०९ नमिप्रव्रज्या	१९०	०५६०	१८ संयतियं	२६०

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

मूलाङ्का: १६४०+८८ **उत्तराध्ययन मूलसूत्रस्य विषयानुक्रम** दीप-अनुक्रमा: १७३१

मूलांक:		अध्ययनं	पृष्ठांक:	मूलांक:		अध्ययनं	पृष्ठांक:
०६१४	१९	मृगापुत्रिकं	२६३	१०७६	२८	मोक्षमार्गगति:	२८४
०७१३	२०	महानिर्ग्रन्थियं	२६४	१११२	२९	सम्यक्त्वपराक्रमं	२८५
०७७३	२१	समुद्रपालितं	२७३	११८९	३०	तपोमार्गगति:	२८६
०७९७	२२	रथनेमियं	२७६	१२२६	३१	चरणविधि:	२८७
०८४७	२३	केशीगौतमियं	२७७	१२४७	३२	प्रमादस्थानं	२८८
०९३६	२४	प्रवचनमाता	२७९	१३५८	३३	कर्मप्रकृत्ति:	२९१
०९६३	२५	यज्ञकियं	२८०	१३८३	३४	लेश्या-अध्ययनं	२९१
१००७	२६	सामाचारी	२८२	१४४४	३५	अणगारमार्गगति:	२९२
१०५९	२७	खलुंकियं	२८३	१४६५	३६	जीवाजीव-विभक्ति:	२९३

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

["उत्तराध्ययन-चूर्णि:" इस प्रकाशन की विकास-गाथा]

यह प्रत सबसे पहले "श्रीमन्ति उत्तराध्ययनानि" के नामसे सन १९३३ (विक्रम संवत -१९८९) में रुषभदेवजी केशरमलजी श्वेताम्बर संस्था द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

✤ वृत्ति की तरह चूर्णी के भी दुसरे प्रकाशनों की बात सुनी है, जिसमे ऑफसेट-प्रिंट और स्वतंत्र प्रकाशन दोनों की बात सामने आयी है, मगर मैंने अभी तक कोई प्रत देखी नहीं है |

✤ - हमारा ये प्रयास क्यों? -✤ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने उन सभी प्रतो को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसके बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर श्रुतस्कंध-अध्ययन-उद्देशक-मूलसूत्र-निर्युक्ति आदि के नंबर लिख दिए, ताकिँ पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा अध्ययन, उद्देशक आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है|

✤ इस आगमचूर्णि के प्रकाशनोमें भी हमने उपरोक्त प्रकाशनवाली पद्धत्ति ही स्वीकार करने का विचार किया था, परंतु चूर्णि और वृत्ति की संकलन पद्धत्ति एक-समान नही है, चूर्णिमे मुख्यतया सूत्रों या गाथाओ के अपूर्ण अंश दे कर ही सूत्रो या गाथाओ को सूचित कर के पूरी चूर्णि तैयार हुई है, कईं निर्युक्तियां और भाष्य दिखाई नही देते, कोइ-कोइ निर्युक्ति या भाष्य के शब्दो के उल्लेख है, उनकी चूर्णि भी है पर उस निर्युक्ति या भाष्य स्पष्टरूप से अलग दिखाई नहि देते | इसीलिए हमें यहाँ सम्पादन पद्धत्ति बदलनी पड़ी है | हमने यहाँ उद्देशक आदि के सूत्रो या गाथाओ का क्रम, [१-१४, १५-२४] इस तरह साथमे दिया है, निर्युक्ति तथा भाष्यो के क्रम भी इसी तरह साथमे दिये है और बायीं तरफ़ उपर आगम-क्रम और नीचे इस चूर्णि के सूत्रक्रम और दीप-अनुक्रम दिए है, जिससे आप हमारे आगम प्रकाशनोंमे प्रवेश कर शकते है|

✤ शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैनसंघ, पालडी, अमदावाद की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सचूर्णिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-७ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ १ ॥

ॐ नमः श्रीसर्वज्ञाय ।

॥ श्रीउत्तराध्ययनचूर्णिः ॥

कयपवयणप्पणामो, वोच्छं धम्माणुयोगसंगहियं ।
उत्तरज्झयणणुयोगं, गुरूवएसाणुसारेणं ॥ १ ॥

अनुयोग प्रतिज्ञा

प्रोच्यन्ते अनेन जीवादयः पदार्था इति प्रवचनम्, अथवा प्रगतं प्रधानं प्रशस्तमादौ वा वचनं प्रवचनं, तत् द्वादशांगं, तदुपयोगानन्यत्वाद्वा सङ्घः, प्रणमनं प्रणामः पूजेत्यर्थः, कृतः प्रवचनप्रणामो येन स कृतप्रवचनप्रणामः, 'वोच्छं' वक्ष्ये, 'धम्माणुयोगसंगहियं' ति, इह चत्वारोऽनुयोगाः प्रोच्यन्ते, तद्यथा—चरणकरणाणुयोगो, धम्माणुयोगो, गणिताणुयोगो, दव्वाणुयोगोत्ति, तत्थ चरणकरणाणुयोगो कालियसुताति, धम्माणुयोगो इसिभासितादि, गणिताणुयोगो सूरपण्णत्तादि, दव्वाणुयोगो दिट्ठिवादोत्ति, अत्र धम्माणुयोगेनाधिकारः, समस्तं गृहीतं संगृहीतम् आख्यातं प्ररूपितमित्येकोऽर्थः, किं तत् ?-उत्तरज्झयणाणुयोगं, उत्तरज्झयणाणि वा उवरिं भण्णिहन्ति, अणुयोजनमनुयोगः अर्थव्याख्यानमित्यर्थः, उत्तराध्यायानामनुयोगः तमुत्तराध्या- ॥ १ ॥

***अथ चूर्णिकार-कृत् अनुयोग-प्रतिज्ञा दर्शयते

यानुयोगं, गृणंति शास्त्रार्थमिति गुरवः ब्रुवन्तीत्यर्थः, ते पुनराचार्या अर्हदादयो वा तदुपदेशः—तदाज्ञा, गुरूपदेशानुवृत्तिरित्यर्थः, तथा गुरूपदेशानुवृत्त्या, गुरूपदेशानुसारेणंति ॥

॥ २ ॥ तस्स फलजोगमंगलसमुदायत्था तहेव दाराइं ।
तब्भेदनिरुत्तिकम, पओयणाइं च वच्चाइं ॥ २ ॥

'तस्ये' ति तस्योत्तराध्ययनानुयोगस्य फलं-प्रयोजनं योगः—सम्बन्धो मङ्गलं-उपचारः समुदायार्थः-पिण्डार्थः द्वाराणि-उपक्रमादीनि, 'तदि' त्यनेन द्वाराण्येव संबन्ध्यन्ते इति, तद्भेदाः-तत्प्रकाराः, निरुक्तिः—निर्वचनं क्रमो—व्यवस्था प्रयोजनं—शास्त्रोपकारः, एते अधिकारा वाच्याः । आह—किमुत्तराध्ययनानुयोगे फलम् ?; उच्यते, इह जीवस्स अट्ठविहकम्मबंधणबद्धस्स सम्मदंसणनाणचरित्तेहिं मोक्खो भवति, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकानि चोत्तराध्ययनानि अतः तद्व्याख्यानारम्भः, पायेण च न धर्म्मकथामन्तरेण दर्शनादिप्राप्तिरस्ति, अतस्तद्विकलस्याकारणता, कारणतश्च कार्यसिद्धिरस्तीत्यत उत्तराध्ययनानुयोगाद्दर्शनादिप्राप्तिः, ततो मोक्ष इति फलवानुत्तराध्ययनानुयोगारम्भ इति। कः पुनरुत्तराध्ययनानुयोगस्याभिसंबन्ध इति ?, उच्यते, उत्तरज्झयणा पुव्वं आयारस्सुवरिं आसि, तत्थेव तेसिं उवोद्घातसंबंधाभिवत्थाणं, ताणि पुण जप्पभिइं अज्जसेज्जंभवेण मणगपितुणा मणगहियत्थाए णिज्झहियाणि दस अज्झयणाणि दसवियालियंमित्ति, तम्मि चरणकरणाणुयोगो वण्णिज्जति, तप्पभिइं च तस्सुवरि ठविताणि, एतेणाभिसंबंधेणुत्तरज्झयणाणि आगताणि, अहवा साधुगुणसंजुत्तं कोई धम्मं पुच्छेज्जा, पच्छा सो तेसिं विण- ॥ २ ॥

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने

॥ ३ ॥

मंगलं

यसंजुत्ताणं धम्मं परिकहेइ चउव्विहाते कहाते, तं०-अक्खेवणीए विक्खेवणीए संवेयणीए निव्वेयणीए, तत्थ परीसहेहिं अक्खित्ता चाउरंगिज्जे विक्खित्ता असंखतेणं संवेगमागच्छंति, उवरिमेसु णिव्वेयमागच्छंति, एस अभिसंबंधो। इदाणिं मंगलंति–' बहुविग्घाइं सेयाणि तेण कयमंगलोवयारेहिं। घेत्तव्वो सो सुमहाणिहिव्व जह वा महाविज्जा ॥ १ ॥ तं मंगलमादीए मज्झे पज्जंतए य सत्थस्सा। पढमं सत्थत्थाविग्घपारगमणाय णिद्दिट्ठं ॥ २ ॥ तस्सेव य थिज्जत्थं, मज्झिमयं अंतिमंपि तस्सेव। अव्वोच्छित्तिणिमित्तं सिस्सपसिस्सादिवंसस्स ॥ ३ ॥ आह–आचार्य! मङ्गलकरणात् शास्त्रं तेऽमंगलमापद्यते, अथवेह मङ्गलात्मकस्यापि शास्त्रस्य अन्यन्मङ्गलमुच्यते अतस्तस्याप्यन्यत्तस्याप्यन्यन्मङ्गलमादेयम्, इत्यतोऽनवस्था, नचेदनवस्था प्रतिपद्यते ततो यथा मङ्गलमपि शास्त्रं अन्यमङ्गलशून्यत्वादमङ्गलं तथा मङ्गलमग्रेऽन्यमंगलशून्यत्वादमङ्गलमिति भावः, उच्यते, यस्य शास्त्रादर्थान्तरभूतं मङ्गलं तं प्रत्येषा कल्पना भवेत्, इह त्वस्माकं शास्त्रमेव मङ्गलं, यद्यत्र मङ्गलमुपादीयते किमत्रामङ्गलं का वाऽनवस्थेति, नायमस्माकं पक्षे, किन्तु यस्यापि शास्त्रादर्थान्तरभूतं मङ्गलं तस्यापि नामङ्गलप्रसंगो न चानवस्था, कुतः ?, स्वपरानुग्रहकारित्वान्मङ्गलस्य प्रदीपवत् लवणादिवद्वा, आह—मङ्गलत्रयान्तरालद्वयं न मङ्गलमापद्यते, अर्थापत्तितः, यदि चेह सर्वमेव शास्त्रं मङ्गलमिति प्रतिपाद्यते, मङ्गलत्रयग्रहणमनर्थकम्, उच्यते, समस्तमेव शास्त्रं तथा विभज्यते, कुतोऽन्तरालद्वयपरिकल्पनं? यदमङ्गलं भवेत्, तत्कथं पुनः सर्वमेव शास्त्रं मङ्गलमिति चेदुच्यते, निर्जरार्थत्वात्तपोवत्, आह–यदि स्वयमेव शास्त्रं मङ्गलमित्यतः किमिह मङ्गलग्रहणं क्रियते ?, उच्यते, ननूक्तं नैवेह शास्त्रादर्थान्तरभूतं मङ्गलमुपादीयते, किन्तु मङ्गलमिदं शास्त्रमिति केवलमुच्चार्यते, आह-तदुच्चारेण किं फलं?, यदि मङ्गलमिति न संशब्द्यते किं तदमङ्गलं भवति ?, उच्यते, ॥ ३ ॥

*** अत्र शास्त्रकार-कृत् 'मङ्गलं' निरूप्यते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ४ ॥

समुदायार्थे मंगलार्थोऽनुयोगः

शिष्यमतिमङ्गलपरिग्रहार्थमत्र तदभिधानम्, इह शिष्यः कथं शास्त्रं मङ्गलमित्येवं परिगृह्णीयादिति, यस्माहिह मङ्गलमपि मङ्गलबुद्धया परिगृह्यमाणं मङ्गलं भवति, साधुवत्, आह—ततः सर्वमेवेदं मङ्गलमित्येतावदस्तु, नार्थो मङ्गलत्रयबुद्धिपरिग्रहेण?, उच्यते, ननु तत्रापि कारणमुक्तं--यथैत्र हि शास्त्रं मङ्गलमपि सत् न मङ्गलबुद्धिपरिग्रहमन्तरेण मंगलं भवति साधुवत्, तथा मंगलत्रयकरणमवि, अविघ्नपारगमनादि न मंगलत्रयबुद्धया विना सिद्ध्यतीति अतस्तदभिधानमिति, मंगेर्गत्यर्थस्य अलप्रत्ययान्तस्य मङ्गलमिति रूपं भवति, गम्यतेऽनेन हितमिति मंगलं, गम्यते साध्यत इतियावत्, अथवा मङ्गो धर्मो, ला आदाने, मङ्गं लातीति मंगलं, अथवा मां गालयते भवादिति मङ्गलं, संसारादपनयतीत्यर्थः, अथवा शास्त्रस्य मा गलो भूदिति मङ्गलं, गलो-विघ्नं, मा गलो वर्त्तीदिति मङ्गलं, गलनं गालो नाश इत्यर्थः, तत्र मंगलं चतुर्विधं, तंजहा—नाममङ्गलं ठवणामङ्गलं दव्वमंगलं भावमङ्गलमिति, एवं चउव्विहमवि आवस्सकाणुक्कमेण परूवेऊण भावमंगलं णंदी, सा तहेव चउव्विहा, तत्थावि भावणंदी पंचविहं नाणं, तंपि आवस्सगाणुक्कमेण परूवेतव्वं जाव केवलनाणं, णंदी मंगलमिति चेह परिसमत्ताइं, अहुणा स मङ्गलत्थो भण्णति, पगओ अणुयोगोऽत्थि, केवलज्ञानमिह परिसमापितं, तत्समाप्तौ च नन्दी तत्समाप्तौ च मङ्गलमिति ॥ इदानीं मङ्गलार्थोऽनुयोगः, मङ्गलमर्थोऽस्येति मङ्गलार्थः, अथवा अर्थ्यतेऽसावित्यर्थः, गम्यते साध्यत इतियावत्. मङ्गलस्यार्थो मङ्गलार्थः, मङ्गलसाध्य इत्यर्थः, स च कः?, प्रकृतोऽनुयोगः, प्रकृतोऽधिकृत इत्यर्थः, सोऽनुयोगो मतिज्ञानादीनां कतमस्य इति?, उच्यते, श्रुतज्ञानस्य, न शेषाणाम्. अपराधीनत्वात् अपरप्रबोधकत्वाच्च, श्रुतं तु प्रायेण यतः पराधीनं परप्रबोधकं च प्रदीपवत्, अनुयोगश्च परप्रबोधनायारभ्यते अतः श्रुतस्यैवासाविति, आह—ननूत्तराध्ययनानामनुयोगं वक्ष्यामीत्युक्त·

॥ ४ ॥

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ५ ॥

उत्तर-निक्षेपाः

मैवासौ, कः पुनः कस्य ज्ञानस्येति किमनया चिंतया ?, उच्यते, इह श्रुतज्ञानस्यानुयोग इत्यभिधानादेवोत्तराध्ययनं श्रुतविशेष इत्युक्तं भवति, आह—अनुयोग इति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, श्रुतस्य स्वेनार्थेनानुयोजनमनुयोगः, अथवा सूत्रस्याभिधेयव्यापारो योगः अनुरूपः अनुकूलो वा योगः अनुयोगः, अथवा अर्थतः पश्चादभिधानात् स्तोकत्वाच्च सूत्रमनु तस्याभिधेयेन योजनमनुयोगः। आह-यद्येवमुत्तराध्ययनानामनुयोगः तच्च श्रुतविशेषः, अतस्तत्किं अङ्गं अङ्गाइं सुयक्खन्धो श्रुतस्कन्धाः अज्झयणं अज्झयणा उद्देसो उद्देसा ?, उत्तरज्झयणाणि णो अङ्गं नो अङ्गाइं सुतक्खन्धो नो सुयक्खन्धा नो अज्झयणं अज्झयणा णो उद्देसो णो उद्देसा, तम्हा उत्तरं णिक्खिविस्सामि अज्झयणं णिक्खिविस्सामि सुत्तं णिक्खिविस्सामि खंधं निक्खिविस्सामि, तत्थ पढमं दारं उत्तरंति, तत्थ इमा णिज्जुत्तिगाहा—' णामंठवणा ' गाहा (१-२ पत्रे) तं उत्तरं पनरसविहं, तं०—णामुत्तरं ठवणुत्तरं दव्वुत्तरं खेत्तुत्तरं दिसुत्तरं ५ तावखेत्तुत्तरं पण्णवगुत्तरं पति० कालु० संचयु० १०पधाणु०णाणु०कमु० गणणु०भावुत्तर१५मिति, तत्थ णामुत्तरं जस्स उत्तरेत्ति णामं कज्जति, ठवणुत्तरं अक्खणिक्खेवादी, अहवा चित्तकम्मादिसु उत्तरा दिसा ठाविता, दव्वुत्तरं जाणगसरीर० भवियसरीर०, तव्वतिरित्तं खीराउ दधि, तत्थ पुव्वं खीरं उत्तरं दधि, खेत्तुत्तरं उत्तराः कुरवः, अहवा पुव्वं सालिखेत्तं आसि पच्छा उच्छुखेत्तं जातं एवमादी, दिसुत्तरं उत्तरा दिसा, तावखेत्तुत्तरं मंदरो पव्वतो, सव्वेसिं उत्तरेण भवति, पण्णवयुत्तरं पण्णवगस्स जं वामं तदुत्तरं, प्रतिउत्तरं एगसोऽवत्थितताणं देवदत्तजण्णदत्ताणं देवदत्ताओ जण्णदत्तो उत्तरो भवति, कालुत्तरं पुव्वं समयो पच्छा आवलिया, अहवा पुव्वकालाओ पच्छाकालो उत्तरो भवति, यथा 'पूर्वोत्तरविरुद्धार्थं, भारतं तु युधिष्ठिर !। ॥ ५ ॥
कथं ?, पूर्वमन्यथोक्त्वा पश्चादन्यथोपदिष्टवान्, संचगुत्तरं संचयस्सोवरि ववत्थितं तिणं कट्ठं पत्तं वा तं संचयुत्तरं, पहाणुत्तरं,

*** अत्र 'उत्तर' शब्दस्य नामादि निक्षेपा: वर्णयते

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ६ ॥

पहाणुत्तरं तिविहं, तं०—सच्चित्तं अच्चित्तं मीसंति, सच्चित्तपहाणुत्तरं तिविहं, तं०—दुपयं चउप्पयं अपयंति, दुपदेसु तित्थंकरो चउपदेसु सीहो अपदेसु रुक्खाणं जंबू सुदंसणा, पणसं कताणं फलाणं, अचित्ताणं मणीणं वेरुलियमणी सुवण्णाणं वद्दणसुवण्णं, मीसपहाणुत्तरं दुपदेसु जहा स एव भगवं तित्थगरो गिहवासे सव्वालंकारविभूसितो, णाणुत्तरं केवलणाणं, सव्वणाणुत्तरं सुयनाणं, जओ-सुयनाणं महिड्डीयं, केवलं तयणंतरं। अप्पणो य परेसिं च, जम्हा तं परिभावगं ॥ १ ॥ अथवा श्रुतज्ञानं ज्ञानोत्तरं, कमुत्तरं क्रमः परिपाटी आनुपूर्वी इत्यर्थः, कमुत्तरं चउव्विहं, तं०-दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ, दव्वओ परमाणुपोग्गलस्स दुपएसिओ उत्तरो दुपएसियस्स तिपएसियो एवं जाव अंतिमो अणंतपएसिओ खंधो, खेत्तओ एगपएसोगाढस्स दुपएसोगाढो उत्तरं, एवं जाव अंतिमो असंखेज्जपएसोगाढत्ति, कालओ एगसमयठितियस्स दुसमतठितिओ उत्तरो एवं जाव अंतिमो असंखेज्जसमयठितीउत्ति, भावओ वण्णादीणं एक्केक्के एगगुणा(इ)पदक्कमो जाव अणंतगुणपज्जवसाणोत्ति, गणणाउत्तरं गणेज्जंताणं एक्कगाउ दुरुत्तरो दुगाउ तिगो एवं जाव सीसपहेलियत्ति, भावुत्तरो खातिओ भावो, उत्तरो सर्वोत्कृष्ट इत्यर्थः। एतेसिं लक्खणं 'जहन्नं सउत्तरं खलु' गाहा (२-४) जहन्नं आद्यमित्यर्थः, जहण्णो परमाणू स उत्तरो एवं जाव अंतिमो खंधो अणंताणंतपएसिओ णिरुत्तरो, सेसा खंधा सउत्तरा अणुत्तरा य भवंति, एवमिहापि विणयसुयं सउत्तरं जीवाजीवाभिगमो णिरुत्तरो, सर्वोत्तर इत्यर्थः, सेसज्झयणाणि सउत्तराणि णिरुत्तराणि य, कहं ?, परीसहा विणयसुयस्स उत्तरा चउरंगिज्जस्स तु पुव्वा इतिकाउं णिरुत्तरा, एवं णेयं ॥ एत्थ कयरेणुत्तरेणाहिगारो ?, उच्यते, 'कमुत्तरेण पगयं' गाहा (३-५) उत्तरज्झयणाणि आयारस्स उवरिं आसित्ति तम्हा उत्तराणि भवंति। एयाणि पुण उत्तरज्झयणाणि कओ केण वा भासियाणित्ति ?, उच्यते, 'अंगप्प-

अंगादिप्रभवान्युत्तराणि ॥ ६ ॥

प्रत सूत्रांक [-] दीप अनुक्रम [-]

भवा ' गाहा (४-५) तत्थ अंगप्पभवा जहा परीसहा बारसमाओ अंगाओ कम्मप्पवायपुव्वाओ णिज्जूढा, जिणभासिया जहा दुमपत्तगादि, पत्तेयबुद्धभासियाणि जहा काविलिज्जादि, संवाओ जहा णमिपव्वज्जा केसिगोयमेज्जं च, तं एते सव्वेव बंधप्पमोक्खत्थं छत्तीसं उत्तरज्झयणा कया । उत्तरंति भणियं, इयाणिं उत्तरज्झयणंति तस्सेवेगट्ठियाणि, अज्झयणंति वा अज्झीणंति वा आउत्ति वा झवणत्ति वा, एएसिं निरुत्तं भण्णति-सुतं अज्झप्पं जणेतित्ति अज्झप्पजणणं, प्पकारणकाराणं लोवातो अज्झयणंति, अहवा अज्झप्पाणयणं प्पकारणकारागारलोवातो अज्झयणंति, अहवा बोधादीनामाधिक्येन अयनमध्ययनं, अयनं गमनमित्यर्थः, अक्षीणमर्थिभ्यो दीयमानमधवा अव्यवच्छित्तिनयोपदेशाल्लोकवन्नित्यं, आयो लाभः प्राप्तिरित्यनर्थान्तरं, कस्य ?, ज्ञानादीनां, क्षपणा अवचयो निर्जरेति पर्यायः, कस्य?, पापानां कर्मणामिति ॥ अधुणा निज्जुत्ती पवित्थारेति-'णामंठवणज्झयणे' गाहा (५-६) अज्झयणं णामादि चउव्विहं, दव्वज्झयणं पत्तयपोत्थयलिहियं, भावज्झयणं इमाणि चेव उत्तरज्झयणाणि, तत्थ गाहाउ 'अज्झप्पस्साणयणं' गाहा (६-६) 'अधिगम्मंति व अत्था' गाहा (७-७) जथा एयाणि पढंतो सुणंतो गुणंतो अज्झप्पे य अप्पाणं णिउंजति तम्हा अज्झयणंति, अज्झीणंपि एमेव नामादिचउव्विहं, दव्वज्झीणं सव्वागाससेढी, भावज्झीणं 'जह [वा] दीवा दीवसयं' गाहा(८-७)आयोवि णामादि चउव्विहो, दव्वाओ सच्चित्तादीणं दव्वाणं आयो, भावाओ दुविहो-पसत्थो अपसत्थो य, तत्थ गाहा 'भावे पसत्थ' गाहा (९-७) भावाओ पसत्थो तिविहो, तं०-णाणाओ दंसणाओ चरित्ताओ, अप्पसत्थो भावाओ कोवायादिओ, ज्झवणावि णामादिया चउविहा, दव्वज्झवणा 'पल्लत्थिया अपत्था' गाहा (१०-८) भावज्झवणं दुविहं-

१ वृत्तौ यद्यपि क्षपणाया न प्रशस्तेतरतया विभागः, तथाप्यत्र कर्मरजसो ज्ञानादेरावारकत्वादप्रशस्तक्षपणात्वं, तत्क्षपणासाधनानां च ज्ञानादीनां प्रशस्तक्षपणात्वमुक्तं.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पसत्थभावज्झवणं अप्पसत्थभावज्झवणं च, अप्पसत्थभावज्झवणा इमा गाहा 'अट्ठविहं' गाहा (११-८) पसत्थभावज्झवणा णाणादीणि, अज्झयणत्ति गतं। इदाणिं सुत्तं, तंपि णामादिचउव्विहं जहा अणुयोगद्दारे, भावसुत्तं तं दुविहं-आगमओ णोआगमतो य, आगमतो जाणए उवउत्ते, णोआगमतो एयाणि चेव उत्तरज्झयणाणि सामित्तासंबद्धाणि । खंधोऽवि जहा अणुयोगद्दारे, भावखंधो एतेसिं चेव छत्तीसाए उत्तरज्झयणाणं समुदयसमितिसमागमेणं उत्तरज्झयणभावसुतक्खंधेति लब्भइ, ताणि पुण छत्तीसं उत्तरज्झयणाणि इमेहिं नामेहिं अणुगंतव्वाणि 'विणयसुयं च परीसह' गाहाओ जाव 'जीवजीवाभिगमो'त्ति(१३-१७।९) एतेसिं इमे अत्थाहिगारा भवंति, तंजहा-'पढमे विणओ' गाहा, एवं अत्थाहिगारगाहा भाणियव्वाओ (१८-२६।१०)एवमुत्तरज्झा[२]णाण पिंडत्थे वण्णितो समासेणं । एत्तो एक्केक्कं पुण अज्झयणं कित्तइस्सामि ॥ १ ॥ (२७-१०) समुदायत्थो गतो,

इदाणिं दाराणिं,तत्र प्रथममध्ययनं विनयसुत्तामिति,विनयो यस्मिन् सूत्रे वर्ण्यते तदिदं विनयसूत्रं,विनयमूलत्वाच्च धर्म्मस्य सर्वगुणाधारभूतं, यतो न विनयशून्ये गुणावस्थानमिति, तस्य महापुरस्येव द्वाराण्यनुयोगद्वाराणि चत्वारि, अनुयोग इत्यध्ययनार्थः, द्वाराणि तत्प्रवेशमुखानि, यथेह पुरमद्वारमधिगन्तुमशक्यं, एकद्वारमपि च कृच्छ्रेणाधिगम्यते कार्यात्तिपत्तये च भवति, चतुर्भिः पुनर्मूलद्वारैश्च सुखेनाधिगम्यते न च कार्यातिपत्तये भवति, तद्वद्विनयसूत्रमहापुरमपि अर्थाधिगमोपायद्वारशून्यमशक्यमधिगन्तुम्, अनुगमैकद्वारमपि तत्कृच्छ्रेण द्राघीयसा च कालेनाधिगम्यते,विहितसप्रभेदोपक्रमद्वारचतुष्टयं पुनरयत्नेनाल्पीयसा च कालेनाधिगम्यते इति द्वारोपन्यासः । तानि चानुयोगद्वाराणीमानि, तं०-उवक्कमो निक्खेवो अणुगमो णया इति।।इयाणिं तब्भेदो,उवक्कमो छव्विहो, णिक्खेवो

२ उत्तरज्झयणाणेसो वृत्तौ.

अत्र अध्ययन -१- "विनय" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [-] दीप अनुक्रम [-]

तिविहो, अनुगमो दुविहो, णयो सत्तविहो॥इदाणिं निरुत्ती, तत्र शास्त्रस्योपक्रमणमुपक्रमः उपक्रम्यतेऽनेनेति अस्मिंश्चेति,उप सामीप्ये क्रमु पादविक्षेपे, शास्त्रसमीपीकरणं शास्त्रस्याभ्यासदेशानयनमित्यर्थः, तथा निक्षिप्यते अनेनेति अस्मिन् वेति निक्षेपणं वा निक्षेपः, 'क्षिप प्रेरण' इति नियतो निश्चितो वा क्षेपः निक्षेपः न्यासः स्थापनेतियावत्, अनुगम्यतेऽनेनास्मिंश्चेति अनुगमनं अनुगमः,अणुनो वा सूत्रस्य गमोऽनुगमः, सूत्रानुसरणमित्यर्थः, णीञ् प्रापणे, तस्य नय इति रूपं, वक्तैव सूत्रार्थप्रापणे गम्ये परोपयोगान्नयति नयः, नीयते चानेन अस्मिन्वेति नयनं वा नयः, वस्तुनः पर्यायाणां संभवतोऽधिगमनमित्यर्थः, एषां चोपक्रमादिद्वाराणामयमेव क्रमः, यतो नानुपक्रान्तं-असमीपीभूतं सन्निक्षिप्यते, न च नामादिभिरनिक्षिप्तमर्थतोऽनुगम्यते, न च नयमतविकलोऽनुगम इति, यतस्तु शास्त्रं संबन्धात्मकेन उपक्रमेण स्थापनासमीपमानीय नामादिन्यस्तनिक्षेपमर्थतोऽनुगम्यतेऽनुगम्यते नाम नयैः, अतोऽयमेवानुयोगद्वारकम इति । तत्थोवक्कमो छव्विहो, तं०—णामोव० ठवणोव० दव्वोव० खेत्तोव० कालोव० भावोव० जहावस्सए जाव अहवा भावोवक्कमो छव्विधो, तंजहा—आणुपुव्वी नामं पमाणं वत्तव्वया अत्थाहिगारो समोयारो, सव्वं एयं अणुओगदाराणुक्कमेण परूवेऊण इमं विणयसुतज्झयणं जत्थ जत्थ समोयरति तत्थ तत्थ समोयारेतव्वं,तत्थाणुपुव्वी दसविहा,तं -णामाणुपुव्वी ठवणाणुपुव्वी दव्वाणु०खेत्ताणु०कालाणु० ५ उक्कित्तणाणु० गणणाणु०संठाणाणु० सामायारीआणुपुव्वी भावाणु० १०, एत्थ उक्कित्तणगणणाणुपुव्वीसु समोयरइ, उत्कीर्त्तनं—संशब्दनं, तं०-विनयसुतं परीसहा इत्यादि, गणणं परिसंखाणं एक्कं दो तिन्नि इत्यादि, तत्र विणयसुयं पुव्वाणुपुव्वीए पढमं, पच्छाणुपुव्वीए छत्तीसइमं, अणाणुपुव्वीए अणिययं, कयाइ पढमं कयाइं बितियं इत्यादि, अणाणुपुव्वीइ इमं करणं एगादियाए एगुत्तरीए छत्तीसगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरुवूणोत्ति, पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनया-ध्ययने

॥ १० ॥

आनु-पूर्व्यादि

य दोवि फेडियाओ सेसाओ अणाणुपुव्वीओ भण्णंति, इमाउ पत्थारगाहाओ—एगादी उत्तरिवड्डिताण ठाणाण इच्छियाणं तु । जो जो आदी य भवे सो सो तु अणंतरो णेओ॥१॥ जहियं त णिक्खेत्रो(जहियंमि उ णिक्खित्ते) पुणरवि सो चेव होइ निक्खेवो । सो होइ समयभेदो वज्जेयव्वो ततो नियमा ॥ २ ॥ पुव्वाणुपुव्वि हेट्ठा समयाभेदेणऽणंतरो देयो । उवरिमतुल्लं पुरतो हस्सो हस्सादि तो सेसो ॥३॥ असती अणंतरस्स उ देयोऽणंतर अणंतरो तत्तो। तत्तोऽवि परतरो पुण ता जाव अणंतरो णत्थि ॥४॥ एवं तिसु ट्ठाणेसु पत्थारं दंसेइ १२३, एस पुव्वाणुपुव्वी, तत्थेगस्स अणंतरो णत्थि, दुण्हणंतरो एक्को तत्तो दुण्हं हेट्ठा एक्कं ठावेऊण उवरिमतुल्लं ठवेति तिण्हं हेट्ठा तिन्नि निक्ख० आदीय बेण्णि से, जाता २१३, ततियपरिवाडीए (दोण्हमणंतरो एको, तं जति ठवेति समयभेदो भवति, एक्कस्साणंतरो णत्थित्ति तिण्हमणंतरो दुगो दिज्जइ; एगं तिगं च आईए, जातं १३२, चउत्थपरिवाडीए) एक्कस्सऽणंतरो दुगो तं जति ठवेति समयभेदो भवति, तो अणंतराणंतरं ठवेति एक्कं, उवरिमतुल्लं दो दोण्हं हेट्ठा ठवेज्जाऽऽईए तिन्नि ठवेति, जातं ३१२, पंचमपरिवाडिए तिण्हाणंतरे दो तं जति ठवेति तो समयभेदो भवति, अणंतराणंतरो एक्को तेणवि समयभेदो भवति, तओ तिण्हं हेट्ठा ण ठवेति, एगस्साणंतरो णत्थि तत्थवि ण ठवेति, दोण्हाणंतरो एक्को ततो दोण्हं हिट्ठा एक्कं ठवेति, आदीए हस्सत्ति बे तिण्णि य, जातं२३१, छट्ठपरिवाडीए दोण्हाणंतरो एक्को, तेण समयभेदो भवति, तो तीण्णाणंतरो दो तं ठवेति, उवरिमं तुल्लं नसे इक्कं, आदीए ठवे तिन्नि, जाता पच्छाणुपुव्वी ३२१, एवं तिसु चत्तारि अणाणुपुव्वीओ, एवं सेसावि पत्थारा नेया । इह यद्वस्तुनो अभिधानं जातिरूपादिपर्यायप्रभेदानुसरणस्वभावं तन्नाम नमनं प्रह्वित्वमिति, वस्तु नमनात्–प्रतिवस्तु नमनात् भवनादित्यर्थः, तच्च दशप्रभेदमेकनामादि बहुभेदं वाऽभिलाप्यविषयत्वात्,

॥ १० ॥

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ११ ॥

प्रमाणावतारः

तत्थ छव्विहे णामे भावो छव्विहो वण्णिज्जति, तत्र क्षायोपशमिक एव श्रुतावतारो नान्यत्र, श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमजत्वात् श्रुतस्य, प्रमाणं दव्वादि चउव्विहं, प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणं, तत्थ भावप्पमाणे समोयरति, भावगुणप्पमाणं च तिविहं–गुणप्पमाणं णयप्पमाणं संखप्पमाणं, गुणप्पमाणं दुविहं—जीवगुणप्पमाणं अजीवगुणप्पमाणं च, ततो जीवाऽन्यत्वाद्विनयसूत्रस्य जीवगुणप्पमाणे समोतरति, तं तिविहं—णाणगुणप्पमाणं दंसणगुणप्पमाणं चरित्तगुणप्पमाणं, तत्र बोधनात्मकत्वाद्विनयसूत्रस्य णाणगुणप्पमाणे समोतरति, णाणगुणप्पमाणं चउव्विहं, तं०- पच्चक्खं अणुमाणं उवंमं आगम इति, तत्थ विणयसुयस्स प्रायशः परोपदेशकत्वादागमप्रमाणेऽवतारो, आगमो दुविहो—लोइओ लोउत्तरिओ य, लोउत्तरे समोयरति, लोउत्तरो दिविहो- सुत्तं अत्थो तदुभयंति, तिसुवि समोयरति, सो तिविहो—सुत्तागमो अणंतरागमो परंपरागमो (तत्थ सुत्तओ थेराणं अत्तागमो अत्थओ अणंतरागमो, थेरसिस्साणं सुत्तओ अणंतरागमो अत्थओ परंपरागमो, तेण परं सुत्तओवि अत्थओऽवि) नो अत्तागमो नो अणंतरागमो, परंपरागमो, गतं गुणप्पमाणं । मूढणयियं कालियं सुत्तंति नाधुना नयप्रमाणावतारः, 'आसि पुरा सो णियते अणुयोगाणमपुहुत्तभावंमि । संपति णत्थि पुहुत्ते होज्ज व पुरिसं समासज्जा ॥ १ ॥ संखप्पमाणं अट्ठविहं—णामसंखा ठवणसंखा दव्व० उवम्म० परिमाण० जाणणासंखा गणणा० भावसं०, तत्थ परिमाणसंखाए अवतरति, सा दुविहा—कालियसुत्तपरिमाणसंखा य दिट्ठिवायसुतपरिमाणसंखा य, तत्थ कालियसुत्तपरिमाणसंखाए समोतरति, कालियसुतपरिमाणसंखा अणेगविहा पज्जवसंखा अक्खरसंखा संघातसंखा पदसंखा पायसंखा गाहा० सिलोग० वेढग० निज्जुत्ति० अणुओगद्दार० उद्देश० अज्झयण० सुयक्खंध० अंगसंखा वेति, तत्थ विणयसुतं सूत्रतः परित्तपरिमाणी, परिमितपरिमाणमित्यर्थः, ॥ ११ ॥

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ १२ ॥

वक्तव्याधिकारः निक्षेपाः

अर्थतोऽनन्तपर्यायत्वादनन्तपरिमाणं, तेण अनंता पज्जवा संखेज्जा अक्खरा संखेज्जा संघाता संखेज्जा पदा संखेज्जा पादा संखेज्जा सिलोगा एगा णिज्जुत्ती संखेज्जा अणुयोगद्दारा एगे अज्झयणे, वत्तव्वया तिविधा—ससमयवत्तव्वया परसमयवत्तव्वया ससमयपरसमयवत्तव्वया, तत्र समयः सिद्धान्तः वक्तव्यता—पदार्थविचारः, तत्र स्वसिद्धान्तवक्तव्यतानियमितमिदमध्ययनं, याऽपिहि क्वचिदध्ययने परसिद्धान्तोभयवक्तव्यता वाऽनुश्रूयते साऽपि हि यतः सम्यग्दृष्टेस्तत्त्वदर्शनपरिग्रहात् स्वसमयवक्तव्यतैवेत्यतः सर्वाध्ययनानि स्वसमयवक्तव्यतानियतानि— मिच्छत्तमअहमयं सम्मत्तं जं च तदुवगारंमि । वट्टति परसिद्धान्तो तो तस्स ततो ससिद्धान्तो ॥ १ ॥ अथ अर्थाधिकारो, सो विणएणं,—अधुणा समोवतारो जेण समोतारियं पइद्दारं । विणयसुयं सोऽणुगतो लाघवओ ण उ पुणो वच्चो ॥ १ ॥ उवक्कमो गतो, ' भण्णति घेप्पति य सुहं णिक्खेवपदाणुसारतो सत्थं । ओहो णामं सुत्तं णिक्खेत्तव्वं ततो तस्स ॥ १ ॥ ओहो जं सामण्णं सुत्तभिहाणं चउव्विहं तं च । अज्झयणं अज्झीणं आयो झवणा य पत्तेयं ॥ १ ॥ णामादि चउब्भेयं वण्णेऊणं सुयाणुसारेणं । विणयसुअं आयोज्जा चउसुंपि कमेण भावेसुं ॥३॥ ओहणिप्फण्णो गतो। णामणिप्फण्णे णिक्खेवे विणयसुयंति विणओ सुत्तं च दुपयं णामं, एत्थ णिज्जुत्तिगाहा 'विणयो पुव्वुदिट्ठो'गाहा(२९-१५) विणओ चउव्विहो नामाइ जहा विणयसमाहीए तहेव भाणियव्वो, सुत्तंपि पूर्ववत् , गतो णामादिणिप्फण्णो, इदाणिं सुत्तालावगनिप्फण्णो 'जो सुत्तपदण्णासो सो सुत्तालावगाण निक्खेवो । इह पत्तलक्खणो सो णिक्खिप्पति ण पुण किं कज्जं?॥१॥सुत्तं चेव न पावइ इह सुत्तालावयाण कोऽवसरो? । सुत्ताणुगमे काहिति तब्भासं लाघवनिमित्तं॥२॥अह यति पत्तोऽवि ततो ण णस्सए कीस भन्नए इहइं? । दाइज्जइ सो निक्खेवमेत्तसामन्नओ नवरं॥३॥ संपदिमोहाईणं सण्णिक्खित्ताणमणुगमो कज्जो । ॥ १२ ॥

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

॥ १३ ॥

सूत्रानुगमः

सोऽणुगमो दुविकप्पो णेओ णिज्जुत्तिसुत्ताणं ॥ ४ ॥ णिज्जुत्तिअणुगमो तिविहो, तं०-णिक्खेवणिज्जुत्तिअणुगमो उवोग्घातनिज्जुत्तिअणुगमो सुत्तफासियणिज्जुत्तिअणुगमो, तत्थवि णिक्खेवनिज्जुत्ति अणुगया जा एसा उत्तरज्झयणं क्खेवादि अभिहिया, उवोग्घायणिज्जुत्तीअणुगमो 'उद्देसे णिद्देसे य णिग्गमे खेत्त काल पुरिसे य । कारण पच्चय लक्खण णए समोतारणाऽणुमति ॥ १ ॥ किं कतिविहं कस्स कहिं केसु कहं केचिरं हवइ कालं । कति संतरमविरहितं, भवागरिसफासण णिरुत्ती ॥ २ ॥' एताणि दाराणि जहा सामाइए ॥ संपति सुत्तप्फासियणिज्जुत्ती जं सुतस्स वक्खाणं । तीसेऽवसरो सा पुण पत्ताविण भण्णए इहइं ॥ १ ॥ किं ? जेणासति सुत्ते कस्स तई तं जता कमा (सुत्तं)। एत्तो सुत्ताणुगमो वोच्छिहिं होहिइ तीसे तया भागो ॥ २ ॥ अत्थाणमिदं तीसे जदि तो सा कीस भन्नए इहइं ? । इह सा भण्णति णिज्जुत्तिमित्तसामण्णतो नवरं ॥३॥' अतोऽनेनैव सम्बन्धेनेदानीं निर्युक्तिअनुगमनानन्तरं सूत्रानुगमः, सूत्रस्यानुगमः २ सूत्रानुसरणमित्यर्थः, किं ?, न्यूनाधिकाविपर्यस्तादीदोषदुष्टमाहोश्विन्निर्दोषमिति ?, निर्दोषस्य च व्याख्यानं प्रारप्स्यते, शेषस्य चापनीतदोषस्येत्यतः सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं,— 'अक्खलियं अमिलियं अविच्चामेलियं पडिपुन्नं पडिपुण्णजोगं कंठोट्ठविप्पमुक्कं, न क्खलियमुप्पलाकुलभूमिलांगुलवत्, न च मिलितमसमानधान्यसंकरवत्, अविपर्यस्तपदवाक्यग्रन्थमथवा न संसक्तपदवाक्यं, विच्छेदविपर्यस्तमिति, इह च व्याविद्धविपर्यस्तपदवाक्यग्रंथयोरयं विशेषः- वर्णन एव व्याविद्धं, पदं वाक्यं ग्रन्थतो विपर्यस्तमिति, केचित्तु व्याविद्ध वर्णपदवाक्यं ग्रन्थतो मन्यते, संसक्तपदवाक्यं विच्छेदविपर्यस्तमिति, न च व्यत्याम्रेडितमनेकशास्त्रग्रन्थसङ्कराद् अस्थानच्छिन्नग्रन्थनाद्वा पायसभेरीवत् 'प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसाणा' मित्यादिवद्वाऽप्रतिपूर्णमर्थतो ग्रन्थतश्च, तत्र

॥ १३ ॥

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

॥ १४ ॥

व्याख्याप्रकाराः

ग्रंथतो मात्रादिभिर्यन्न प्रतिनियतमानं छन्दसा वा, अर्थतो न साकाङ्क्षमध्यायकस्वतंत्रं वा, प्रतिपूर्णघोषमुदात्तादिभिरविकलघोषमिति, 'कंठोट्ठविप्पमुक्क' मिति स्पष्टमाह, नाव्यक्तं बालमूकभाषितवत्। एवंगुणसम्पन्नं सूत्रमुच्चारणीयं, ततो तत्थ णज्जिहिति ससमयपदं वा परसमयपदं वा बंधपदं वा मोक्खपदं वा विणयपदं वा, तो तंमि उच्चारिते समाणे केसिंचि भगवंताणं केइ अत्थाधिगारा अहिगया भवंति, केई अणगहिया, तेसिं अणगहियाणमत्थाणं अभिगमणट्ठयाए पदं वन्नइस्सामि इमेण विहिणा- 'संहिता य पदं चेव, पयत्थो पयविग्गहो। चालणा य पसिद्धी य, छव्विहं विद्धि लक्खणं ॥ १ ॥' तत्थ संहितपदुच्चारणं संहिता, 'परः सन्निकर्षः संहिते' ति वचनात्, पदं नामिकादि पंचविहं, तत्राश्व इति नामिकं, खल्विति नैपातिकं, परीत्यौपसर्गिकं, धावतीत्याख्यातिकं, संयत इति मिश्रं, पदार्थश्चतुर्विधः कारकादिविषयः, पचतीति पाचकः, समासविषयः राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः, तद्धितविषयो वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः, निरुक्तविषयो भ्रमति च रौति चेति भ्रमरः, अथवा त्रिविधः पदार्थः—क्रियाकारकभेदतः पर्यायवचनतो भूतार्थाभिधानत इति, तत्र क्रियाकारकभेदतो 'घट चेष्टायां' घटतेऽसाविति घट इत्यादि, पर्यायवचनतो घटः कुम्भः इत्यादि, भूतार्थाभिधानतो योऽसावूर्ध्वकुण्डलोष्ठायतसूत्रग्रीवादिरूप इत्यादि। 'पायं पदविच्छेदो समासविसयो तयत्थणियमत्थं। पदविग्गहोत्ति भण्णइ सो सुद्धपदे ण संभवति ॥ १ ॥' इह प्रायेण यः समासविषयः पदयोः पदानां वा छेदो अनेकार्थसंभवे इष्टार्थनियमनाय क्रियते स पदविग्रहः, यथा राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः, श्वेताः पटाश्चेति श्वेतपटाः इत्यादि, सुत्तगतमत्थविसयं च दूसणं चालणं मतं तस्स। सद्दत्थण्णायातो परिहारो पच्चवत्थाणं ॥१॥ इह यत्सूत्रविषयमर्थविषयं वा दूषणमारभ्यते शिष्यचोदकाभ्यां तच्चालनं विचारो वेत्यर्थः, तस्य शब्दार्थन्यायतो

॥ १४ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||१|| दीप अनुक्रम [१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ १५ ॥

विनयप्रादुष्करण प्रतिज्ञा संयोग निक्षेपाः संयुक्त संयोगः ॥ १५ ॥

नयमतविशेषाच्च परिहारः प्रत्यवस्थानं, दूषितप्रसिद्धिरित्यर्थः। 'एवमनुसुतमत्थं नयन(सद्नय)मतावतारपरिसुद्धं। भासेज्ञ निरवसेसं पुरिसं च पडुच्च जं जोग्गं ॥ १ ॥ होति कयत्थो वोत्तुं सपयच्छेयं सुयं सुताणुगमो। सुत्तालावगनासो नामादिण्णासविनियोगं ॥ २ ॥ इह सूत्रतत्पदच्छेदाभिधानात्सूत्रानुगमः कृती जायते, अवसितप्रयोजन इत्यर्थः, सूत्रालापकन्यासोऽपि नामादिन्यासविनियोगमात्रं, 'सुतप्फासियनिज्जुत्तिनियोगो सेसयो पयत्थाई। पायं सोच्चिय णेगमणयादिमयगोयरो होई ॥ १ ॥— तिसूत्रस्पर्शकनिर्युक्तिविनियोग इत्यर्थः, शेषः— पदार्थविग्रहविचारप्रत्यवस्थानभेदः सूत्रार्थानुगमनस्वाभाव्यात्, स एव हि प्रायो नैगमादिनयमतविषयः, प्रायोऽभिधानात्पदविधानन्यासोऽपीति,'पादं पदाविच्छेदो सुत्तप्फासं च संहिता जेणं। कस्सइ इहत्थकारयकालादिगती ततो चेव ॥ १ ॥ प्रायः पदाविच्छेदोऽपि क्वचित् सूत्रस्पर्शान्तर्भाव्येव, यतः क्वचित् पदविच्छेदादेवार्थः कालकारकादयो गम्यन्त इति, एयमणुयोगद्दारपजोयणं भणियं, हेट्ठा दारगाहा। एयं णिक्खित्तंति। 'एत्थ य सुत्ताणुगमो सुत्तालावयकओ य णिक्खेवो। सुत्तप्फासियनिज्जुत्ती णया य पइसोत्तमायोज्जा ॥ १ ॥ सुत्ताणुगमे सुत्तं उच्चारेयव्वंति, तं चिमं सुत्तं-संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो। विणयं पायो करिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥ १ ॥ (१८ प०) 'संजोगे निक्खेवो' गाहा। (३०–२१) संयुज्जत इति संयोगः, येन वा संयुज्जते स संयोगः, सो संयोगो छव्विहो- णामसंजोगो ठवणासंजोगो दव्वसंजोगो खेत्तसंजोगो कालसजोगो भावसंजोगो, नामठवणाओ गयाओ, द्रव्यसंयोगो द्रव्ययोर्द्रव्याणां वा संयोगो द्रव्यसंयोगः, सो दुविहो- संजुत्तगदव्वसंजोगो इतरेतरदव्वसंयोगो य, तत्थ गाहा 'संजुत्तगसंजोगो' गाहा (३१–२२) तत्थ संजुत्तदव्वसंजोगो णाम जो पुव्वसंजुत्त एव अण्णेण दव्वेण सह संयुज्जते, सो तिविधो-

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ १६ ॥

इतरेतर संयोगः

सचित्तसंजुत्तदव्वसंजोगो अचित्तसंजुत्तदव्वसंजोगो मीससंजुत्तदव्वसंजोगो, तत्थवि सचित्तसंजुत्तदव्वसंजोगो णाम जहा रुक्खो पुव्वं मूलेहिं पुढविसंबद्धेहिं उत्तरकालं कंदेण सह युज्जते, एवं जावत्ति ताव नेयं, एत्थ गाहा 'मूले कंदे' गाहा (३२-२३) सचित्तसंजुत्तदव्वसंजोगे इमे गाहा— 'एगरस एगवण्णे' गाहा (३३-२६) जहा परमाणुपोग्गले एगवण्णे एगगंधे एगरसे दुफासे, स तु जता कालगत्तं पडिचइऊणं नीलगत्तेण परिणमति तदा गंधादीहिं संजुत्ते एव लीण(णील)गत्तेणं संजुत्तेणं, एवं लोहितहालिद्दसुक्किल्लत्ततोवि, णीलगो वा जया नीलगत्तं परिच्चइऊण कालगत्तेण परिणमति तदा गंधादीहिं संजुत्ते एव लीण(नील)गत्तेण संजुत्तेणं, एवं लोहित्तहालिद्दसुक्किल्लत्ततोऽवि, एवं संजोगा वीसं भाणितव्वा, गंधतोऽवि, जता सुब्भिगंधं परिच्चइऊणं दुरभिगंधत्तेण परिणमति तदा वन्नरसफाससंजुत्त एव दुब्भिगंधत्तेण जुज्जते, एवं दुब्भिगंधोऽवि, रसो जहा वण्णो, फासे दुसु, जता सीतफासो उसिणफासं परिणमति तदा वण्णगंधरसफासणिद्धलुक्खाण फासाण एगतरेण संजुत्त एव उसिणं संयुज्जते, उसिणफासोऽवि सीतं फासं परिणमति, णिद्धोऽवि रुक्खफासं, रुक्खोऽवि निद्धफासं, अहवा एगगुणकालगो होत्तिऊणं उत्तरकालं दुगुणं कालगो भवति तदा कालगवण्णेण संजुत्त एव, पुणरवि तेण वा अधिकतरेण संयुज्जते, एवं णेयो जाव अणंतगुणकालगोत्ति, अवसेसेसु य वण्णगंधरसफासेसु भाणितव्वं जाव अणंतगुणलुक्खोत्ति, एवं दुपदेसिगादिसुत्ति विभासा, अचित्तसंजुत्तदव्वसंजोगो गतो॥ इदाणिं मीससंजुत्तदव्वसंजोगो,स च जीवकर्मणोः, तयोः स्थानादिसंयोगे सति यदुपचीयते स भिश्रसंयुक्तसंयोगो भवति,'जह धातू कणगादी' गाहा (२४-२५) यथा धातवः सवर्णादी स्वेन स्वेन भावेन परस्परसंयोगेन संयुक्ता भवंति,अथवैतेषां क्रमेण पृथग्भावो भवति. अन्यत किट्टं अन्यच्च सुवर्णं, एवं गृहाण जीवस्यापि संततिकर्मणाऽनादिसंयुक्तसंयोगो भवति, स च यदा निरुद्धयोगा-

॥ १६ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने

॥ १७ ॥

पुद्गलबन्धः

श्वो भवति तदा जीवकर्मणोः पृथक्त्वं भवति, दूस्सति (सचित्ते) मूलकंदे अचित्ते परमाणुपोग्गलग्गहणं वण्णगंधरसफासादीहिं संततिकम्मंति मिस्सस्स गहतो जह धातू कणग। इति, उक्ताः संयुक्ताः संयोगाः । इदाणिं इतरेतरसंजोगो, तत्थ निज्जुत्तिगाहा 'इतरेतरसंजोगो' गाहा(३५-२५) इतरेतरसंजोगो छव्विहो, तंजहा-परमाणूणं पएसाणं अभिप्पेयस्स संजोगो अणभिप्पेयस्य संजोगो अभिलावसंजोगो संबंधनसंजोगो, तत्थ दुप्पभितीण परमाणूणं जो संजोगो सो इतरेतरसंजोगो भवति परमाणूणं, पदेसेसु दुपदेसादीण नेयमिति, तत्थ 'दुविहो परमाणूणं' गाहा (३५-२५) परमाणूणं इतरेतरसंजोगो दुविहो-संठाणतो खंधतो य, उक्तश्च— समणिद्धकाए बंधो ण होइ समलुक्खतायवि ण होति । वेमायणिद्धलुक्खत्तणेण बंधो उ खंधाणं ॥ १ ॥ तत्थेगगुणणिद्धो एगगुणणिद्धेण सह न बज्झति, तहा दुगुणणिद्धो बेगुणणिद्धेण समं ण, अणंतणिद्धो अणंतणिद्धेण ण, एवं एगगुणलुक्खेवि एगगुणलक्खेण सह ण बज्झति, एगगुणलुक्खो दुगुणलुक्खेण जाव अणंतगुणलुक्खो अणंतगुणलुक्खेण, एवं सव्वत्थ समगुणेसु बंधो णत्थि, वेमातणिद्धलुक्खत्तणेण।त्ति विषमा मात्रा विमाता, एवं भवति, कहं पुण ?, उच्यते 'णिद्धस्स णिद्धेण दुताहिएणं' लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं । णिद्धस्स लुक्खेण उवेति बंधो, जहन्नवज्जो विसमो समो वा ॥ १ ॥ एगगुणनिद्धो तिगुणणिद्धेणं बज्झति, तिगुणनिद्धो पंचगुणणिद्धेण, पंचगुणो सत्तगुणणिद्धेण, एवं दुयाहिएण बंधो भवति, तहा दुगुणणिद्धो चउगुणणिद्धेण, चउगुणणिद्धो छगुणणिद्धेण, छग्गुणणिद्धो अट्ठगुणणिद्धेण, एवं णेयं, लुक्खेवि एवं चेव, णिद्धलुक्खस्स पुण जहन्नगुणवज्जेसु सेसेसु विसमेसु समेसु वा बंधो भवति, ' जहन्नगुणो ' त्ति एगगुणणिद्धो एगगुणलुक्खेणं ण बज्झति, सेसेसु दुगुणतिगुणठिएसु बज्झति,अण्णे पुण भणंति-एगगुणस्स दुगुणाधितेण बंधो भवतीति, दुगुणाहिएणंति एगगुणस्स तिगुणेण दुगुणस्स पंचगुणेण तिगुणस्स

॥ १७ ॥

*** अत्र पुद्गल-बन्धः वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

सत्तगुणेण, एवं सव्वत्थ दुगुणाधिएणं बंधो भवति,तत्थ गाहा-दोण्ह जहण्णगुणाणं णिद्धाणं तह य लुक्खदव्वाणं। एगाहिएऽविय गुणे गुणबंधस्स परिणाहो(मो)॥१॥ण होति बंधस्स (ब्र.) जेऽविय-णिद्धबिगुणाधिएणं बंधो णिद्धस्स होइ दव्वस्स। लुक्खबिगुणाधिएण य, लुक्खस्स समागमं पप्प ॥२॥ बज्झंति णिद्धलुक्खा विसमगुणा अहव समउखा जतिवि। वज्जेत्तु जहन्नगुणे बज्झंती पोग्गला एवं ॥३॥ एमेव य खंधाणं दुपदेसादीण बंधपरिणामो। जो होइ जहा अहितो सो परिणामेति तदऊणं ॥ ४ ॥ जति विसमे संजोगो परिणामे तस्स केवलं तु खंधत्ते। अवसेसे परिणामो तारिसगं चेव तं दव्वं ॥ ५ ॥ सरिसगुणा सरिसगुणं अब्भहियगुणाण हीणगुणमेव। परिणामिउं समत्था न पुणं ऊणा तु अहियाणं ॥ ६ ॥ परिणामगा समाहिय परिणामिज्जति समो व हीणो वा। दव्वगुणाधियभावेण ण पुण दव्वाभिगत्तेणं ॥ ७ ॥ जति बहुगं एक्कगुणं थेवंपिय बहुगुणं जति हवेज्जा। परिणामिज्जति बहुगं थोवेण गुणाहियगुणेणं ॥ ८ ॥ जति कालियमेगगुणं सुकिलयंपि हवेज्ज बहुयगुणं। परिणामिज्जति कालं सुक्केण गुणाहियगुणेणं ॥९॥ जति सुकिल्लगमेगगुणं कालयदव्वं तु बहुगुणं जति य। परिणामिज्जइ सुक्कं कालेण गुणाहियगुणेणं ॥१०॥ जति सुक्कं एगगुणं कालगदव्वंपि एगगुणमेव। कावोतं परिणामं तुल्लगुणं जस्स संभवति ॥११॥ एवं पंचवि वन्ना संजोएणं तु वण्णपरिणामो। समहियहीणगुणेण य वण्णंतरसंगयाणं च॥१२॥एमेव य परिणामो गंधाण रसाण तह य फासाणं। संठाणाण य भणितो संजोएणं बहुविगप्पे ।१३।दव्वं भणियं सप्पज्जयं निग्गुणा गुणा होंति। जहि दव्वं तत्थ गुणा जत्थ गुणा तत्थ परिणामो॥१४॥एयं पासंगिकं,ते हि परिमाणवः संहन्यमाना अग्घाइज्जंता दुपदेशगादि खंधं णिव्वत्तेन्ति९ संठाणं च, मृत्पिण्डवच्च, यथा मृत्पिण्डः कालान्तरेण पिण्डत्वेन परिणमन् घटत्वेनोत्पद्यते तत्संस्थानवत्, एवं तन्तवोऽपि पटत्वेनोत्पद्यन्ते तत्संस्थानेन च, तद्वत्परमाणु नां पिंडो खंधत्तं संठाणं च।

*** अत्र संस्थान-भेदा: वर्णयते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

परमाणवो वा कारणांतरात् संयुज्जंते संयुज्जमाना स्कन्धत्वेनोत्पद्यन्ते तत्संस्थानेन च, तत्थ संठाणं पंचविहं-'परिमंडले य गाहा' (२८-२७)परिमंडल संठाणं दुविहं— घणपरिमंडलं पयरपरिमंडलं, तत्थ पयरपरिमंडलं जहन्नं वीसपदेसियं वीसपदेसोगाढं, उक्कोसेणं अणंतपदेसियं असंखेज्जपदेसोगाढं च, तत्थ वीसपदेसियस्सा इयं स्थापना ⁘ घणपरिमंडले जहन्नेण चत्तालीसपदेसिए चत्तालीसपदेसोगाढे, एतेसिं चेव वीसाए परमाणूणं उवरिं अण्णा वीसं चेव परमाणू भवंति, उक्कोसेण अणंतपदेसितो असंखेज्जपदेसोगाढो, वट्टो दुविहो-घणवट्टे य पयरवट्टे य, पयरवट्टे दुविहो-ओयपदेसिए जुम्मपदेसिए य, ओजपएसे जहन्नेण पंचपएसिए पंचपदेसोगाढो ⁘ उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढो, जुम्मपएसिए जहन्नेण बारसपएसिए बारसपएसोगाढे ⁘ उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखिज्जपएसोगाढे, घणवट्टे दुविहो-ओयपदेसिए जुम्मपदेसिए य, ओयपएसिए जहन्नेण सत्तपदेसिए सत्तपदेसोगाढो ⁘, एतस्स मज्झेल्लस्स पदेसस्स उवरि एगो ठावितो हेट्ठावि एगो एवं सत्त भवंति, उक्कोसेणं तहेव, जुम्मपदेसिए जहन्नेण बत्तीसपदेसिए बत्तीसपदेसोगाढो ⁘ एते बारस चेव उवरिं एते बारस चेव एते चउव्वीसं, एतेसिं चउव्वीसाते उवरिं चत्तारि हेट्ठावि चत्तारि, एवं बत्तीसं भवंति. उक्कोसेणं तहेव, तंसे दुविहे–घणे पतरे य, पतरतंसे दुविहो ओयपदेसिए जुम्मपदेसिए य, ओयपदेसिए जहन्नेण तिपदेसिए तिपदेसोगाढे, ⁘ उक्कोसेणं तहेव, जुम्मपदेसिए जहन्नेण छप्पदेसिए छप्पदेसोगाढो ⁘ उक्कोसेणं तहेव, घणो दुविहो–ओये जुम्मे य, जहन्नेण पणतीसपदेसिए पणतीसपदेसोगाढो, ⁘ एते पन्नरस पदेसा, एतेसिं इमे उवरिं एते दस पदेसा, ⁘ एतेसिं उवरिं एते ⁘ छप्पदेसा, एतेसिं इमे उवरिं ⁘, एतेसिंपि उवरिं ◦, एवं एतं सव्वंपि घणं तंसं एगं निप्फन्नं भवति, जुम्मपदेसिए जहन्नेण चउप्पदेसिए चउ-

॥ १९ ॥

प्पदेसावगाढे ⁘, एत्थ जे तिन्नि तत्थ एतेसिं एयस्स उवरिं एको कीरइ, उक्कोसेणं तहेव, चउरंसे दु०-घणे पयरे य, पयरे दुविहे-ओए जुम्मे य, ओये जहन्नेण णवपएसिए णवपदेसावएगाढे ⁙ उक्कोसेणं तहेव, जुम्मपदेसिए जह० चउपदेसिए चउपदेसोगाढे ⁘, उक्कोसेणं तहेव, जुम्मपदेसिए जह० अट्ठपएसिए अट्ठपएसोगाढे ⁘ , एतेसिं चेव उवरिं अन्ने चत्तारि, एते अट्ठ, उक्कोसेणं तहेव, आयते दुविहे-सेढीआयतो घणायते य, सेढीआयते दुविहे-ओये जुम्मे य, ओये जहण्णेण तिपदेसिए तिपदेसोगाढे ∘∘∘ उक्कोसेणं तहेव, जुम्मपदेसिए जहन्नेण दुप्पएसिए दुप्पएसोगाढे ∘∘ , उक्कोसेणं तहेव, पयरायतो दुविहे-ओये जुम्मे य, ओये जह०पण्णरसपदेसिए पन्नरसपदेसोगाढे ⁙ उक्कोसेणं तहेव, जुम्मपदेसिए जहन्नेणं छप्पदेसिए छप्पदेसोवगाढे ⁙, उक्कोसेणं तहेव, घणायते दुविहे-ओए जुम्मे य, जोए जहन्नेणं पणयालीसपएसिए पणयालीसपएसिओगाढे, एतेसि हेट्ठा उवरिं च पण्णरस, एते चेव पणयालीसं भवंति, उक्कोसेणं तहेव, जुम्मपएसिते जहन्नेणं बारसपएसिए बारसपएसोगाढे ⁙, एतेसिं उवरिं अन्ने छप्पएसा ठाविंति, एवं बारस हवंति, उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपण्सोगाढे, एवं परमाणूनां संठाणओ गतं, इदानीं त एव परमाणवः संहन्यमानाः स्कन्धत्वं निर्वर्त्तयन्ति न च संस्थानं, तद्यथा-अचित्तमहास्कन्धः, जे व अण्णे अणित्थंत्थसंठाणं परिणता, अणित्थंत्थं णाम अणेगप्पगारं, पंचण्हं संठाणाणं एगतरमवि ण य भवति, एसो परमाणूणं इतरेतरसंजोगो गओ, इदाणिं पदेसाणं इतरेतरसंजोगो, तत्थ गाहा 'धम्माइपदेसाणं' गाहा (४२-२९) तत्थ धम्मत्थिकाइयाईणं पंचण्हं अत्थिकायाणं यः स्वैः स्वैः प्रदेशैरन्यद्रव्यप्रदेशैश्च सह संयोगः स प्रदेशत इतरेतरसंयोगो भवति, तत्थ धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकायाणं एतेसिं तिण्हवि अणातीओ अपज्जवसिओ इतरेतरपदेससंयोगो भवति, जीवद्रव्यस्यापि आत्मप्रदेशैरेव सह इतरेतरसंयोगः, तत्थवि य तिण्हं तिण्हं अणातीतो, सेसाणं

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ११ ॥

प्रमाणावतारः

तत्थ छव्विहे णामे भावो छव्विहो वण्णिज्जति, तत्र क्षायोपशमिक एव श्रुतावतारो नान्यत्र, श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमजत्वात् श्रुतस्य, प्रमाणं दव्वादि चउव्विहं, प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणं, तत्थ भावप्पमाणे समोयरति, भावगुणप्पमाणं च तिविहं–गुणप्पमाणं णयप्पमाणं संखप्पमाणं, गुणप्पमाणं दुविहं—जीवगुणप्पमाणं अजीवगुणप्पमाणं च, ततो जीवाऽन्यत्वाद्विनयसूत्रस्य जीवगुणप्पमाणे समोतरति, तं तिविहं—णाणगुणप्पमाणं दंसणगुणप्पमाणं चरित्तगुणप्पमाणं, तत्र बोधनात्मकत्वाद्विनयसूत्रस्य णाणगुणप्पमाणे समोतरति, णाणगुणप्पमाणं चउव्विहं, तं०-पच्चक्खं अणुमाणं उवंमं आगम इति, तत्थ विणयसुयस्स प्रायशः परोपदेशकत्वादागमप्रमाणेऽवतारो, आगमो दुविहो—लोइओ लोउत्तरिओ य, लोउत्तरे समोयरति, लोउत्तरो तिविहो-सुत्तं अत्थो तदुभयंति, तिसुवि समोयरति, सो तिविहो—सुत्तागमो अणंतरागमो परंपरागमो (तत्थ सुत्तओ थेराणं अत्तागमो अत्थओ अणंतरागमो, थेरसिस्साणं सुत्तओ अणंतरागमो अत्थओ परंपरागमो, तेण परं सुत्तओवि अत्थओऽवि) नो अत्तागमो नो अणंतरागमो, परंपरागमो, गतं गुणप्पमाणं । मूढणयियं कालियं सुत्तंति नाधुना नयप्रमाणावतारः, 'आसि पुरा सो णियते अणुयोगाणमपुहुत्तभावंमि । संपति णत्थि पुहुत्ते होज्ज व पुरिसं समासज्जा ॥ १ ॥ संखप्पमाणं अट्ठविहं—णामसंखा ठवणसंखा दव्व० उवम्म० परिमाण० जाणणासंखा गणणा० भावसं०, तत्थ परिमाणसंखाए अवतरति, सा दुविहा—कालियसुत्तपरिमाणसंखा य दिट्ठिवायसुतपरिमाणसंखा य, तत्थ कालियसुत्तपरिमाणसंखाए समोतरति, कालियसुतपरिमाणसंखा अणेगविहा पज्जवसंखा अक्खरसंखा संघातसंखा पदसंखा पायसंखा गाहा० सिलोग० वेढग० निज्जुत्ति० अणुओगद्दार० उद्देश० अज्झयण० सुयक्खंध० अंगसंखा वेति, तत्थ विणयसुतं सूत्रतः परित्तपरिमाणी, परिमितपरिमाणमित्यर्थः, ॥ ११ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ २२ ॥

संस्थानानि

स च तौ च ते, एवं दुगादीयो, अक्खरसंजोगमादी व्यञ्जनं भवति, तत्र व्यञ्जनसंजोगो भवति यथा स्त्री, कोऽर्थः ?, व्यञ्जनान्यनेकानि, एसोऽभिलावसंजोगो। इदानिं संबंधणसंजोगो, सो चउव्विहो, तं०-दव्वसंबंधणसंजोगो खेत्त० काल० भाव०, तत्थ दव्वे 'संबंधणसंजोगो' गाहा (४६-३२) सचित्तदव्वसंबंधसंजोगो तिविहो, दुपयादी, तत्थ दुपयसच्चित्तसंबंधसंयोगो यथा पुत्रयोगात्पुत्री, एवं चतुष्पदेऽवि यथा गोसंयोगात् गोमान्, अपदे यथा आरामसंयोगिकादारामिकः, अचित्ते यथा कुंडलसंजोगा कुंडली, मिश्रे यथा रथेन गच्छति रथिको गच्छति। 'खेत्ते काले य तहा' गाहा (४७-३२) खेत्तसंबंधसंयोगो द्विविधो, तं०-अप्पितो अणप्पितो य, अणप्पितो— अविसेसितो, अप्पितो—विसेसिओ, तत्थ अणप्पितो जो जेण खेत्तेण संजुतो अप्पितो, जहा सोरट्ठतो मालवतो मागहो इत्यादि, एवं कालेऽवि दुविहो, णवरं अप्पिओ जहा वसन्तगो, खेतेऽवि कालेऽवि एवं दुविहं तु तेण दोण्हवि दुविहो य संजोगो, इदाणिं भावसंबंधणसंजोगो गाहापच्छद्धेण भण्णति—'भावंमि होइ दुविहो आदेसे चेव णादेसो' भावे दुविहो-आदेसो चेव णादेसो, भावे दुविहो-आदिट्ठो अणादिट्ठो य, तत्थ अणादिट्ठो भाव इति षण्णां भावानामन्यतमः, एत्थ गाहा—उदइयउवसमखइएसु तह खइए य उवसामिए। परिणामसन्निवाए य छव्विहो होतिऽणादेसो ॥(४८-३३) कहं पुण ?, जहा उदइयओ भावो आदेस्सइ तदा ण णज्जति किं मणुसस्स उदईओ अमणुस्सस्स उदइओ?, उदइओ पुण सामन्नो जीवाजीवदव्वेहिं भवति, उवसमिओवि तहेव, एवं जाव परिणामिओवि, सामन्नएवि भवति, 'आदेसो पुण दुविधो' गाथा (४९-३३) आदेसो दुविधो—अप्पियववहारगो अणप्पितववहारगो य, इक्केक्के तिविहो-आत्मन्यर्पितः बहिरर्पितः अनात्मनीत्यर्थः उभयार्पित इति, अत्रात्मन्यर्पितो णाम 'उवस- ॥ २२ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१]

मेण य' गाहा (५०-३०) ओपसमिकः क्षायिकः क्षायोपसामिकः पारिणामिको य अप्पितो वा भवति तदा आत्मनि प्रत्यवसेयः, एतेसु चउसुवि आत्मसंयोगो भवति, एते हि जीवगया भवंति-एतेसु भावेसु जीवो अप्पणो भवति, तदात्मक इत्यर्थः। अनर्पितस्तु भाव एव, 'जो सन्निवादितो खलु' गाहा (५१-३४) जो सन्निवाइतो भावो उदयियवज्जितो भवति तत्थेव सण्णिवादीणं चउण्हं भावाणं दुगसंजोगेणं तिगसंजोगेण चउक्कसंजोगेण एक्कारस भंगा भवंति, तत्थ छ दुगसंजोगे चत्तारि तिगसंजोगे एक्को चउक्कसंजोगे एते एक्कार संजोगा भवंति, एसोवि अत्तसंजोग एव, गतो अत्तसंजोगो। बाह्यसंयोगो नाम 'लेसा कसाय वेदण' गाहा (५२-३४) यदा औदयिकः लेस्याः कषाया वेदनं वेदो अज्ञानं मिथ्यात्वं च अर्पितं भवति तदा अनात्मकमिति प्रत्यवसेयः, किमुक्तं भवति ?- कर्मपुद्गलोदयादेतानि भवन्ति, अनर्पितस्तु भाव एवौदयिकः, उक्तो बाह्य अभ्यन्तरश्च भावसंयोगः तदुभयसंयोगो इमो-'नो सन्निवाओ खलु' गाहा (५३-३५) सव्वे ओदयिकं अमुंचमाना संजोगा कायव्वा, तत्थ दुगसंजोगा ओदयिकं अमुंचमाणेण चत्तारि तियसंजोगा छ चउक्कसंयोगा चत्तारि एगो पंचसंयोगे, एवं औदयिकभावं अमुंचमाणेण पन्नरस संयोगा भवंति 'बितिओवि आदेसो' गाहा (५४-३५) अयमपरः किल आदेशः, भावसंजोगो तिविधो-अत्तसंजोगो परसंजोगो तदुभयसंजोगो, 'ओदयिय' गाहा (५५-३६) तत्रात्मना षड् भावाः संबध्यन्ते, जहा ओदयियो मणुस्सो स एव उवसंतकसाओ, स एव खीणदंसणमोहणीओ, स एव खओवसमसुत्तनाणी, पारिणामिओ जीवो, अयमात्मसंयोगोऽभ्यन्तर इत्यर्थः, बाह्यसंयोगेसु 'णामंमि य' गाहा (५६-३७) इह नामिनो नाम्ना सह संयोगो भवति यथा देवदत्त इति, द्रव्यादिभिश्च बाह्यसंयोगो भवति यथा दंडसंयोगाद्दंडी, क्षेत्रेण आकाशेन सह संयोगः ग्रामेण नगरेण वा इत्यादि, काले दिवसादिना, ॥ २३ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||१|| दीप अनुक्रम [१]

॥ २४ ॥

संस्थानानि

भावेण उ संजोगः अंतर एव, नहि भावो भाविनोऽर्थान्तरभूतो भवति, मा भूदभावप्रसंगः, तदुभयसंजोगो दव्वेण कोधी दंडी क्रोधी भ्रुकुटीत्येवमादि, तथा क्षेत्रेण क्रोधी मालवकः क्रोधी सौराष्ट्रक इत्यादि, कालेनापि क्रोधी वासंतिक इत्यादि, अयमन्योऽपि बाह्य एव परस्परं संयोगो भवति, 'आयरियसीस' गाहा(५७-३७) यथा आयरियस्स सिस्सेण सद्धिं संयोगः, असावपि बाह्यसंयोगो भवति, आयरिया इत्युक्ते अवश्यंशिष्येण तदितरेण भवितव्यं यस्यासावाचार्य इति, तथा शिष्य इत्युक्ते अवश्यमाचार्येण भवितव्यं, आह-कीदृशोऽसावाचार्यः? शिष्यो वेति?, उच्यते-'आयरिओ तारिसओ' गाहा(५९-३९) किमुक्तं भवति?-आयरिओ तारिसो जारिसा आयरिया भवंती, आयरियगुणेहिं उववेओ यथाचार्यः स्वगुणमाहात्म्ययुक्तः तादृशः, शिष्योऽपि तत्तद्गुणसदृशः, यथा पुत्र इत्युक्ते अवश्यमेव तस्य पित्रा भाव्यं, तथा पितेत्युक्ते अवश्यं पुत्रेण भाव्यं यस्य सो पिता, एवं मातापुत्रयोर्मातादुहित्रोः तथा भार्यापत्योः, एवं शीतोष्णयोः, शीतमित्युक्ते अवश्यमुष्णे संप्रत्ययो भवति, एवं तमउद्योतयोश्छायाऽऽतपयोः, 'एवं णाण' गाहा (५६-४०) तथा ज्ञानमित्युक्ते अवश्यं ज्ञानस्य ज्ञेयेन वा सार्द्धं संयोगो भवति, तथा चरणमित्युक्ते चरणमाभाव्यं स्वमित्यर्थः, न ज्ञानी ज्ञानादन्यो भवति, यद्यन्यस्तस्मादज्ञानी स्यात्, तथा चरणादपि यदाऽन्यः स्यात् तेन न चारित्री स्यात्, तस्माच्चरणचरणिनोरेकत्वं, तेणेवेस अभ्यन्तरसंयोग एव, न बाह्यः, तथा ज्ञातुर्ज्ञानिना सह संबंधो भवति, ज्ञानस्य च ज्ञेयेन उभयसंबंधो भवति, एवं चारित्रेणाऽपि, तथा स्वामित्वेऽपि ममैष स्वामी, अथवा स्वामित्वेनोभयसंयोगो भवति, ममैष दासस्य (स्वामी) एष च मम पितुः पुत्रः मम कुलाभ्यन्तर इति, एष संयोग उभयसंबंधो भवति। 'पच्चयतो य बहुविहो' गाहा (६०-४१) प्रतीयतेऽनेनार्थ इति प्रत्ययः, ज्ञायत इत्यर्थः, सच बहुविधः, तद्यथा—घटं प्रतीत्य घटज्ञानमेवमादीनि प्रत्यय-

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||१||

दीप अनुक्रम [१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ २५ ॥

संस्थानानि

ज्ञानानि भवन्ति, आह–यद्येवं घटं प्रतीत्य घटज्ञानं पटं प्रतीत्य पटज्ञानं तेन किं प्राप्तं?, जिनस्यापि तत्प्रत्ययपूर्वकमेव ज्ञानं भवति, मा भूदप्रत्ययं, उच्यते, यदवोचस्त्वं यथा प्रतीत्यप्रत्ययतो ज्ञानं भवति नाप्रत्ययमिति तेन तस्यापि भवतीत्यत्र ब्रूमः, असदेतत्, कस्मात् ?, सिद्धान्तापरिज्ञानात्, यद्येतत्प्रत्ययपूर्वं ज्ञानं एतद्धि छद्मस्थानां, जिना हि भगवंतः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः भिन्नतमस्काः, तेषां हि निवर्त्तितप्रत्ययं ज्ञानं, तेषां माहात्म्यं विभूतिरेषा भगवतो निरावरणस्य सर्वभावावभासकं ज्ञानं भवति, अन्यच्च–केवलिनस्तु केवलज्ञाननिवर्त्तितप्रत्ययं, एकप्रकारमेव, यस्मादेकं केवलज्ञानमिति, अथ एकेन हस्तेन बहवः पटा गृह्यन्ते, न तेषामेकत्वं, एवमेकेन केवलज्ञानेनानन्ता भावा एककाले गृह्यन्ते, न च तेषामेकत्वं भवतीति। देहा य बद्धमुक्का अब्भितरसंजोगो भवति, तत्थ अब्भितरं कम्मगं बाहिरं ओरालियं, जाणि संपयं सरीराणि बद्धाणि सो अब्भितरसंजोगो, जाणि मुक्काणि सो बाहिरसंजोगो, एवं मातिपितिसुतातिसु जेसु संपदं वट्टति ते अत्तसंयोगा, जे अतिक्कंता ते परसंयोया भवंति, 'संबंधणसंजोगो' गाहा (६१-४२) पुव्वकम्मेहिं संबद्धस्स कसायस्स जीवस्स जो अभिणवेहिं सह कम्मेहिं बंधो भवति सो संबंधणसंजोगो भवति, जेहिं भगवंतो विदितसपरा छिन्ना, ण हि बंधणा ते तेसिं भगवंताणं कोति पडिबंधहेऊ विज्जति, तथा प्रभुत्वादुत्पद्यते ममेदमिति अहमस्य स्वामी, अप्रभोरुत्पद्यते स्थानाद्यपि स्वामिसंबंधन ममीकरेति, एवमेतत्परिचिन्त्यमानं यस्य हि ममेदमिति भवति तस्य संबंधनसंयोगसंबंधो बहुमतो, नान्येषामपि, 'संबंधण' गाहा (६२-४४) यश्च संबंधनसंयोगाभिलाषः एष संसारहेतुको भवति, अनुत्तरवासश्च भवति, तच्छेत्तुमुद्यताः साधवः, अतः अस्माद्भावसंयोगाद्विप्रमुक्ता इति संबंधणसंयोगो भणितो, इतरेतरसंयोगो य गतो। इदाणिं खेत्तकालभावसंजोगो भवति—तत्थ गाहा—संबंधणसंजोगे

॥ २५ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||२||

दीप अनुक्रम [२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ २६ ॥

विनीतेतरलक्षणानि

खेतादीणं विभास जा भणिया । खेत्ताइसु संजोगो सो चेव विभासितव्वो तु (६४-४३) अथवाऽऽकाशप्रदेशैः सार्द्ध संयुज्जमाने इतरेतरसंजोगो भवति, सेसं यथा सम्बन्धणसंजोग खेत्तादी भणिता तथा विभाषितव्याः, एष संयोगः, अस्मात्संयोगाद्विप्रमुक्तस्य विशेषेण प्रमुक्तो विप्रमुक्तोऽतस्तस्य, संयोगात् विप्पमुक्कस्स, न गच्छंतीत्यगा- वृक्षा इत्यर्थः, अगैः कृतमागारं गृहमित्यर्थः नास्य आगारं विद्यत इत्यनगारः, अतस्तस्य अणगारस्स, भिक्खणसीलो भिक्खू, भिक्खुग्गहणं मिगचारियापवित्ताणं दव्वअणगाराण वुदासत्थं, ते हि दव्वअणकारत्ति विगत्तिअ ण भिक्खवो भवंति, निदानोपहतबालतपःकर्म्मभिरदत्तजीवितत्वात् अप्रासुकाहारकत्वान्न भिक्षवः,अथवा अनगार एव भिक्खुःअतस्तस्य अणगारस्स भिक्खुणो, 'विणयंति' विनयंति चाष्टप्रकारं कर्म विनयः, 'प्रादुः प्रकाशने' उक्तं हि—"प्रादुरासीत् मुनिः सिद्धस्तस्मिन्नृपति चेन्मति (जन्मनि)" तथा पाउकरणं दुविहं- पागडकरणं पगासकरणं च ' आणुपुव्वी सुणेह मे ' आनुपूर्व्यनुक्रमः, परिपाटीत्यर्थः, यथोपदिष्टं यथा कार्यं यथा क्रमः सो वा, तथा पठ्यते च ' आणुपुव्विं सुणेह मे ' ॥ १ ॥ स्यान्मतिः-कथं विनीतो भवति ?, उच्यते-' आणाणिद्देसकरे ' सिलोगो (२ सू० ४४) आज्ञाप्यतेऽनया यस्य आज्ञा, निर्देशनं निर्देशः, आज्ञैव निर्देशः, अथवा आज्ञा-सूत्रोपदेशः, तथा निर्देशस्तु तदविरुद्धं गुरुवचनं, आज्ञानिर्देशं करोतीति आणाणिद्देसकरो, गुरुरेव गुरुः तस्स गुरुणो, उपपतनमुपपातः, शुश्रूषाकरणमित्यर्थः, ' इंगिताकारसंपन्नो ' इङ्गितमेव आकारः इङ्गिताकारः, अथवा इङ्गितं कंपितमित्यर्थः, तद्यथा-शिरःकंपो भ्रूहस्तक्षेपो वा, आकृतिराकारः, तथा ' नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां, गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ' अथवाऽऽगंतुगमागारं चेति सोत्तुमाकारं, वेत्तुमाकारं, जहा ' अवलोयणं दिसाणं वियंभणं साडगस्स संठवणं । आसणासिढिलीकरणं

॥ २६ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ २७ ॥

अविनय-फलं.

पट्टियलिंगाइं एयाइं ॥ १ ॥ ' एवमादि संपन्नवान् संपन्नः, स एवंविधो विनीत इत्युच्यते, न हि विनयो विनीतमन्तरेणा-स्तीति अपदिश्यते स एव विनय इति ॥ उक्तो विनयस्तद्विपक्षोऽविनयः, तद्दा हि मूढणयियं कालियं,अत्थापतित्तिकाऊण उच्यते- ' आणाऽणिद्देसकरे ' सिलोगो (३ सू० ४४) पुव्वद्धं कंठ्यं, 'पाडिणीए असंबुद्धो' अनीकं प्रति यदन्यदनीकं तत्प्रत्य-नीकं, सचायं-प्रत्यनीकीभूते विलोमकारि इत्यर्थः, सम्यग्बुद्धः—संबुद्धः न संबुद्धः असंबुद्धः, विनयाद्यकोविद इत्यर्थः, से अवि-णीएत्ति वुच्चति ॥ तद्विपाकस्त्विहैव ' जहा सुणी पूतिकण्णी ' सिलोगो (४ सू० ४५) येन प्रकारेण यथा, श्वसति श्वा स एव शुनीत्युपदिश्यते, अथ शुनीग्रहणं शुनी गर्हिततरा, न तथा श्वा, पूति यस्याः कर्णौ सो भवति पूतिकर्णी, 'निक्कसिज्जति'-त्ति निकृष्यते ' सव्वसोत्ति ' सव्वपागारं सर्वावस्थासु वा सर्वशः, ' एवं ' अवधारणे, दुट्ठशीलो दुःशीलः, अनीकं प्रति यद-नीकं, स चायं प्रत्यनीकीभूतो प्रतिलोमकारीत्यर्थः, जइ जं भणितं न काहं, जत्तो वारेसि तत्थ वासेज्जा।(सोच्चा) किं अरिं जराओ, घेत्तुं उदयं ण दिण्णोमि ॥ १ ॥ मुहेण अरिमावहतीति मुहरी, यत्किंचित्प्रलापीत्यर्थः, स्याद् बुद्धिः- किं सो एवं करोति जेण निक्कसिज्जति ?, उच्यते, स्वभावोपघातात्, दिट्ठंतो- ' कणकुंडगं ' सिलोगो (५ सू० ४५) कणा नाम तंदुलाः, कुंडगाः कुक्कसाः, कणानां कुंडगाः कणकुंडगाः, कण्णमिस्सो वा कुंडकः कणकुंडकः,सो य बुद्धिकरो,सूयराणं प्रियस्सश्च, सः तदमवि कणकुंडकं ' जहित्ताणं ' ति ' ओहाक् त्यागे ' तत्थ जहातीति भवति, स्वभावोपहतबुद्धित्वात् 'विट्ठं भुंजति सूयरो' विट्ठं- पुरीसं, यथेति वाक्यशेषः, एवं शीलं जहित्ताणं दुःशीलभावो दौःशील्यं तस्मिन् दौस्सील्ये, रमति, मृगवत् मृगः, दुःशीलो सीमंतेहिं णिक्क-सिज्जति,अतः ' सुणियाऽभावं ' सिलोगो (६ सू० ४६) श्रुत्वा-सुणिया, असोहणो भावो अभावो, जहा असोहणं सीलं

॥ २७ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८|| दीप अनुक्रम [३-४८]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ २८ ॥

जस्सेति असीलः, अथवा न भावः, जहा अभावो देसस्स णगरस्स वा वट्टति, साणस्स पूतिकण्णस्स सूयरस्स कणगकुंडकं चइत्ताणं, एवं दुःसीलनरस्सेति, यस्ताभ्यामनुसासिति-एवं दुःशीले पडिणीए, विणये ठवेज्ज अप्पाणं पच्छद्धं कण्ठ्यं, सो हि ण पूतिसुणगो व णिक्कसिज्जति, यतश्चैवं 'तम्हा विणयमेसिज्जा' सिलोगो (७ सू० ४६) तम्हा इति कारणाद्विनयं 'एसेज्ज' त्ति विणयं कुर्यादित्यर्थः, येन किं लभ्यते ?, विनयाच्छीलं प्रतिलभ्यते, कोऽभिप्रायः ?- आचार्या हि सम्यगुपचर्यमाणाः श्रुतेन लाभयन्ति, सोए (चोय) णादिभिश्च, इत्यतो विनयकरणाच्छीलं प्रतिलभ्यते, विनयः प्रतिलभ्यते इत्यर्थः, 'बुद्धवुत्ते णियागट्ठी' बुद्धैरुक्तं बुद्धोक्तं ज्ञानमित्यर्थः, तदेव च नियाकं निजकमात्मीयं, शेषं शरीरादि सर्वं पराक्यं, बुद्धा नामाचार्याः, बुद्धानां वा पुत्राः, नियाके यस्यार्थः स भवति णियागट्ठी, ण णिक्कसिज्जति कण्हुती, न कुतश्चिदपीत्यर्थः। एवंविधश्च ण णिक्कसिज्जति 'णिसंते सिया' सिलोगो (८ सू० ४६) अहियं शांतो निशान्तः, अक्रोधवानित्यर्थः, अत्यन्तशान्तचेष्टो वा, मुखे अरिमावहतीति मुखरी, न मुखरी अमुखरी, दान्तेन्द्रियः, बुद्धाः आचार्याः, अंतिकमत्यासं, तेषामंतिके तिष्ठन् सुप्रशान्तो अमुखरी दान्तश्च भवेदिति, अथवा प्रशान्तोऽमुखरी दान्तश्च तेषामंतिके तिष्ठन् अत्थयुत्तानि सिक्खेज्जा, अर्थेन युक्तानि सूत्राण्युपदेशपदानि वा, न येषामर्थो विद्यत इति निरत्थाणि, तु विशेषणे, जहा 'भारहरामायणादीणि' अथवा दिच्छो दविच्छो पाखंड इति, अथवा इत्थिकहादीणि ॥ जति पुण णिरत्थगाणि सिक्खमाणो आयरियादीहिं अणुसासिज्जेज्ज तदा 'अणुसासितो ण कुप्पेज्जा' सिलोगो (९ सू० ४७) अणुकूलं सास्यते स्म अनुशासितः, कुप्यते येन स कोपः तं न कुर्यात्, क्षमता क्षान्तिः तं सेवेज्जा, पापाड्डीनः पंडितः, पण्डा वा बुद्धिः, पण्डितः तयाऽनुगतः, स एवंविधः खुड्डेहिं समं संसर्गं, बालकैरित्यर्थः,

शिक्षारीतिः

॥ २८ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

॥ २९ ॥

क्रोधप्रकरणं

क्षुणतीति क्षुद्रः, क्रूरकर्म्मा इत्यर्थः, क्षुद्रकर्मणो वा, संसर्जनं संसर्गः, हास्यं च क्रीडा च हास्यक्रीडे, तत्र हास्यं भासित्ता पासित्ता सुणेत्ता संभरेत्ता य भवति, हसंतो मोहणिज्जं बंधति, लोगपरिवायो सज्झायोवरोहे सूलादि वा होज्जा अतिहासात्, उक्तं च— " जीवेणं भंते ! हसमाणेण वा उस्सुयमाणेण वा कति कम्मपगडीओ बंधति ?, गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा " क्रीडंतोऽप्येवमेव, कीडा गाहा वक्वाल (वण्णलो) वादीहिं, अहवा जं कीडपुव्वगं हास्यं तद्विवर्जयेत्॥ अयमन्यो विनयोपदेशः, 'मा य चंडालियं कासी' सिलोगो (१० सू० ४७) चंडो नाम क्रोधः, ऋतं सत्यं, न ऋतमनृतं, पागते तु तमेव अलियं, चंडं च अलियं च चंडालियं, अथवा चंड इति क्रोधः, अल पर्याप्तौ, चंडेन अलं यस्य भवति चंडालः–पर्याप्तक्रोध इत्यर्थः, चंडभावः चंडालिकं, चंडालेन कलितः चंडालः (लिङ्गः), तं मा य चंडालियं कासि, चंडाल इव चंडालः चंडालमागलायति, चंडेन वा आगलितः चंडालः, आरुढोवि य हासविकहापसंगेसु'बहुयं मा य आलवे' बहुयं-बहुपरिमाणं, अमानोनाः प्रतिषेधे, भृशं लपत्यालपेत्, स्वाध्यायादिव्याघातः वायुसंपदे मा (आत्म) बाधायै, तेन कार्यमात्रं भाषेत्,'कालेन अहिज्जित्ता' कलाभिर्निर्वर्त्तितः कालः,सूक्ष्मामपि कलां कलयत इति कालः,सकलयति भूतानि वा कालः,यो हि यस्य अध्ययनस्य कालःकालिकस्येतरस्य वा तस्मिन् काले अधीत्य 'ततो झाएज्ज एक्कओ'उक्तं हि'-एकस्य ध्यानं द्वयोरध्ययनं त्रिप्रभृतिग्रामः,' एवं लौकिकाः संप्रतिपन्नाः, वयं तु ससहायो असहायो वा रागद्वेषासहायवान् एक एव, 'आहच्च चंडालियं कट्टु' (११सू.४८) आहच्चेति कदाचित्, यदिह नाम कदाचिन्निग्रह परस्यापि सतः सहसा चण्डालः उदीर्यते तमुदीर्ण्णं निन्हवेत् ,तद्यथाऽऽह्वानं निन्हवं, व्यपलाप इत्यर्थः, योग्यप्रकाशः कोधः, सोऽपि न निह्ववितव्यः, तत्रात्मनिन्हव एव भवति, सदा वा अचक्षुर्दानादिभिः परैरुपलक्षयित्वा उच्यते-भवान् ममान्यस्य वा रुषित इति,

॥ २९ ॥

*** अत्र क्रोध एवं चंडरुद्राचार्यस्य दृष्टान्त कथयते

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

तथापि न निन्हवितव्यं, एवं प्रकाशमपि कृत्वा अनुपशान्तोऽपि प्रत्युद्यमकरणात् ब्रवीत्यहम् शान्त इति, एष निन्हवः, एवं मृषावादेऽपि प्रत्यक्षे वाऽप्रत्यक्षे वा न निन्हवितव्यं, कदाचिदिति अहनि रात्रौ वा, प्रत्यादिष्टस्त्वपरेण 'कडं कडेत्ति भासेज्जा' सत्यमहं रुषित आसीत् अनृतं वा मयोक्तं, अकृते तु न परस्स सत्केण वत्तव्वं- यथाऽहं कारीति, मा भूदस्य मृषावाद इति। जं एक्कसिं पडिचोइज्जति अवराहे तस्मात् प्रभृत्येव निवर्त्तितव्यं 'मा गलीअस्सेव कसं' सिलोगो (१२ सू.४८) मा गलिअस्सो— कपिहो सो गलिआओ अवहमाणो स्वयमेव कसं प्रहारादीनि इच्छति, कर्म्मवत्कर्म्मकर्त्ता इतिकृत्वा स्वयमेवासौ कशामिच्छति, जहा वाहं नेच्छेत्, एवमयमपि यथा कृत्येष्वर्थेष्ववर्त्तमानः पुनर्वचनमिच्छति, चोदनामित्यर्थः, 'कसं व दट्टुमाइन्नो' कशतीति कशः 'कश गतिशातनयोः' य(त)था बलविनयसौमुख्यादिभिर्गुणैराकार्य इति आइण्णो, स हि कसमेव दट्ठुं गृह्यमाणमुत्क्षिप्यमाणं वा सारथेरनुकूलं गच्छाति, एवं सिस्सोऽवि इंगितादीहिं आयरियभावमुवलक्खेऊण तहा करेइ, पावं वज्जइत्ता, पापमकृत्वेत्यर्थः, तं वर्जयन् वैनायिकं सेवितो, एवं हि कुर्वताऽऽचार्यस्य वाक्यादिश्रमः परिहृतो भवति (तंडीति वा गलीति वा मरालीति वा एगट्ठा, सो पुण वच्चंतो कीरइ आसेण वा गोणेण वा, आइण्णे वा विणीए वा भद्दए वा एगट्ठा) ये पुनरिदानीं 'अणासवा थूलवया' सिलोगो (१३ सू.४९) न शृण्वंतीत्यनाश्रवाः जं भणितं न काहं, पठ्यते 'अणासुणा थूलवया' ण सुणेंति अणासुणा, थूराणि वयांसि येषां, अनिपुणातिस्थूलशब्दा अविनीतेत्यर्थः, कुत्सितशीलाः कुशीलाः, मिदुंपि चंडं पकरेंति सिस्सा, मिदुंपि—अकोहणसीलंपि कोधणशीलं करेंति, अपिशब्दात् अन्यमन्नतमक्रोधी वा, उक्तंहि—"शिष्यकस्यैव तज्जाड्यं, यदाचार्यः प्रमादवान्। कुदारुषु सुतीक्ष्णोऽपि, परशुः प्रतिहन्यते ॥ १ ॥" जे पुण चित्ताणुगा चित्तं अणुगच्छंतीति चित्ताणुगा लाघवोपपेता दक्षत्वेन च उव

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ३१ ॥

चण्डरुद्राचार्यः

लाघवेनाविलंबमाना निर्देशाथोपतिष्ठंते, दक्षोपपेता नाम आज्ञां शीघ्रं कुर्वन्ति, यदान्यत् वैयावृत्याय, 'प्रसादये' प्रसादयन्ति 'त' इति एवंविधा सिस्सा, हु विसेसणे, दुष्टमाश्रयंति तमिति दुराश्रयं, अग्निवत्, अत्रोदाहरणं चंडरूद्देण- अवंतीजणवए उज्जेणीए ण्हव[णा]णुज्जाणे साहुणो समोसरिया, तेसिं सगासि एगो जुवा उदग्गवेसो वयंससहितो उवागतो, सो ते वंदिऊण भणति ते बालुके- तुज्झं मम संसारातो उत्तारेही, पव्वयामित्ति, तेहिं एते अम्हे पवंचेतीतित्तकाऊण 'घृष्यतां कलिना कलि'-रिति चंडरुद्दं आयरियं उवदिसंति, एस ते नित्थारिहिन्ति, सो य सब्भावेण फरुसो, ततो सो तं वंदिऊण भणति-भगवं! पव्वावेह ममेति, उच्चारणमाणेहित्ति, आणिएण लोयं काऊण पव्वाविओ, वयंसा य से अद्धितिं काऊण पडिगता, तेऽवि उवसयं णिययं गया, विलंबिए सूरे पंथं पडिलेहित्ति विसज्जिओ, पडिलेहिउमागतो, पच्चूसे निग्गया, पुरओ वच्चत्ति भणिओ, वच्चंतो पंथाओ फिडिओ, चंडरुद्दो खाणुए पक्खलिओ, रूसिएण हा दुट्ठसेहत्ति दंडएण मत्थए आहतो. सिरं फोडितं, तहावि संमं सहति, विमले पभाए चंडरुद्देण रुधिरोग्गलंतविदारियमुद्धाणो दट्ठो, दुट्ठु कयंति संवेगमावण्णेण खामिओ, एवं दुरासज्जंपि पसादए। विनयाधिकार एव आयरियसमीवे वसंतो 'णापुट्ठो वागरे किंचि' सिलोगो, (१४ सू.५१) ण अपुच्छिओ वागरेज्ज किंचिदिति अत्थपयं पुव्ववत्तं वा कहं वा चरियं वा जतिवि जाणति, 'पुट्ठो वा णालियं वदे' पुट्ठो वा- पुच्छिओ आयरिएहिं, जहा- अज्जो! तुमं किर अमुकं जाणसि?, तत्थ अजाणमाणेण वत्तव्वं-जहा ण जाणामि, जाणमाणेण वा जाणामित्ति वत्तव्वं, सब्भूयमेव वत्तव्वं, गिहिणावि पुट्ठो णालियं, अन्यत्र सावद्यात्, यदिवा क्रोधकारणे सत्याक्रोशादौ परस्य रुष्यते कथंचित्, तत्र तं क्रोधं असच्चं कुव्वेज्ज, अफलमित्यर्थः, कथं?, उच्चते, कोवस्सुदयनीरोहो वा उदय- ॥ ३१ ॥

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ३२ ॥

क्रोधस्या सत्यता

पत्तस्स वा कोहस्स विफलीकरणं, अत्रोदाहरणं- कस्सय कुलपुत्तस्य भाया वेरिएण वावाइतो, सो जणणीए भण्णति-पुत्त! पुत्तघातयं घातेसुती, ततो सो तेण जीवंतओ गिण्हिऊण जणणिसमीवमुवणीतो, भणिओ य णेण--भातिघातय! कहि ते आहणामित्ति?, तेण भणितो-जहिं शरणागता आहम्मंति, तेण जणणी अवलोकिता, ताए भण्णति-पुण पुत्त ! ण| शरणागया आहम्मंति, तेण भण्णइ-कहं रोसं सहलं करेमित्ति. तीए भण्णइ- ण सव्वत्थ रोसो सफलो कज्जति, पच्छा सो तेण विसज्जितो, एवं कोहं असच्चं कुव्वेज्जा। स्यान्मतिः-कथमसत्यः क्रियते?, उच्यते, धारयता प्रियमप्रियं, एत्थोदाहरणं-असिवोवद्दुते णगरे तिन्नि भूयवादित्ता रायाणमुवगता, अम्हे आसिवं उवसामेमोत्ति, रायणा भणियं-सूणेमो केणोवाएणंति, तत्थेगो भणति-अत्थि महेगभूते, ते सुरूवं विउव्विऊण गोपुररत्थासु परिअडति,तं न निहालियव्वं, तं निहालियं रूसति, जो पुण तं निहालेति सो विणस्सति, जो पुण तं निहालिऊण अहोमुहो ठाति सो रोगाओ मुच्चति, राया भण्णति-अलाहि एतेण अतिरोसणेणंति, बितिऊ भणति-महच्चयं भूतं महइमहालयं रूवं विउव्वति लंबोदरं टिट्टिभकुक्षि पंचशिरं एक्कपादं विसिहं विस्सरूवं अट्टट्टहासं विणिम्मुयंतं गायंतं पणच्चंतं विक्रांतरूवं, दट्ठूणं जो पहसति पवंचेइ वा तस्स सतहा सिरं फुट्टति, जो पुण तं सुहाहिं वायाहिं अभिणंदती धूयपुप्फाईहिं पूएति सो सव्वामयाओ मुच्चति, राया भणति-अलमेएणंति, ततितो भणति-ममवि एवंविहं एव, णातिविसेसकरं भूतमत्थि, प्रियाप्रियणिव्विसेसं तु, पवंचिज्जमाणं व लोएहिं तहा पूइज्जमाणं थुव्वमाणं पवंधिज्जमाणं अभिनंदिज्जमाणं पूयाईहिं पूइज्जमाणं सव्वमेव प्रियाप्रियकारिणं दरिसणादेव रोगेहिंतो मोययाति, राइणा भणियं-एवं होउत्ति, तेण तहा कए आसिवं उवसंतं, एवं साधूवि असारूपत्ते सति शब्दादिप्रतिकूलगामित्वेन परेहिं परिभूतमाणो पवंचिज्जमाणोवि हाम्मिज्जमाणोवि तहा थूयमाणो वा पूइज्जमाणो वा तं प्रियाप्रियं सहेत, किंच मा आयरियस्स ॥ ३२ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने

॥ ३३ ॥

सेचमको हस्ती

परिकिलिस्सं कलिसिंति मा वा आयरिया उवरि भएणं सिस्सति जहा ममं सो दाम्मिहिसीत्ती अतो भण्णति 'अप्पाणमेव दमए' सिलोगो (१५सू ५२) दमो दुविहो-इंदियदमो णोइंदियदमो य, इंदियदमो सोइंदियाईणं दमो, णोइंदियदमो कोहकसायादिदमो, अतो अ तेण दुविहेणवि दमो ण अप्पाणं दमए, स हि आत्मा दुष्टाश्ववत् अश्ववत्सु दुःखं दमयितुं,उक्तंहि-"निरनुग्रहमुक्तिमानसो विषयाशोकलुषस्मृतिर्जनः। त्वयि किं परितोषमेष्यति ? द्विरदस्तंभ इवाचिरग्रहः ॥ १ ॥" इमे अदंतदोसा-'सद्देण मतो रूवेण पतंगो महुयरो य गंधेणं । आहारेण य मच्छो बज्झति फरिसेण य गइंदो ॥१॥ दांतगुणास्तु 'अप्पा दंतो सुही होइ' दुद्दंतो अदन्ताणंति, जे चऽदंतिन्दिआ बद्धा इतरे मुक्का, इहलोगेऽवि अदंतिंदिया पारदारीकादयो विनश्यंति, तद्विपर्ययतस्तु इह परत्र च नंदंते, अत्रोदाहरणं—दो भायरो चोरा, तेसिं उवस्सए साहुणो वासावासमुवगता, तेसिं वासारत्तपरिसमत्तीए गच्छंतेहिं तेसिं चोराणं अण्णं वतं किंचि अपडिवज्जमाणाणं रत्तिं न भोत्तव्वंति वयं दिण्णं,अण्णया तेहिं सुबहुतं गोमाहिसं आणीयं, तत्थ अन्ने माहिसं मारेत्तु मंसं खइउमारद्धा, अण्णे मज्जस्स गता, मंसं खाइत्ता संपहारिन्ति-अद्धगे मंसे विसं पक्खिवामो, तो मज्जइत्ताण दाहामो, ततो अम्हं सुबहु गोमाहिसं भागेण आगमिस्सति, मज्जइत्तावि एवं चेव समत्थेंति, एवं तेहिं विसं पक्खित्तं, आइच्चोऽवि अत्थं गतो, ते भायरो ण भुत्ता, इतरे परोप्परं विससंजुत्तेण मज्जमंसेण उवभुत्तेण मता, मरिऊण य कुगतिं गया, इयरे इह परलोए य सुहभाइणो जाया, एवं ताव जिब्भिंदियदमो, एवं सेसेसुवि इंदिएसु अप्पा दंतो सुही होइ अस्सि लोए परत्थ य । किंचान्यत् ?- 'वरं मे अप्पा दंतो' सिलोगो (१६सू०५३) कंठ्यः, उदाहरणं सेतणओ गंधहत्थी, अडवीए जूहं महल्लं परिवसति, तत्थ जूहपती जाते २ गतकलभे विणासेति, तत्थेगा करणी आवण्णसत्ता चिंतेति-जति कहिंचि मम गयकलभओ जायति सो एतेण विणासिज्जति- ॥ ३३ ॥

*** अत्र सेचनकहस्ति-दृष्टान्तदर्शयते

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

॥ ३४ ॥

उपवेशन विधिः

त्तिकाउं लंगंती ओसरति, जूहाहिवेण जूहे छुब्भति, पुणो पुणो ओसरति,ताहे बितिततितियदिवसे जूहेण मिलति, ताहे एगं रिसिया-समि पयं दिट्ठं, सा तत्थ अल्लीणा, संवणिया य णाए रिसयो, सा पसूया सेतगयंकलभयं, सो तेहिं रिसिकुमारेहिं सहितो पुप्फारामं सिंचीति,सेतणगात्ति से नाम कतं, वयत्थो जातो, जूहं दट्ठूण जूहवतिं हंतूण जूहण्णेण पडिवन्नं, गंतूण य अणेण सो आसमो विणासितो-मा अन्नावि काइ एवं काहित्ति, ताहे ते रिसओ रूसिता पुप्फफलगहितपाणी सेणियस्स रण्णो सगासमुवगया, कहियं चणेहिं-एरिसो सव्वलक्खणसंपण्णो गंधहत्थी सेयणओ णामा, सेणिओ हत्थिग्गहणेणं णिग्गतो, सो य हत्थी देवयापरिग्गहितो, ताए ओहिणा आभोइओ जहा अवस्सं घेप्पति, ताए सो भण्णति-पुत्त! वरं ते अप्पा दंतो, ण यसि परेहिं दंमंतो बंधणेहिं वहेहि य, सो एवं भणितो सयमेव रत्तीए वारिं गंतूण आलाणखंभं अस्सितो, एवमिहापि, वरं मे अप्पणा दंतो० सिलोगो, उक्तं च-'वरं हि ते कर्तुमनिग्रहोचिता, वशेऽवशा इन्द्रियवाजिनः शठ !। न चास्मि (सि) तैः शीघ्रमनर्थगामिभिर्दुःखार्णवश्वभ्रतटेषु पातितः ॥ १ ॥" अयं ताव अप्पणा ठियो उवदिट्ठो, अयमर्थो-आयरियस्स न य अविणओ पउंजियव्वो 'पडिणीयं च बुद्धाणं' सिलोगो (१७ सू० ५४) पडिणीतो भणितो, बुद्धा आयरिया, तत्थ वायाए ण तुमं जाणसि, तुमं हमंति वा भणंति, यद्वा अन्यदपि वाचा विरुद्धं गुरुसमक्खं परोक्खं वा भणति, 'कंमुणा' आयरिओवज्झायाणं सेज्जासंथारए णिसीयति, हत्थपाएहिं वा संघट्टेति, आसण्णानि वा गच्छगाति (गमागमाइ) करेति, 'आवी वा जति वा रहस्से' आविः प्रकाशे, आविर्वा सर्वाग्रे,रह त्यागे, उभयग्रहणं मा भूत् कश्चिदेकं करिष्यति, आकुले मध्ये वा विनयं च हापयिष्यति, एतानि पडिणीयादीणि णो कुर्याद् कदाचिदपि ॥ अयमण्णो पज्जुवासणविनयो आयरियस्स,कयरम्मि पदेसे ण ठातितव्वंति ?, भणति- 'ण पक्खतो'

॥ ३४ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने

॥ ३५ ॥

प्रतिश्रवण विधिः

सिलोगो (१८ सू० ५४) पक्षत्यनेनेति पक्षः, पुरुषस्य हि भुजावेव पक्षौ, ततः पक्षतश्चेति इत्युक्तं, तथा पक्षयोः भासमाणस्स से मुहप्पेरिता सद्दपोग्गला कण्णबिलमणुप्पविसंति, कण्णसमसेढी पक्खो, ततो ण चिट्ठे गुरूणंतिए, तहा अणेगग्गता भवति, पुरतो प्रत्युरस्यपि च विणए वंदमाणाण य विग्घतोत्ति, समं पाट्ठिओ पेट्ठओ, णेव ठिज्जा किच्चाण पिट्ठतोत्ति, आयरियं पिट्ठओ काउं आयरियाण पट्ठिं दाऊण ण चिट्ठेज्जा, उरुगमुरुगेण संघट्टेऊण एवमवि ण चिट्ठेज्जा, जति य कहिंचि आयरिएहिं सद्दितो होज्जा ततो सयणे न पडिसुणे, सयणं सयणीयं तंमि निवन्नो निसन्नो वा न पडिसुणेज्जाऽऽयरियस्स वयणं, किन्तु आयरियसगासमागंतूणं वंदिऊण विणयेण पडिसुणेज्जा, इमो कायगो विणयो, गुरुसमीवे 'णेव पल्हत्थियं कुज्जा' सिलोगो (१९सू०५४) पल्हत्थिया पत्ते ण कज्जति, पक्खपिंडो दोहिंवि बाहाहिं उरूगजाणूणि घेत्तूण अच्छणं, सेसं कंठ्यं, इमो आयरियवयणपडिसुणणाविणओ-'आयरिएहिं वाहिन्तो' सिलोगो (२०सू०५५) वाहिंतो णाम सद्दितो, 'ण कयाइवि' त्ति दिया वा रातो वा भुंजमाणो पियमाणो वा, पासादपेही पसीदए जेण प्रसीदनं वा प्रसादः तं पसादं 'पेहि' त्ति केणायं उपकारेण विणएण वा पसिज्जेज्जा ?, 'णियागट्ठी' णियागं णिदाणं नियगमित्यर्थः णाणातितियं वा णियगं आत्मीयमित्यर्थः, सेसं सरीरादि सव्वं परायगं, णियाएणऽट्ठो जस्स सो णियागट्ठी, उपेत्य तिष्ठेत वा चिट्ठेज्जा, गुरूं-आयरियं, सदा-सव्वकालं । आयरियस्स वयणं कहं सुणेतव्वंति ?, भण्णति—' आलवंते लवंते वा ' सिलोगो (२१सू०५६) आलवं एक्कसिं, लवणं पुणो पुणो, आलवंते लवंते वा आयरिए सीसेण न णिसीतित्ता सोतव्वं, इऊण आसणं पीठगादी धीरो धीः—बुद्धिः इतः—परिगतः तया इति धीरः ' यतो ' मनोवाक्कायैः ' जत्तं ' प्रयत्नेन पडिसुणे। इदाणिं किच्चकाणं वचोवागरणं वा वागरणं वा पुच्छमाणो सीसो आयरियं ' आसणगतो ण

॥ ३५ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८|| दीप अनुक्रम [३-४८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ३६ ॥

भाषादोषवर्जनं

पुच्छे ' सिलोगो (२२ सू०५५) आसणं- पीढं फलगं भूमिं वा तत्थ गतो यदुक्तं उवेट्ठो, णिसिज्जगतो णाम भूमीए संथारए वा संचिट्ठो, 'कयाइ' कदाचित्, परिसागतं अपरिसागतं आयरियं दिया वा राओ वा. कहं पुच्छेज्जा ?, उच्यते—'आगम्मुक्कुडुओ संतो ' आगम्म गुरुसगासं उक्कुडुगासणो पुच्छेज्ज,पंजलिउडो अञ्जलिं मत्थए काऊणं । इदाणिं आयरियस्स विणओ भण्णति-' एवं विणयजुत्तस्स ' सिलोगो (२३ सू० ५६) कंठो। ' वागरेज्ज जहा सुतं ' ति,जहा सिक्खियमिति, भणितो पज्जुवासणाविणतो, अयमण्णोऽवि पज्जूवासणाविणय एव, अहवा चरित्तविणयो,आयरियं पज्जुवासमाणे 'मुसं परिहरे भिक्खु' सिलोगो (२४ सू० ५६) मुसं-वितहं तं परिहरे, ओहारिणी नाम यदवधारणेनोच्यते, एवमहं करिष्यामि वक्ष्यामि गमिष्यामि वेति, ' भासादोसं परिहरे ' भासादोसा असच्चभूतोवघातिकक्कसणिट्ठुरकडुयवयणादि अणेगहा ते परिहरे, मातानियडी तामपि वर्जयेत् सदा-सर्वकालं ॥ अयमपि भासादोस एव ' ण लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं ' सिलोगो (२५ सू० ५६) पुट्ठो णाम पुच्छितो मृगाद्युदकं वा सावज्जं, अहवा नक्खत्तं सुविणं जोगं सावज्जमवज्जजुत्तं, णिरत्थयं जहा दस दाडिमानि षडपूपा कुंडमजाजिनं पललपिंड पूरकीटिके दिवा दिशमुदीचीं स्पर्शन कस्या(त्वं)पिता प्रतिशीत इत्यादि, अथवा-वंजुलफलवित्तमीसा उच्चक्खुडकुसुममालिया सुरभी । वरतुरगस्स विरायति ओलग्गा अग्गसिंगेहिं ॥ १ ॥ एवंविहं ण भासेज्जा, म्रियते येन तन्मर्म,मर्म कृन्ततीति मर्मकृत्,यथा इत्थिकारी भवान्, तं तु लोगरायविरुद्धं वा,भणियं च–" जम्मं मम्मं कम्मं तिन्निवि एयाइं परिहरेज्जासि । मा जम्ममम्मविद्धे मरेज्ज मारेज्ज वा कंचि ॥ १ ॥ " तं तु ' अप्पणट्ठा परट्ठा वा ' आत्मार्थे-ममैव किंचिद्दास्यति, परार्थं श्रावकेन निजेन चार्थितो ब्रवीमीति, एवं भवेत्सावद्यमुभयार्थे, प्रद्विष्टो ब्रवी- ॥ ३६ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

॥ ३७ ॥

मीति, एवं मर्म कर्मापि, आत्मार्थे अधिक्षिप्तः रोषितः परेण, परार्थे यद्यस्य ज्ञातकः सुहृद्वा केनचिदधिक्षिप्तो भवति, मर्माणि वा स्पृष्टः तदाऽसौ तन्मर्माणि पडिश्रवति, जहा 'कच्छूल्लुउड्डियाए जो जातो गद्भेण मूढेण । तस्स महाजणमज्झे आयारा पागडा होंति ॥ १ ॥' अंतरेण वत्ति मिहो अंतराले, मिथो रहस्से, योगे च द्वयोर्बहूनां वा ब्रुवतां मिथः, नेडंतराले वा,अमनमंतः अम्यते वा, नांतरकथं कुर्यात्, मा भूदप्रियं तेषां तयोर्वा, उक्तं च-'द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्!' अयं चान्यश्चारित्रविनयः-'समरेषु अगारीसु' सिलोगो (२६सू०५७) समरं नाम जत्थ हेट्ठा लोहयारा कम्मं करेंति, अहवा सहारिभिः समरः, अरिभूता हि यतिनां स्त्रियः,समरं नाम दिट्ठादिट्ठीसंबंधो तासिं, आगारं नाम सुण्णागारं, असुण्णागारं संधाणं संधि, बहूण वा घराणं तिण्हं घराणं यदंतरा, महापहो रायपहो, महापहग्गहणं अभिजणाइण्णे, किं पुण विजणे, अहवा महापहो वहियादीणं, उभओ वइगुत्तो गंभीरो, अण्णेसु त एवमादिएसु संकणिज्जेसु 'एगो एगित्थीए' सेसं कंठ्यं॥जइ य इत्थिनिमित्तेण अन्नेण वा केणइ खलितो वा होज्ज तत्थालंबणं'जं मे बुद्धाणुसासंति'सिलोगो(२७सू.५७)यदि तस्मिन् खलिते बुद्धा-आचार्या अनुकूलं सासंति, शीतेन स्वादुना इत्यर्थः, अथवा शीलाविरुद्धेन शीलेन शीलमेव वा आचार्याणामनुशासनं, यथा भास्करः भूपतिः, 'फरुसेणं'ति परुषं-स्नेहवर्जितं यत्परोक्षं निष्ठुराभिधानं वा, यदेतत् सर्वमपि'मम लाभे'त्ति पेहाए,एमेव य भावयन् , मां कृतापराधं शीतलेनानुशासति यच्च मां परुषं वदंति न निष्काशयन्ति,अथवा किं गुरूणं परिहायिस्सति यद्यहं अनाचारशबलत्वाद्विराधयिष्यामि बोधिं, तदेतच्छीलं परुषं वाऽनुशासनं मम लाभोत्ति पेहाए,लाभेन वा प्रसभं यतः,तं पडिसुणे कृतांजलिःउत्फुल्लविनयः॥अयंच विनयः-'अणुसासणमोवायं' सिलोगो (२८सू०५८) अणुसासणं पसंसणमित्यर्थः, उवाये नाम आयरियस्स सुस्सूसासंथारकरण-

॥ ३७ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने

॥ ३८ ॥

पर्युपासना विनयः

विस्सामणादि यच्चान्यदपि तस्य कृत्यं स उवायं,दुक्कडस्स य चोयणा,चुक्कखलिएसु,चोदणा, तदेव अणुसासणं उवातं दुक्कडचोदणं व हितं मण्णती पण्णो, हितमिह परप्रज्ञावान् प्राज्ञो,'वेस्सं होति असाहुणो' तान्येव अनुसासन उवायं चोदनादि, अनेकमेकादेशात्, हितं नतु मन्यतेऽप्राज्ञः देश्यं असाधोः असाधुत्वकारिणः, असाधुरिव असाधुः॥ स्यात्किमालंबनं कृत्वा प्राज्ञः तद्धितं मन्यते?- 'हितं विगतभया बुद्धा'सिलोगो(२९सू.५८)विगतं भयं यस्य विगतं वा भयतो भयमितस्तस्य भयं विगतं,तस्य न भयमुत्पद्यते इत्यर्थः, यतश्च भयं नोत्पद्यते हितमेव पद्य(मन्य)ते, अत एवासौ विगतभयस्तस्माद्विगतभयाद्,बुध्यते स्म बुद्धः,परुषमप्यनुशासनं, मन्यत इति वाक्यशेषः, कुलपुत्रवत्, प्रमादस्खलिते गुरुवचनं, तदेवाकुलपुत्रस्येव गुरुवचनं वेस्सं तं होइ मूढाणं द्वेष्यं, तदिति वेस्सं, मूढत्वान् मूढः, क्षमणं क्षान्तिः सोधिमेव करोति खंतिसोहिकरणं, तस्य हि स्वभावोपहतत्वात् क्षान्तियुक्तमपि पदमसकृत् पसादाधिकारं वेस्सं होति मूढाणं। इमोवि पज्जुवासणाविणय एव-'आसणे उवचिट्ठेज्जा' सिलोगो(३०सू०५९)उपेत्य तिष्ठति जति वरिसासु आसणं सेवेज्ज पीढफलगादी तया अणुच्चे ण गुरुआसणा सुमहिकं वा, 'कुच स्पंदने' न कुचनमकुचं विराहणा संजमाताए, तत्थ ठितो संतो,अणुट्ठाई णिरुट्ठाए, अल्पशब्दः अभावे द्रष्टव्यः श्लो(स्तो)के वा,नासावुत्तिष्ठती निरर्थकं, अर्थेऽपि परिमितमेवोत्तिष्ठते, आहारणीहारणिमित्तं गुर्वादेशतो वा, तिष्ठन्नपि 'अप्पकुक्कुए' त्ति न गात्राणी स्पंदयती ण वा अबद्धासणो भवति, अन्नत्थूसासणीससितादी अत्थस्सेह मुक्त्वा शेषमकुकुचो। अकुचित्वप्रतिपक्षे कुचित्वं, तत्परिणामार्थमित्युच्यते—'कालेण णिक्खिवे (क्खमे')

॥ ३८ ॥

सिलोगो (३१सू०५९) ग्रामनगरादिषु जहोचितं भिक्खावेलाए, कालेनेति तृतीया तेन सहायभूतेन, निक्खमे पडिस्सयातो गच्छेज्जा, णातिवेलातिकंतं, कालेणेव पडिकमे--पडिनियत्तेज्जा, एत्थ खेत्तं पहुप्पति कालो पहुप्पइ भाणं पहुप्पइ, ते अट्ठ भंगा जोएयव्वा

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८|| दीप अनुक्रम [३-४८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने || ३९ ||

गोचरे-स्थानविधि

जहोचियं, विवरीयं 'अकालं च' त्ति अकालमप्पत्तमतीतं वा एव 'विवज्जेत्ता' चईऊण (ण) केवलं सि(भि)क्खाए पडीलेहणादीणमवि जहोचिते काले ॥ भिक्खमडंतो 'परिवाडिए न चिट्ठेज्जा' सिलोगो (३२सू०५९) परिवाडी णाम संखडिपरिवेसणाए अंतए चिट्ठज्जा, जति आगतो(त)मत्तो चेव न लब्भति ता वोलेइ, परिवाडी चिट्ठमाणस्स दोसो, दुराहडं अंतरि भोयणापेच्छाइ उक्खेवणिक्खेवादी दायगस्स, अविय-अदूरे चिट्ठमाणस्स उवसामणा दत्तेसु, दत्तंपि सत् एसणीयं गेण्हइ, पडिरूवं णाम सोभणरूवं, जहा पासादीये दरिसणीज्जे अहिरूवे पडिरूवे, रूपं रूपं च प्रति यदन्यरूपं तत्प्रतिरूपं, सर्वधर्मभूतेभ्यो हि तद्रूपमुत्कृष्टं, तत्तद् रयहरणगोच्छपडिग्गहमाताए, जे वा पाणिपडिग्गाहिया जिणकप्पिता तेसिं गहणं, तेसिं जिणरूवप्रतिरूपकं भवति, यतस्तेन प्रतिरूपेन एसित्ता, एसणा मार्गणा, मितं'माङ् माने' 'बत्तीसं किर कवला आहारो कुच्छिपूरतो भणितो' कालेनेति दिवसतो, न रात्रौ अच्छ (मिए) वा, अद्दुयमविलंबं भक्खए-अश्नीयात्, पविट्ठो गोयरग्गगतो भिक्खानिमित्तं घरमणुपविस्समाणो जो तत्थ कहिंचि पुव्वपविट्ठो सवणवणीमगादी होज्जा ततो तेसिं दायगस्स वा अप्पत्तियादिदोषपरिहरणत्थं न पविसिज्जति, कहिं च पडिवालेज्जा?-'णाइदूरे अणासण्णे' सिलोगो (३३सू०५९) दूरत्थो ण याणति-किं णिग्गया णवत्ति, आसण्णत्थो णज्जति जहा एस परिवाडंतो अच्छाति, अण्णेहिं च अदिस्समाणो, जहा तेसिं संका न भवति, एस ते वणीमगादी णिग्गछते पडिवालेति, अतो चिट्ठज्ज भिक्खणीमित्तं वणीमगादिरहिते, एगो अ रागदोसविउत्तो, लाभालाभे अरागदोषवान्,'लंघिया तं णातिक्कमे'त्ति ते वणीमगादी लंघिऊण ण पविसे ॥अयमपि गोयरविणय एव-'णातिउच्चे व' सिलोगो (३४सू०६०) अतिउच्चे उड्ढमालोहडं भवति, ण य दायगस्स उक्खेवणिक्खेवा दीसंति, अतिणीएवि अधोमालोहडे, ण य एसणं सोहेति, अच्चासण्णेवि एयस्स भिक्खनिमित्तं ठायमाणस्स अपत्तियं तेणसंकादिदोसो होज्जा,

|| ३९ ||

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने

॥ ४० ॥

भोजनं सावद्य-भाषावर्जनं

भणियं च 'अदिभूमिं न गच्छेज्जा, गोयरग्गगतो मुणी। कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मितं भूमिं परक्कमे ॥१॥" अतिदूरेवि एसणं ण सोहेति 'फासुयं परकडं पिंडं' फासुगं-णिज्जीवं परे णाम असंजता तेसिं अट्ठाए कडं पिंडं समयेसणाए भत्तपाणं तं 'पाडिगाहेज्ज संजते' संजए समं जए संजतो । एवं गहणविणयसुद्धस्स भुंजणविणयो उवादिस्सति- 'अप्पपाणप्पबीतंमि' सिलोगो (३५सू०६०) अप्पाणेत्ति वत्तव्वे बंधाणुलोमे अप्पपाणे अप्पबीए, प्राणग्रहणात् सर्वप्राणीनां ग्रहणं, बीजग्रहणात् तद्भेदाः, यदिवा बीजान्यपि वर्जयंति, किमुत हारितत्रसादयः?, तं तु आरामादिसु उवस्सए वा, अपलिच्छन्नं नामाकुडुं अडवीए वा कुंडगादीसु, संवुडो नाम सव्विंदियगुत्तो, 'समयं संजए भुंजे' समतं नाम सम्यग् रागद्वेषवियुतः एकाकी भुंक्ते, यस्तु मंडलीए भुंक्ते सोऽवि समगं संजएहिं भुंजेज्ज, सहान्यैः साधुभिरिति, अहवा समयं जहारातिणिओ लंबणे गेण्हइऽण्णे वा, तथा अविक्किरतवदनो गेण्हति, 'जत' न्ति न यागसिगालादि, भुंक्ते'अपरिसाडगं'ण परिसाडेंतो । सावद्यवयणवज्जणविणएणं'सुकडेत्ति' सिलोगो (३६सू०६१) सुट्ठु कडं सुकडं तं पसंसावयणं मज्झणुमोयणं च एवं सावद्यं वज्जये, सुकडेत्ति सर्वक्रियापसंसणं, सुपक्केत्ति पागस्स, तं पुणो णेहसमणादि,सुच्छिण्णं रक्खादिसु,सुहडे गमेयाततिसु (गामघातादिसु) सुमडे सुमारियवयणकताए अणुवसंतादि, सुणिट्ठिए बहुवेसणं सण्णं णिट्ठाणगादि सुलट्ठे, एवंजातीयमण्णंपि सावज्जं ण लवे मुणी, अणवज्जं पुण लोयकरणं बंभचेरणियागासिणेहपासच्छेदसेहाहरणपंडियमरणअट्ठविहकम्मनिट्ठवणसुलट्ठधम्मकहादि सिलोगो जहासंखेण लवे से ॥ एवं विणीयविणयस्तथा करोति यथा क्वचित्प्रमादस्खलिते चोदयन्तोऽप्याचार्याः- 'रमति पंडिते सासं' सिलोगो (३७सू०६१) रमत इव रमते, हृष्यत इत्यर्थः, पंडिति बुद्धिः साऽस्य जातेति पंडितः, स हि तं विणीतविणयं पंडितं रमते आचार्याः सासतः, दिट्ठंतो हयं भद्दं व वाहते, भाति भाष्यतेऽ-

॥ ४० ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८|| दीप अनुक्रम [३-४८]

॥ ४१ ॥

नेनेति भद्रः सुशीलो, भद्रेण तुल्यं भद्रवत्, वाहतीति वाहकः,स हि इंगितं मत्वा स्मरोवेः ईषत्केशाक्षेपं स्पृष्टो वा यथेष्टं वहते, स हि यथा रमते तं वाहयन् एवमाचार्या अपि विनीतमाज्ञापयन्तः क्वचित्प्रमादस्खलिते रमेत्, तद्विपक्षस्तु 'बालं सम्मइ सासेंतो' स तु नित्यप्रमादवशात् सासत् श्राम्यति, एवं कुरु मा चैवं कुरु पुनः२ चोदयन् कालेनाल्पीयसाऽपि खिद्यते, दिट्ठंतो-गलियस्संव वाहए, उभयं क्लेशयतीत्यर्थः, शिष्यस्याप्ययमेव श्लोकः-'रमति पंडिते सासं' शास्यमान इत्यर्थः, बालं सम्मइ सास्यमान इत्यर्थः गलियस्संव वाहए, स एवं गलियस्संभूतो 'खड्डुगा मे' सिलोगो (३८ सू० ६२) खड्डुगाहिं चवेडाहिं अक्कोसेहिं वहेहि या एवमादि भिक्खु शासने प्रकारे तमाचार्यं कल्लाणमणुसासेन्तं, कल्यमानयतीति कल्याणं, इह परलोकं (कहितं) इत्यर्थः, तथापि तत्कल्याणमनुशासत् कल्याणं वा तमाचार्यमनुशासनं पावदिट्ठित्ति मण्णति, अयं हि पापो मां हंति, निर्घृणत्वात् क्रौर्यत्वाच्च चारकपालकबद्धाधयति, अपरकल्पः- ' खड्डुगा मे चवेडा मे' सो उ गम्मो इति, एस आयरिओ अकोविओ एवं चवेडउच्चावएहिं मं आउस्सेहिं आउस्सति, एवमसौ कल्लाणमणुसासंत पावदिट्ठित्ति मन्नति, अपर आदेशः- वाग्भिरप्यसावनुशास्यमानः मन्यते तां वाचं ' खड्डुगा मे चवेडा मे' तथा हितामपि वाचं अक्कोसतित्ति, सासति वधं वा, तत्प्रतिपक्षस्तु 'पुत्तो मे भाति णातित्ति ' सिलोगो (३९ सू०६२) कटुकैर्मधुरैर्वा वचोभिरनुशास्यमानोऽपि मतिमान् मन्यते पुत्रमिवायं मामनुशासति, नावज्ञया, केवलं शिष्यसौहार्द्यात्, साधुरेव साधुः, तमनुशासनं कल्याणं मन्यते, एवं भाता, णाती योऽन्यो पितामहो वा, सर्वं तत्कल्याणानुशासनं सुष्ठु च मर्मैवैतद्धितमिति मन्यते, इतरस्तु-पावदिट्ठी तु अप्पाणं पापं अशोभनं, स हि पापदृष्टिरात्मानं हितानुशासनेनाप्यनुशास्यमानं दासमिव मन्यते॥ स एवं नित्यमप्रमादवान् गुर्वाराधनापरः ' ण कोवए आयरियं ' सिलोगो,

॥ ४१ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥३-४८॥

दीप अनुक्रम [३-४८]

॥ ४२ ॥

बुद्धोपघातिदृष्टान्तः

(४० सू०६२) कुप्यते येन प्रकारेण कायिकेन वाचिकेन वाऽऽचार्यः अन्यो वा तं न कुर्यात्, यदा पुनर्विनयं कुर्वताऽऽचार्यैः कचिन्मृदुना परुषेण वा प्रकारेण अणुसासिज्जति तदा अनुशास्यमानः आत्मानमपि न कोपयेत्, अन्नेसु वाऽचियत्तकारणेसु तासिमायरियाणं रुट्ठो भवति अन्नेसिं वा साधूणं तदा बुद्धोवघाती न स्यात्, बुद्धो-आयरियो,बुद्धानुपहन्तुं शीलं यस्य स भवति बुद्धोवघाती, उपेत्य घातःउपघातः, स तु त्रिविधः णाणादि, णाणे अप्पसुतो एस देसं गोप्पवइ इओ दंसणे उम्मग्गं पण्णवेति सद्दहति वा, चरणे पासत्थो वा कुशीलो वा एवमादी, अहवा आयरियस्स वृत्तिमुपहंति, जहा एक्को आयरिओ अ (ववा) यमग्गो (अगमओ), तस्स सीसा चिंतेंति-केच्चिरं कालं अम्हेहिं एयस्स वट्टियव्वंति ?, तो तहा काहामो जहा भत्तं पच्चक्खाति, ताहे अंतं एव (विरसं भत्तं) उवणेंति, भणंति य- ण देंति सड्ढा, किं करेमो?,सावयाणं च कहेंति- जहा आयरिया पणीयं पाणभोयणं ण इच्छंति, संलेहणं करेंतित्ति, ततो सड्ढा आगंतूणं भणंति-किं खमासमणा! संलेहणं करेह ?, ण वयं पडिचारगा वा णिव्विण्णात्ति,ताहे ते जाणिऊण तेहिं चेव वारितंति भणंति-किं मे सिस्सेहिं तुब्भेहिं वाऽवरोहिएहिं?,उत्तमायरियं उत्तमट्ठं पडिवज्जामि,प०२ भत्तं पच्चक्खायंति,इत्येवं बुद्धोपघाती ण सिया. आशंकायामवधारणे च स्याच्छाब्दस्योपयोगः, इह त्ववधारणे द्रष्टव्यः, पुनरप्यवधारणमेव यथा बुद्धोपघाती न सिया, तहा ण सिया तुत्तगवेसए,तुद्यते येन तुत्तं,न गुरोरंध्रान्वेषीत्यर्थः,यदापि चास्य प्रमादाचरिते कचित् आयरिओ तस्सेव हिताए रूसए तदावि'आयरियं कुवियं णच्चा'सिलोगो (४१सू०६३)कुवितं संतं, कुपितं अप्पणाहिं परतो वा जाणिऊण,इमेहिं लिंगेहिं'अचक्षुदानं कृतपूर्वनाशनं, विमाननं दुश्चरिताय कीर्त्तनम्। कथाप्रसंगो नच नाम विस्मयो, विरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम् ॥१॥ परो वा से कहेज्जा जहा गुरू ते कुवितो?, तदेनं 'पत्तिएण पसादए' ण राजाभियोगवत्, मे खमे रायाणिय!, प्रत्यंतगमो- ॥ ४२ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने

॥ ४३ ॥

पायैः,ममैवायं अनुग्रह इतिकृत्वा प्रियेणैवेनं प्रसादयेत् , तत्कथं प्रसादयेत्?, उच्यते-'विज्झविज्ज पंजलियडो' विज्झवणं क्षामणमित्यर्थः, विसेसेण झाएज्जा विज्झवेज्ज, प्रसादनं विध्यापनमिति च पुनरभिधानानुग्रदर्शनाददोषः, बंधानुलोम्याद् वा तदेवं, वइज्ज णो पुणोत्तिय ॥ आचार्यविनयश्रुतमिदं-'धम्मज्जियं च ववहारं' सिलोगो (४२सू०६४) धार्मिकं जीतं धम्मज्जीतं, इकारस्य ह्रस्वत्वं काउं, विविहं वा पहरणं विविधो वा अपहारः ववहारः, 'बुद्धेहारितं सदा' बुद्धा 'सदे'ति अतीते काले संप्राप्ते वाऽऽचर्यते 'तमायरंति ववहारं' तमिति धम्मार्जितं बुद्धैरुपदिष्टं आचीर्णं वा, गरहा णाम एस दंडरूई निग्घिणो वा, अप्येवं धर्मार्जितग्रहणान्मा भूच्छिष्योऽयं मम णीयेल्लओ वा पहुवकारी तेन कश्चिन्ममीकारान्न दंडयेत् इत्यतो धर्मजीतग्रहणं, उक्तं च-'यस्सापि तं वा०' गाहा, सूत्रगौरवार्थं बुद्धेहायरियं, सरागैरेव केवलमाचर्यते,अर्हं हि वीतरागचरित एव शिष्यैरपि सुगम्यते ॥ अयमन्यः सूक्ष्मो विनयः- 'मणोगतं' सिलोगो (४३ सू०६४) नेत्रवक्त्राविकारैर्मनोगतं भावं लक्षयेत्, वाक्यगतं तु अर्धेन उक्तेण वा, यथा इंगितज्ञाश्च मागधाः, तदेवं मणोगतं वक्कगतं वा अभिप्पातं जाणिऊण आयरियस्स उ तं परिगिज्झ वायाए,तमिति अभिप्रायं,एवंति वा वायाए परिगिज्झ कम्मुणा तदीप्सिततमस्य समीपमापादयेत् उपपादयेत् ॥ अपि पढंति-'मणोगयं (रुइं) वक्कगइं जाणित्ता' सुतं, मनसो रोचतीतिमनोरुचि मनसः सचित्तस्य यत्र तत्र चार्थे गतो,मनसा रोचतीत्यर्थः,आकारैरिगितादिभिः तां मनोरुचिं,एवं वाक्यरुचिमपि अर्धोक्तादिभिः, तां मनोरुचिं वाक्यरुचिं, सेसं तहेवय,एवमभिप्रेतमप्यर्थमाराधयति,से 'वित्ते अचोतिए णिच्चं'सिलोगो (४४सू०६४) वित्त एव वित्तं तस्य वित्तयिकमेवेदं, अचोदितेनैव मया यत्कृत्यं गुरोस्तत्कर्त्तव्यं,- श्रेयाणीह कृत्यानि, बलवद्विनीतधुर्यवत् (अपि) प्रतोदोत्क्षेपमपि नो, [सहते] कुतस्तर्हि निपातनं॥एवं असावप्यचोदित एव सर्वकृत्येषूत्पद्यते,प्रसन्नवान् प्रसन्नः, नाहमाज्ञप्तव्य इतिकृत्वा प्रसन्नो भवति'अपि

प्रसादरीतिः विनीतकृत्यं

॥ ४३ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८|| दीप अनुक्रम [३-४८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ४४ ॥

विनयफलं

प्रसाद्यते हर्षात् समये मय्यनुग्रह' इति,तच्च क्षिप्रं करोति, थामवान् नामानलसः, थामो नाम बलं, किमभिप्रेते सति बलं करोति, अन्यथा करोति,सदा सर्वकालं ॥ 'णच्चा णमिति मेहावी' सिलोगो (४५ सू०६५) ज्ञात्वा वैनयिकानि यो वा यस्य विनयो यथा कार्यः तं ज्ञात्वा नमति, नमनेन च तस्योत्पद्यते पूजा, तत्करोति यः तस्य हि लोके कीर्तिर्भवति, स्वपक्षे परपक्षे वा कीर्त्यते विनयवानेषः गुर्वाराधनपरः, स चैवं विनयवान् सरणं भवति किच्चाणं, शिराचितमिति सरणा, सेवंत इत्यर्थः, स हि कृत्या नाम कृत्यासेविभिः प्रणुद्यमानानां शरणं भवति, तत्र हि तानि निरुपद्रवानि तिष्ठंति, अथवा शरणं घरं, गृहवदसौ तेषां कृत्यानां शरणं, ततो भवति दिट्ठंतो--भूताणं जगती जहा, भूतानामिति जीवानां, जायन्ते तस्यामिति जगती, पृथिवीत्यर्थः, एवं तस्स गुरुं पणिवयमाणस्स कृत्यानां शरणभूतस्य पूजनीयाः अल्पेनैव कालेन तुष्यन्ति ॥ तदेवं पूज्यैः तुष्टैः किं भवति ?, उच्यते, ' पुज्जा जस्स पसीयंती ' सिलोगो (४६ सू० ६५) पूजनीयाः पूजा इत्यर्थः, यस्येति यस्य साधोः, बुद्धाप्याचार्या एव, ते पूर्वं पूज्यते पश्चात्प्रसीदंति, स्यादेतत्-प्रसादे सति यथा हरिहरहिरण्यगर्भादयः साक्षात्स्वर्गं किल नयंति किमेवं तेऽपि स्वर्गं मोक्षं वा नयंति? इच्छितं वा वरं देंति ?, न, किमुच्यते ?, तेऽवि सम्यगाराधनाविशेषैः प्रसन्नाः प्रसादे सति लाभयिष्यंति ' विपुलं अट्ठितं सुतं' अर्थेन युक्तमार्थिकं सुतं—श्रुतं ज्ञानं उक्तं नम (विन) यश्रुतं ॥ तदादेशकारिफलं तु 'सपुज्जसत्थे' वृत्तं (४७- सू.६६) स इति शिष्यः,पूजनीयाः पूज्याः आचार्या इत्यर्थः,पूज्यैः शासितः सपूज्यैर्वा शासितः सपुज्जसत्थे, सुष्ठु विनीतः संशयो यस्य भवति स सुष्ठु विनीतसंशयः, आचार्यस्य मनसो रुचितं चिट्ठति कम्मसंपदं,अनुभवमान इति वाक्यशेषः,विनीयकरणं तु मनोरुचिं चिट्ठदि कम्मसंपदं, मनोरुचितं याति मृत्वा सौधर्मसंपदं, कर्मविभूत्या इत्यर्थः, अक्खीणमहाणसीयादिलद्धिजुत्तो, अहवा ॥ ४४ ॥

*** अत्र विनय-फ़लम् दर्शयते

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १ विनयाध्ययने ॥ ४५ ॥

विनयफलं

विशुद्धा कर्मसंपदा, अथवा मनोरुचिता तिष्ठति तस्य कर्मसंपदा, चरिमा कर्म्मविभूतिरित्यर्थः,नागार्जुनीयास्तु पठंति-'मणिच्छियं संपदमुत्तमं मनो,अहक्खायचरित्तसंपदं प्राप्त इत्यर्थः। 'तवोसमायारिसमाहिसंवुडो' तवो बारसविहो, सकारस्य ह्रस्वत्वं वृत्तभंगभयात्, समाधानं समाधिः,संवरणं संवुडो इंदियनोइंदिएहिं,स एवंविधो समायारीसमाधिसंवुडो'महज्जुति'महती द्युतिर्यस्य स भवति महद्युतीः,तपोदीप्तिरित्यर्थः,पंच वयाणि पालिय अनुपालयित्वेत्यर्थः ॥ 'सदेवगंधव्वमणुस्सपूइए'वृत्तं, तपाद्यैर्गुणैरन्वितत्वात् स दैवेगान्धर्वमनुष्यैः पूजितः,स्तुत इत्यर्थः, 'जहित्तु देहं मलपंकपुव्वयं'त्यक्त्वा देहमौदारिकं शरीरं मलपंकपुव्वंति मल एव पंकः कर्मणो हि पंकाख्या भवति,जहा'पावे वज्जे वेरे पंके पणए य' तथा कम्मगपुव्वगं हि सरीरं, अहवा मलपंकपुव्वयान्नि व मातुउयं पिउसुक्कं एवं मलपंकं जीवो पुव्वं आहारेऊण सरीरं णिव्वत्तेति ततो मलपंकपुव्वयन्ति,तं त्यक्त्वा,यत उक्तं'ओरालियवेउव्वियाहारकतेयकम्माइं सत्तावि विप्पजहन्नाइं उप्पायथित्तासि' सिद्धे वा भवति सासते, सासयग्गहणं विज्जासिद्धादिणिरागरणत्थं, सावसेसकम्मे पुण देवे भवति,'अप्परये' त्ति अप्पकम्मे,लवसत्तमेसु देवेसु विजयादिसु वा अणुत्तरेसु 'महिड्डीय' त्ति सेसेसु वा कप्पेसु इंदत्ताए सामाणियत्ताए वा उव्वज्जति, इतिसद्दो अणेगट्ठो, इह तु परिसेसए विसयो, अहवा एवमत्थो, एवमिति, बेमि-ब्रवीमि, थेराणं वयणमेयं, भगवता सर्वविदा उपदिट्ठं अहमपि ब्रवीमि । एवमेयं अज्झयणं उवक्कमेण णिक्खेवसमीवमाणेऊण सुत्तालावगे णिक्खेविऊण सुत्तफासियणिज्जुत्तीए जहासंभवं वक्खाणियं, इदाणिं चतुत्थं अणुओगद्दारं णयत्ति, ते य वक्खाणंगं, इत्थेव सुत्ते सुत्ते उवयोज्जा, तहावि दारासुण्णत्थं भण्णति, तंजहा णेगमसंगहववहारउज्जुसुयसद्दसमभिरूढएवंभूता, एते सत्तवि जहा सामाइए तहा परूवेऊण समासेण दुहा विभज्जंति,तंजहा-णाणणतो करणणतो य'णाणाहीणं सव्वं णाणणयो भणति किं च करणेणं? । किरि- ॥ ४५ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||३-४८||

दीप अनुक्रम [३-४८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ४६ ॥

नयाः

याए करणणओ तदुभयगाहो य सम्मत्तं ॥ १ ॥ णायम्मि गिण्हियव्वे' गाहा (   ) णाउत्ति परिच्छिण्णो गेज्झो जो कज्जसाहओ होइ । अगेज्झ अणुवकारी अत्थो दव्वं गुणो वावि॥१॥ जतितव्वंति पयत्तो कज्जे सज्झंमि गिण्हितव्वोत्ति । अग्गेज्झऽणादिययोऽवधारणे एवसद्दोऽयं ॥ २ ॥ इति जोती एवमिहं जो उद्देसो स जाणणाणयो सेत्ति । सो पुण समद्दंसणसुतसामइयाइं बोद्धव्वो ॥ ३ ॥ गतो जाणणाणयो । इदाणिं चरणणयो 'सव्वेसिंपि णयाणं' गाहा (   ) सव्वेति मूलसाहप्पसाहभेदादिसद्दतो तेसिं। किं पुण मूलपयाणं ? अहवा किमुताविसुद्धाणं ॥ १ ॥ सामण्णविसेसोभयभेदा वत्तव्वया बहुविहत्ति। अहवा णामादीणं इच्छति को कं णयं साहुं? ॥ सोऊ सद्दहिऊण य णाऊण य तं जिणोवदेसंण । तं सव्वणयविसुद्धंति सव्वणयसम्मतं जंतु ॥ ३ ॥ चरणगुणसुट्ठितो होति साधुरेवेस किरियणयो णाम। चरणगुणसुट्ठितं जं (साधुं) साधुत्ति मन्नेइ ॥४॥ सो तेण भावसाधू सव्वणया जं च भावमिच्छंति । णाणकिरियाणयोभयजुत्तो य जतो सदा साहू ॥ ५ ॥ विणयसुतचुन्नी समत्ता ॥१॥

अथ परीषहाध्ययनं २

उक्तोऽस्मिन् प्रथमेऽध्याये विनयः,तस्य विनयविनीतस्य साधोः कदाचित् परीषहा नानाप्रकारा उदीर्यंते,ते अणाइलेण अव्वहितेण सम्मं सहितव्वा, ते च क्षुधाद्याः, अनेन संबंधेनेनेदमध्ययनमायातं परीसहा इति,तस्स चत्तारि उवक्कमादीणि सव्वाणि परूवेऊणं णामणिप्फण्णे णिक्खेवे परीसहेत्ति, मार्गाच्यवनार्थं निर्जरार्थं च सम्यक् परिषोढव्या, तत्थ 'णासो परीसहाणं' गाहा ॥ ४६ ॥

अध्ययनं -१- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२- “परिषह” आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||४८...||

दीप अनुक्रम [४८...]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ४७ ॥

परीषह निक्षेपाः

(६५-७२) ते परीसहा चउव्विहा णामादी, णामठवणातो गतातो, दव्वपरीसहा दुविहा-आगमतो णोआगमतो य, आगमतो जाणते अणुवउत्ते, णोआगमतो तिविहा, तत्थ गाहा 'जाणगसरीर' गाहा (६६-७२) सव्वं परूवेऊणं जाणगसरीरवइरित्ते दव्वपरीसहा दुविहा, तंजहा- कम्मदव्वपरीसहा य णोदव्वकम्मपरीसहा य, जाणि परीसहवेदणिज्जाणि कम्माणि बद्धाइं ताव न उदेज्जंति ते कम्मदव्वपरीसहा, '**णोकम्मंमि य**' गाहा (६७-७३) तिविहा णोकम्मदव्वपरीसहा- सचित्ताचित्तमीसगा,सचित्तणोकम्मदव्वपरीसहा जेहिं सचित्तेहिं परीसहा उदेज्जंति जहा गिरिनिज्झरणपाणीयं, एयस्स छुहा उदेज्जंति, अचित्ते णोकम्मदव्वपरीसहा जहा अग्गिदीवणियचुण्णेहिं छुहा भवति, मीसे गुलल्लएणं छुहा भवति, पिवासापरीसहो लोणपाणीएण वा तण्हा उदेज्जति, तेलेहि य अचित्तेहिं, णिद्धलवणादीहिं मिस्सेहिं दव्वेहिं खज्जंतेहि य तण्हा उदेज्जति, एवं सेसावि परीसहा जहासंभवं जोएयव्वा, गतो णोकम्मदव्वपरीसहो, दव्वपरीसहा य। इदानिं भावपरीसहा, ते वेदणिज्जाणं कम्माणं, उदिण्णाणं वेदणिज्जाणं भवंति, तेसिं परीसहाणं इमाणि तेरस पदाणि भवंति,तत्थ गाहा-'**कत्तो कस्स व दव्वे** (समतारो) अहियास णए व वत्तणा काले। खेत्तोद्देसे पुच्छा णिद्देसे सुत्तफासे यत्ति(६८-७३) एत्थ पुण आदिदारं कत्तो एते परीसहा निज्जूढा?, उच्यते,'**कम्मप्पवायपुव्वा सत्तरसे पाहुडंमि** जं सुत्तं। **सणयं सउदाहरणं** तं चेव इहंपि णातव्वं (६९-७३) **कत्तोत्ति** गतं, इदाणिं **कस्सत्ति** दारं, कस्स ते परीसहा ?, किं संजतस्स असंजतस्स संजयासंजतस्स?, एत्थ णएहिं मग्गणया इति, कोऽर्थः ?, उच्यते, नयाः कारका दीपकाः व्यञ्जका भावकाः उपलम्मका इत्यर्थः, विविधैः प्रकारैरर्थविशेषान् स्वेन स्वेनाभिप्रायेण नयन्तीति नयाः, ते च णैगमादयः सप्त नयाः. तद्यथा—णेगमसंगहववहारउजुसुत्तसद्दसमभिरूढएवंभूताः. एत्थ गाहा–' तिण्हंपि णेगम '

॥ ४७ ॥

*** अत्र 'परिषह'स्य नामादि निक्षेपा: दर्शयते

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||४८...||

दीप अनुक्रम [४८...]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ४८ ॥

गाहा (७०-७४) तत्थ णेगमनयस्स तिण्हंपि परीसहो भवति, तंजहा—संजतस्सवि असंजतस्सवि संजतासंजतस्सवि, एवं जा उज्जुसुतस्स, तिण्हं सद्दणयाणं संजतस्सेव एगस्स परीसहो भवति, तंजहा-संजतस्स-विरयस्स, ण सेसाणं, कस्सात्ति गतं, इदाणिं दव्वात्ति दारं,कयरेण दव्वेण परीसहा उदेज्जंति?, किं जीवदव्वेण १ जीवदव्वेहिं २ अजीवदव्वेण ३ अजीवदव्वेहिं ४ उदाहु जीवदव्वेण अजीवदव्वेण५य तहा जीवदव्वेण वा अजीवदव्वेहि वा६उदाहु जीवदव्वेहि अजीवदव्वेण य७उदाहु जीवदव्वेहि य अजीवदव्वेहि य८ एते पुच्छा अट्ठभंगा भणिता, तत्थ णेगमणयो भण्णति-अट्ठहिवि भंगेहिं परीसहा भवंति, कहं ?, उच्यते, एगेण पुरिसेण परीसहो उदीरितो चवेडिया दिन्ना, णजीवदव्वेण एगेण कंटगाइणा, जीवदव्वेहिं बहूहिं पुरिसेहिं चवेडादिहिं आसाइतो,अजीवदव्वेहिं बहुनां पासाणकंटगादीण उवरि पडितो, जीवेण अजीवेण एगेण पुरिसेण एगेण सरमातिणा, एवं विभासितव्वा अट्ठवि भंगा, संगहस्स जीवेण अहवा णोजीवेण, कथं कृत्वा ?, यो हि जीवेण दव्वेण योऽप्यजीवदव्वेण सर्वोऽप्यसौ जीवस्यैव तेण जीवेण, णोजीवो कथं ?, जतो णोजीवेण उदीरेज्जति तदा जीवोवि गहितो जओ उदीरेति, ववहारस्स नोजीवो कहं ?, जीवस्स कम्मेणेव परीसहा भवंति, सेसाणं जीवस्स, कहं ?, पगतिं वेयणात्तिकृत्वा जीवस्सेव परिसहो, णो अजीवस्स, तेण जीवस्सेव भवति, दव्वेति गतं, इयाणिं **समोतारो**,तत्थ गाहा-'**समोतारो खलु गाहा**' (७२-७५) समोतारो दुविहो-पगडीसु पुरिसेसु य, तत्थ पगडीसु चउसु समोतरंति- '**णाणावरणे**' गाहा (७३-७५) णाणावरणे वेदणिज्जे मोहणिज्जे अन्तराये य बावीसइ परीसहा, कत्थ कोसिं समोयारो ?, आह— '**पन्नाऽनाणपरिसहा**' गाहा (७४--७५) **पन्नापरीसहो** अन्नाणपरीसहो य नाणावरणस्स उदएणं, एको य अलाहपरीसहो अंतरायस्स उदएणं, मोहणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा- दंसणमोहणिज्जे चरित्तमोहणिज्जे य, तत्थ

परीषहे नयाः कर्मसु-अवतारः

॥ ४८ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||४८...||

दीप अनुक्रम [४८...]

॥ ४९ ॥

पुरुषेषु परीषहाः

चरित्तमोहणिज्जे सत्त परीसहा समोतरंति, तत्थ गाहा-'**अरती अचेल**' गाहा (७५-७६) '**अरई दुगुंछा य**' गाहा (७६-७६) '**दंसणमोहे**' गाहा(७७-७६)अरती अरतिवेदणिज्जस्स कम्मस्स उदयएणं समुप्पज्जति, अचेलगपरीसहो समोतरति दुगुंछामोहणिज्जे, इत्थीपरीसहो पुरिसवेदस्स कम्मस्स उदएणं,णिसीहियापरीसहो भयस्स उदएणं,जायणापरीसहो माणस्स उदएणं, अक्कोसपरीसहो कोहस्स उदएणं, सक्कारपुरक्कारपरीसहो लोभस्स उदयेणं, दंसणमोहस्स कम्मस्स उदयेणं एक्को दंसणपरीसहो भवति, सेसा एक्कारस परीसहा वेयणीए समोतरंति, तत्थ गाहा-'**पंचेव आणुपुव्वी**' गाहा (७८-७६) (पंच आणुपुव्वीए) तंजहा-दिगिंछापरी० पिवासाप० सीयप० उसिणप० दंसमसगपरीसहो आणुपुव्वी एते पंच, चरिया सेज्जा रोगप० तणफासेवि जल्लप० वधपरीसहो एते एक्कारस वेदणिज्जे, एवं पगडीसु समोतारो भणितो। इदाणिं पुरिसेसु-'**बावीस बादरसंपरागे**' गाहा (७९-७६) सत्तविह-अट्ठविहबंधगाणं पमत्तसंजतप्पभितीणं जावबादरसंपरागो ताव बावीसं परीसहा भवंति, छव्विहबंधगस्स सुहुमसंपरागस्स उवसामिगसेढिस्स वा मोहणिज्जपभवा अट्ठ परीसहा वज्जिऊण सेसा चोद्दस परीसहा, एवं एगविहबंधगस्स वीतरागस्स च्छउमत्थस्स उवसामगस्स खमगस्स वा चोद्दस एव, एगविहबंधगस्स सजोगीभवत्थकेवलिस्स एक्कारस परीसहा वेदनीयाश्रयाः, शेषा नास्ति, **पुरिसेसु समोतारो य दारं गतं**,इदाणिं अधियासणा,कहं परीसहा अहियासिया भवंति?,'**एसणमणेसणेज्जं**'गाहा(८०-७६) तत्थ तिण्हं आइल्लाणं णयाणं जो एसणिज्जं वा अणेसणिज्जं वा ण पडिग्गाहेति ण वा भुंजति ततो अहियासिया भवंति, उज्जुसुतस्स तिण्हं सद्दणयाणं च जो फासुतं गेण्हइ तेण परीसहा अहियासिया भवंति, अहियासणेतिगतं। इयाणिं णया, को णयो कं परीसहं इच्छइ ?-'**जं पप्प णेगमणयो**' गाहा (८१-७७) णेगमणयस्स जं पप्प सीतउसिणादिपरीसहा उदीरिज्जंति स एव तस्स परी-

॥ ४९ ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||४८...|| दीप अनुक्रम [४८...]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ५० ॥

सहो भवति, संगहववहाराणं जं पप्प परीसहा भवंति वेयणा य तं दोवि इच्छाति, उज्जुसुयस्स वेदनं प्रतीत्य जीवस्येत्यादि जीवे परीसहा भवंति, तिण्हं सद्दणयाणं आत्मैव परीसहोपयुक्तः परीषहो भवति,णयात्ति गतं। इदाणिं वत्तणा-एकस्मिन् काले एगपुरिसे कति परीसहा वर्तंते ? 'वीसं उक्कोसपदे' गाहा (८२-७७) जस्स बावीसं परीसहा तस्स उक्कोसपदे वीसं परीसहा उदेज्जेज्जा, कहं?, जेण सीतोसिणा चरियाणिसीहिया एते दो दो जुगवं एगसमए ण संभवंति, जदा सीतं न तदा उसिणं उदेज्जेज्जा, सीतोसिणा चरियाणिसीहिया सपडिवक्खेणं, जस्स चउद्स तस्स उक्कोसपदे बारस, जस्स एक्कारस परीसहा तस्स उक्कोसपदे दस परिसहा उदेज्जेज्जा, सीतोसिणपडिवक्खेणं, सव्वेसिं एतेसिं जहन्नेण एक्को परीसहो उदेज्जा,वत्तणेतिगतं। इदाणिं काले, केच्चिरं काले एक्को परीसहो भवति ?-'वासग्गसो तिण्हं' गाथा (८३-७८) तिण्हं आदेल्लाणं णयाणं वासग्गसो जाव सम्मतो परियातेत्ति, अत्रोदाहरणं जहा सणंकुमारस्स सत्त वरिससयाणि परीसहो, जहा 'कंडू अ भत्तच्छंदो' गाहा (८४-७८) उज्जुसुतस्स अंतोमुहुत्तं, तिण्हं सद्दणयाणं एगं समयं परीसहो भवति,कालेत्तिगतं। इदाणिं खेत्तेत्ति, कतरंमि खेत्ते परीसहा? केवतिए वा खेत्ते भवति?-'लोगे संथारंमि य'गाहा(८५-७९)अत्र नयाः-अविसुद्धो नेगमो भणति-तिरियलोए परीसहा, विसुद्धतरो उ भणति-जंबुद्दीवे परीसहे, विसुद्धतरो भणति-दाहिणद्धे, विसुद्धतराओ भणति-पाडलिपुत्ते, विसुद्धतराता भणति-देवदत्तगिहे, विसुद्धतराओ भणति-जंमि उवस्सए साधू भवति तंमि परीसहो, एवं ववहारस्सवि, संगहस्स संथारए परीसहो, उज्जुसुतस्स जेसु आगासपदेसेसु अप्पा ओगाढो तेसु परीसहो, तिण्हं सुद्धणयाणं आतभावे परीसहो भवति, खेत्तोत्ति गतं। 'उद्देसो गुरुवयणं' गाहा(८५-७९) उद्देसो जहा इमे खलु बावीसं परीसहा, पुच्छा'कतरे ते बावीसं परीसहा'णिद्देसो 'इमे खलु ते बावीसं परीसहा'गतो णामणिप्फण्णो,

नयैः परीषहाः ॥ ५० ॥

प्रत सूत्रांक [-] गाथा ||४८...||

दीप अनुक्रम [४८...]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

||५१||

क्षेत्रे परीषहाः सूत्रं च

इदाणिं तेरसमं दारं सुत्तफासेत्ति, तं च सुत्तं उच्चारेऊण भणति,तं च इमं'सुतं मे आउसंतेण भगवता एवमक्खातं'श्रुतं मया आयुष्मन्! अज्जजंबु!,सुहम्मो अज्जजंबुणामं आमंतित्ता एवं भणति,एवं मया श्रुतं भगवता आयुष्मता एवमक्खायं,अथवा आयुषि सति जीवता, अथवा पादसमीवे अधिवसता, अथवा गुरुपादानामुपवसता, श्रुतमेतं, न स्वच्छंदविकल्पत उच्यते, गुरुपारम्पर्यागतमेतत्, भगवता इति, भगो जस्स अत्थि भगवान्, अत्थजसधम्मलच्छीरूवसत्तविभवाण छण्ह एतेसिं भग इति णामं, जस्स संति सो भण्णति भगवं तेण भगवया, 'एवमक्खायं' एवंशब्दो प्रकाराभिधायी, एतेन प्रकारेण योऽयं भणिहिति तं हिदये काऊण भण्णति-एवमक्खातं, अक्खातं कहितं, 'इह खलु' इह आरुहे सासणे, खलुसद्दो विसेसणे, अन्नेवि तित्थयरा भगवंतो समाणविण्णाणात्ति तेहिवि एमेव, 'बावीसं परीसहा' बावीसं इति संख्या, परि सर्वतोभावे, मार्गाच्यवनार्थं निर्जरार्थं च परिषोढव्या परीसहाः, 'समणेणं भगवता महावीरेण' सममाणा समणा, भगवता इति भणितं, पहाणो वीरो महावीरो, एवमक्खातमिति भणितेऽवि पुणो विसेसिज्जति-समणेणं भगवता समणभावो केवलिता य दरिसिज्जतित्ति, णामठवणदव्वसमणविसेसणत्थं वा, एवं भावसमणेण एव भगवता महावीरेण, 'कासवेण' काशं-उच्छुं तस्य विकारः कास्यः रसः स यस्य पानं स काश्यपः-उसभसामी तस्स जोगा जे जाता ते कासवा तेण, वद्धमाणो सामी कासवो तेण कासवेण, 'पवेदिता' विद् ज्ञाने साधु वेदिता पवेदिता, साधु वर्णिता, 'जे भिक्खू' जे इति अणिद्दिट्ठस्स णिद्देसे, भिक्खणसीलो भिक्खू, अहवा खुधं-कम्मं तं भिंदतित्ति भिक्खू 'सोच्चा णच्च' क्रमदर्शनं, पूर्वं श्रूयते पश्चाद् ज्ञायते, अनुक्तमपि चैतद् ज्ञायते, पूर्वमधीयते पश्चात् श्रयते ज्ञायते वा, श्रूयते अर्थतः ज्ञायते च, अथवा कश्चित् न तावदधीते उपदेशेन श्रुत्वा जानीते तेन समस्तः क्रम उपादिश्यते,

||५१||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४९-५१||

दीप अनुक्रम [५०-५२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ५२ ॥

क्षुधा परीषहः

'जिच्चा' ते जिणित्ता, कथं ?, 'अभिभूय' त्ति पराजिणित्ता अभिमुखी भूत्वा, अभिभूय इत्यर्थः, चरणं चर्या भिक्षोश्चर्या भिक्षुचर्या तया भिक्षुचर्यया, समंताद् वजतो परिव्रजतो. विविधैः प्रकारैर्हन्यते विनिहन्यते, अमानोनाः प्रतिषेधे, णो विहन्यते, गतो उद्देसो। इदाणिं पुच्छा, 'कतरे ते बावीसं परीसहा जाव णो विणिहण्णेज्जा' पुच्छा गता, इदाणिं णिद्देसो '**इमे खलु ते बावीसं जाव णो विहण्णेज्जा, तं०-दिगिंछापरीसहो जाव दंसणपरीसहेत्ति** त्ति '**परीसहाणं पविभत्ती**' (४९सू.८३) विभजनं विभक्तिः प्रकर्षेण विभक्तिः प्रविभक्तिः कासवेण प्रवेदिता एवं भणितं तं ते(मे) उदाहरिस्सामि, व्याख्यास्यामीत्यर्थः, तत्र तावत् क्षुधापरीसहजयोपायः '**दिगिंछापरिगते देहे**' सिलोगो (५० सू० ८३) दिगिंछा णाम देसीतो खुहाअभिहाणं, परि समंतात्तापः परितापः, दिगिंछया परितापो, तेण हि दिगिंच्छापरितापेन तपस्सी भिक्खू थामवं, तपस्विग्रहणं आहारायत्तत्वात् प्राणिनां, सर्वतपसां हि अनशनमेव सुदुष्करं तपः, आह हि-'**क्षुधासमा नास्ति शरीरवेदना**' इति वचनात्, आदिकरणमपि चास्य परीषहस्यायमेव हि सर्वपरीषहाणामादितो भवति, कथं ?, आहारपज्जत्ती पढमं होइ, उक्तञ्च-"**माउउयं पितुसुक्कं तप्पढमाए आहारमाहारेत्ता गब्भत्ताए वक्कमइ**" त्ति, भिक्खुरिति भिक्षुर्निर्देशः,थामवं नाम प्राणवान्, सति थामे जोगसमत्थो खुधं अहियासेज्जासि, जतिवि ण सक्केसि छुहं सहेउं तहावि फासुएसणिज्जं अंतपडिप्पंतो (जिझएहिं आ) हारेहिं चउत्थादीहिं तवस्सी अत्थामो छुहापरिगतो होति, पच्छा छुहापरिगतेण भिक्खुणा गवेसितव्वा णव कोडीपरिसुद्धा, ण छिंदावए ण पए ण पयावए ण किणे ण किणावए, एता णव कोडी पुइताओ, छिन्नंति वा हणंति वा एगट्ठं, तेण ण हणावए हणंतं णाणुमोदए अग्गिं, तहेव मूलपलंबादि ण छिंदे ण छिंदावए छिंदंतमवि णाणुमोदए, पुव्वच्छिदियमवि ण ॥ ५२ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४९-५१||

दीप अनुक्रम [५०-५२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ५३ ॥

क्षुधा परीषहः

पए ण पयावए पयंतं णाणुमोदए, तहेव फासुगं वा ण किणे ण किणावए किणंतं णाणुमोदए, एवं एसणिज्जं भुंजमाणेण खुहा-परीसहो अहियासितो भवति, यद्यपि तेन क्षुत्परीसहेण सम्यग सहमानेन सरीरदौर्बल्यात् 'कालीपव्वंगसंकासे' सिलोगो (५१ सू० ८४) काली नाम तृणविसेसो, केइ काकजंघा भणंति, तीसे पासतो पव्वाणि तुच्छाणि तणूणि, कालीतृणपर्वणः पर्व्वभिरंगानि संकाशानि यस्य स भवति कालीतृणपर्वांगसंकाशः, तानि हि कालीपर्वाणि संधिसु थूराणि मध्ये कृशानि, एवमसावपि भिक्षुः छुहाए जानुकोप्परसंधिषु थूरो भवति, जंघोरुकालायिकबाहुसु कृशः, धम्यंतः इति धमन्यः धमनिभिः संततः-सर्वतस्ततः। अस्यामप्यवस्थायां यदाहारयति तदाह-'मायण्णे असणपाणस्स' मीयत इति मात्रा तां जानातीति मात्रज्ञः, यया देहधारणं भवति, दीयते इति दीनः, दुर्भिक्षोपहतद्रमकवदनाथः, पिंडमलभमानो न दीनमणा भवे, एतेसिं बावीसाए परीसहाणं इमा उदाहरणगाहा– तंजहा– 'कुमारए णदी लेणे' सिलोगो (८७-८६) 'वणे' गाहा (८८-८६) तत्थ दिगिंछापरीसहे कुमारेण उदाहरणं, तत्थ गाहा-'उज्जेणि हत्थिमित्तो' गाहा (८९-८५) तेणं कालेण तेणं समएणं उज्जेणीए नयरीए हत्थिमेत्तो नाम गाहावती, सो मतभज्जिते, तस्स पुत्तो हत्थिभूती नाम दारगो, सो तं गहाय पव्वतितो, ते अन्नया कयाथि उज्जेणीतो भोतकडं पत्थिता, अडविमज्झे सो खंतो पाए खयकाए विद्धो, सो असमत्थो जातो, तेण साहुणो वुत्ता-वच्चह, तुब्भेऽवि ताव णित्थरह कंतारं, अहं महया दुक्खेण अभिभूतो, जति ममं तुब्भे वहह तो भज्जिहिह, अहं भत्तं पच्चक्खामि, ॥ ५३ ॥ निब्बंधेण ठितो एगपासे गिरिकंदराते भत्तं पच्चक्खाउं, साधू पट्ठिता, सो खुड्डओ भणाति-अहंपि अच्छामि, सो तेहिं बला णीओ, जाहे दूरं गतो ताहे वीसंभेऊण पव्वइए णियत्तो, आगतो खंतगस्स सगासं, खंतएण भणितो-तुमं कीस आगतो ?, इहं मरिहिसि,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||५१-५२|| दीप अनुक्रम [५३-५४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ५४ ॥

पिपासापरीषहः

सोऽवि थेरो वेयणत्तो तद्दिवसं चेव कालगतो, खुड्डगो न चेव जाणति जहा कालगतो, सो देवलोएसु उववण्णो, पच्छा तेण ओही पउत्ता, किं मया दत्तं भुत्तं वा? जाव तं सरीरगं पेच्छइ, तं खुड्डगं च, सो तस्स खुड्डगस्स अणुकंपाए तं चेव सरीरगं अणुपविसेत्ता खुड्डगेण सद्धिं उल्लवंतो अच्छति, तेण भणितो-वच्च पुत्त! भिक्खाए, सो भणति-कहिं?, तेण भण्णति एते धवणिग्गोहादी पायवा, एतेसु तन्निवासी पागवंतो जे तव भिक्खं दाहंति, तहत्ति भणित्तुं गतो, धम्मलाभेति रुक्खहेट्ठेसु, ततो सालंकारो हत्थो निग्गच्छिउं भिक्खं देति, एवं दिवसे दिवसे भिक्खं गिण्हंतो अच्छति, जाव ते साधुणो तंमि देसे दुब्भिक्खे जाते पुणोवि उज्जेणिगं देसं आगच्छंता तेणेव मग्गेण आगता बितिए संवच्छरे, जाव गता तं पदेसं, खुड्डगं पेच्छंति वरिसस्स अंते, पुच्छितो भणति-खंतोऽवि अच्छति, गता जाव सुक्कं सरीरगं पेच्छंति, तेहिं णायं-देवेण होइऊण अणुकंपा कएल्लिया होहित्ति, खंतेण अहियासितो परीसहो, ण खुड्डएण, अहवा खुड्डएणवि अधियासितो, ण तस्स एवं भावो भवति जहाऽहं न लभेस्सामि भिक्खं तओ फलाइं गिण्हिस्सं, पच्छा सो खुड्डगो साधूहिं नीतो। दिगिंच्छापरीसहो गतो। इदाणिं पिवासापरीसहो, 'ततो पुट्ठो पिवासाए' सिलोगो (५१ सू० ८६) ततो छुधापरीसहातो, अहवा भुत्तस्स संभवति पातुमिच्छा पिपासा ताए स्पृष्टः, परिगत इत्यर्थः, दुगुंछतीति दोगुंछी, अस्संजमं दुगुंछती, लद्धो संजमो जेण स भवति लद्धसंजमः, पठ्यते च 'लज्जसंजत्ते' लज्जा एव संजमो, लज्जाते वा असंजमं काउं, तया लज्जया संजमतीत्यर्थः, 'सीतोदगं न सेवेज्जा' सीतोदगं नाम अफासुगं, सेयणापाणाधोयणाभिसेयणादि, विगतजीवं, विगतजीवंपि एसणीयं चरेदिति ॥ अवस्था गृह्यते 'छिन्नावातेसु पंथेसु' सिलोगो (५२ सू० ८६) आपतंत्यनेनेत्यापातः तेसु छिन्नावातेसु, निरंतराध्यानेष्वित्यर्थः, अत्यर्थं तरतीत्यातुरः, ॥ ५४ ॥

*** अत्र मूल संपादने सूत्र-क्रमांकने किञ्चित् स्खलना दृश्यते, सूत्रांक-५१ द्विवारान् अलिखित

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ५५ ॥

पिपासा-परीषहः

सुष्ठु पिवासा सुपिवासा यद्यपि जाताऽस्य, तेन तु छिन्नावातेसु पंथेसु तृष्णया परिशुष्यते मुखं, तथाप्यसौ परिसुक्कमुहो दीणो शुष्क(ष्य)ते स्म शुष्कः सर्वतः शुष्कमुखः परिशुष्कमुखः, बहिरंतश्चेति, दीयते दीनमानं वा दीनं, न तां तृष्णां तितिक्षन्, सहमान इत्यर्थः, सर्वतो व्रजते परिव्रजते, ग्रामे नगरे पथि वा सर्वत्र सर्वतः। जहा केण अहियासितो ?, तत्र नदी इति दारं, उदाहरणं–'उज्जेणी धणमित्तो' गाहा (९०–८१), एत्थ उदाहरणं किंचि पडिक्खेण किंचि अणुलोमेण, उज्जेणी नगरी, तत्थ धणमित्तो णाम वाणियगो, तस्स पुत्तो सम्मधम्मो(धणसम्मो)णाम दारओ, सो धणमेत्तो तेण पुत्तेण(समं)पव्वइतो, अन्नया ते साहु मज्झण्हवेलाए एलकच्छपहे पट्ठिता, सोऽवि खुड्डतो तण्हाइतो मग्गतो जाते, सोऽवि से खंततो सिणेहाणुरागेण पच्छतो एइ, साहुणोऽवि पुरतो वच्चंति, अंतरावि नदी समावडिया, पच्छा तेण वुच्चति-एहि पुत्त ! इमं पाणियं पियाहि, सोऽवि खंतो नदिं उत्तिण्णो, चिंतेइ य-मणागं ओसरामि जावेस खुड्डओ पाणियं पियइ, मा मम संकाए न पाहिति, एगंते पडिच्छइ जाव खुड्डओ पत्ते णदी, ण पिबतित्ति, केई भणंति-अंजलीए उक्खित्ताए अह से चिंता जाता-पियामित्ति, पच्छा चिंतेति–कहमहं एते हालाहले जीवे पिविस्सं?, ण पीयं, आसाए छिन्नाए कालगओ, देवेसु उववन्नो, ओही पउत्ता, जाव खुड्डगसरीरं पासति, तहिं अणुपविट्ठो, खंतं लयति, खंतो एतीति पत्थितो, पच्छा तेसिं तेण देवेण साधूणं तिसिताणं गोउलाणि विउव्वियाणि, साधूवि तासु वदियाईसु तक्कादीणि गेण्हंति, एवं वइयापरंपरएण जाव जणवयं संपत्ता, पच्छिल्लाए वइयाए तेण देवेण वेंटिता पम्हुसाविया जाणणाणिमित्तं, एगो साधू णियत्तो, पेच्छति वेढियं, णत्थि वइया, पच्छा तेण णायं सादेवत्ति, पच्छा तेण देवेण वंदिया साहुणो, न खंतो, तं च सव्वं परिकहेति, भणति-तेण अहं परिचत्तो, तुमं एतं पाणियं पियाहित्ति, जइ मे तं पीतं होंतं तो संसारं भमंतो, पडिगतो,

॥ ५५ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||५१-५२||

दीप अनुक्रम [५३-५४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ५६ ॥

शीत-परीषहः

एवं अहियासेतव्वं, पिवासापरीसहो गतो ॥ इदाणिं सीयपरीसहो 'चरंतं विरयं लूहं' सिलोगो(५६सू०८८) गामाणुगामं धम्मं वा चरंतं, विरतं अग्गिसमारंभातो गृहारंभतो वा, बाह्याभ्यंतरस्नेहपरिहारा, स्निग्धाहारस्य हि अभ्यंगितस्य वा नातिशीतं भवति, (अणेरिसं) अनातीतं शीतं स्पृशति-अभिद्रवति एगता-सिसिरे, अहवा एगता रात्रौ, यद्यप्यहनि सीतेण परिताविज्जंतोऽवि, णातिवेलं विहन्नेज्जा, न प्रतिषेधे, वेला सीमा मर्यादा सेतुरित्यनर्थांतरं, तामतीत्य वेलां विहन्येत-विविधैः प्रकारैः हन्येत, यद्यपि शरीरतो विहन्येत अप्रावृतत्वात् तहावि ण विहण्णेज्ज कंपनधूपनादिभिः, पासयति पातयति वा पापं, दर्शनं दृष्टिः,पापे यस्य दृष्टिः स पापदिट्ठी, योऽभियोगं मन्यते, अविदितपरमार्थत्वात् सः, न पापदृष्टिः, संसारसद्भावदर्शनात्,न शीतादुद्विजते,इदं हि शीतं सकामस्य सहनीयं, (अकामेन) नरकेष्वपि, काश्यपेनोच्यते चान्यथा'णातिवेलं मुणी गच्छे, सोचाणं जिणसासणं' जिनानां शासनं जिनशासनं तत् जिनशासनं श्रुत्वा, तत्र हि विचित्रसंसारस्वभावं नरकेषु अतिशीतवेदना, तथा तिर्यक्ष्वपि निष्परित्राणेन शीतान्यनुभूतानि, नो चैवं कदाचिदपि चिंतयति-'ण मे ति णिवारणं अत्थि' सिलोगो(५७सू०८८) व्रियते येन तद्वारणं नियतं निश्चितं निपुणं वा वारणं निवारणं प्रावरणमित्यर्थः कंबलालियाउ, छविस्त्राणाय भविष्यति ततोऽपदिष्य(श्य)ते-छविस्त्राणं न विद्यते, छ्यति छिद्यते वा च्छविं त्वगित्यर्थः, असौ हि शीतोष्णादीनां ग्राहिकेतिकृत्वा न शीतत्राणाय,तदेवमत्राणः अशरणश्च शीतवातानुगतः अहं तु अग्गिं सेवामि, अहं तु अनुमतार्थे संप्रेषणे वा, किमिदानीं करिष्यामि अत्राणो अशरणश्च ? तदिदानिमग्गिं सेवामि, इति भिक्खू ण चिंतए, अत्रोदाहरणं, लेणंदि दारं, तत्थ गाहा 'रायगिहंमि वयंसा' गाहा (९१-८९) रायगिहे नगरे चत्तारि वयंसा वाणियगा सहवड्डितया, ते भद्दबाहुस्स अंतिए धम्मं सोच्चा पव्वइया, ते सुत्तं बहुं अहेज्जित्ता अण्णया

॥ ५६ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||५५-५७||

दीप अनुक्रम [५५-५७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ५७ ॥

उष्ण-परीषहः

कयाति एगल्लविहारपडिमं पडिवन्ना, ते समावत्तीए विहरंता पुणोवि रायगिहं नगरं संपत्ता, हेमंतो वट्टति, ते य भिक्खं काउं ततियाते पोरिसीए (निग्गता) तेसिं वेब्भारगिरिंतेण गंतव्वं, तत्थ पढमस्स गिरिगुहाबारे चरिमा पोरिसी ओगाढा, सो तत्थेव ठितो, बितियस्स उज्जाणे, ततीयस्स उज्जाणसमीवे, चउत्थस्स णगरब्भासे चेव, तत्थ जो गिरिगुहब्भासे चेव तस्स निरायं सीयं, जो सम्मं सहंतो खमंतो य पढमजामे चेव कालगतो, एवं जो णगरसमीवे सो चउत्थे जामे कालगतो, तेसिं जो णगरब्भासे तस्स णगरुम्हाए ण तहा सीतं, तेण पच्छा पच्छा कालगता, ते संमं कालगता, एवं संमं अहियासेयव्वं जहा तेहिं चउहिं अहियासियं, सीयपरीसहो गतो ॥ सीयपडिपक्खे उण्हं, तदेव उच्यते--'उसिणपरितावेण' सिलोगो (५६ सू० ८९) उषतीत्युष्णं समयकृता वा उसिणमिति (संज्ञा), उष्णाभिधानमेव, सर्वतः तापः परितापः, बाह्याभ्यंतर इत्यर्थः, ' उवरिं तावेइ रवी रविकरपरिताविता दहइ भूमी । सव्वादो परिदाहो दसमलपरिगंतगा तस्स ॥ १ ॥' तृष्णया च सव्वंगितो दाहो परिदाहो, तर्जितो भर्त्सितः, स्यात्-उष्णं कस्मिन् काले भवतीत्युच्यते--' घिंसु परितावेणं ' ग्रसत इति ग्रीष्मः घिंसु वा देशतः समयतो वा स्यात्, किमत्रापि?, उक्तं येन ग्रीष्मे विशिष्यते ?, उच्यते, शरदिव तस्मिन् ग्रीष्मे शरदि वा उष्णपरितापितः 'सातं णो परिदेवए' सव्वेज्जं सातमिति सातं, परिदेवनं क्रन्दनं स्थानं आह्वानमित्यर्थः, कथं मे सातं स्यात्, शीतसुखमित्यर्थः, शीतलो वा कालः स्यादिति । ' उण्हाभि ' सिलोगो (५७ सू० ९०) दहति तेनेत्युष्णं तेण उण्हाभितत्तेन, मेहया धावतीति मेधावी, स्नायते येन सर्वाङ्गिकं स्नानं, अभिमुखं प्रार्थयेत् कु(भृ)शं वा अर्थयति, देशस्नानमपि प्रासुकेनांभसा, ' गायं नो परिसिंचेज्जा ' सर्वतः सिंचाति, णो व वीएज्जा हस्तवस्त्रपात्रादिभिर्ण वीएज्जा य अप्पगं, जहा केण अहियासियं, तत्थ सिलाह-

॥ ५७ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||५५-५७||

दीप अनुक्रम [५५-५७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ५८ ॥

उष्णपरीषहः

रणस्स इमा उदाहरणगाहा— 'तगराइ अरिह' सिलोगो (९२—९०) तगरा णगरी, तत्थ अरिहमित्तणाम आयरिओ, तस्स समीवे दत्तो नाम वाणियओ भद्दाभारियओ पुत्तेण य अर्हन्नगेण सद्धिं पव्वइतो, सो तं खुड्डगं ण कइयाइ भिक्खाए हिंडावेति, पढमालियादीहिं किमिच्छिएहिं पोसेति, सो सुकुमालो, साहूण अप्पत्तियं, ण तरति किंचि भासिउं, अन्नया सो खंतो कालगतो, साधुहिं तस्स दो तिन्नि व दिवसे दाउं भिक्खस्स उत्तारिओ, सुकुमारसरीरो सो गिम्हे उवरिं हेट्ठा डज्झंतो पासे य, तण्हाभिभूतो छायाए वीसमंतो पउत्थवइयाए वणियमहिलाए दिट्ठो, उरालसुकुमालसरीरत्तिकाउं तीसे तहिं अज्झोववातो जातो, चेडीए सद्दाविओ, 'किं मग्गसित्ति', भिक्खं, दिन्ना से मोयगा, पुच्छिओ—कीस तुमं धम्मं करेसि ?, भणति-सुहनिमित्तं, भणति-तो मए चेव समाणं भोगे भुंजाहि, सो उण्हेण तज्जितो उवसग्गिज्जंतो य पडिभग्गो, भोगे भुंजति, सो साहूहिं सव्वहिं मग्गिओ, न दिट्ठो, अप्पसागारियं पविट्ठो. पच्छा से माता ओमत्तिया जाता, पुत्तसोगेण, णगरं भमति अरहण्णयं विलवंती, जं जहिं पासति तं तहिं सव्वं भणति—अत्थि ते कोइ अरहन्नतो दिट्ठो ?, एवं विलवमाणी भमति, जाव अन्नया तेण पुत्तेण ओलोयणगतेण दिट्ठा, पच्चभिण्णाता य, तहेव उत्तरित्ता पाएसु पडितो, तं पेच्छिऊण तहेव वीसत्थचित्ता जाता, ताए भण्णति-पुत्त ! पव्वयाहि, मा दुग्गतिं जाहिसि, सो भणति-ण तरामि काउं संजमं, जइ परं अणसणं करेमि, एवं करेहि, मा य असंजमो भवाहि, मा संसारं भमिहिसि, पच्छा सो तहेव तत्ताए सिलाए पाओवगमणं करेति, मुहुत्तेण सुकुमालसरीरो सो उण्हेण विराओ, पुव्वं तेण णाधियासितो पच्छा अहिआसीओ, एवं अधियासितव्वं, उसिणपरीसहो गतो। इदाणिं दंसमसगपरीसहो 'पुट्ठो य दंसमसएहिं' सिलोगो (५८ सू० ६१) स्पृष्टत्वात् स्पृष्टः, सहारिभिः समरं, वक्ष्यति 'नागो व' त्ति, ॥ ५८ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

॥ ५९ ॥ व्यवहिताभिधानमेतत्, महान्तं मुनतीति महामुनिः, 'नागो संगामसीसे वा' नास्य किंचिदगम्यं नागः, समं ग्रसत इति संग्रामः, शीर्यत इति शिरः श्रिताः तस्मिन् इति प्राणा वा शिरः, शवत्यसौ युद्धं मुंचति वा तामिति शूरः, यथाऽसौ नागः सौरं शरैरभिहन्यमानः शूरो वा योधः परानभिहंति, परे नाम शत्रवः, एवमसामपि दंशमशकैः तुद्यमानोऽपि मोहशत्रुं विजिगीषुः तान्न गणयति. अन्येऽपि यूकामत्कुणादयोऽवगृह्यन्ते, स तैस्तुद्यमानोऽपि 'न संतसे ण वारेज्जा' सिलोगो (५९ सू० ९१) संत्रसति अंगानि कंपयति विक्षिपति वा, न चैव हस्तवस्त्रशाखाधूमादिभिस्तान्निवारणोपायैर्वारयति, न चैषामसंज्ञित्वात् आहारकांक्षिणां, भुंजमानानां मच्छरीरं साहारणं, यदि भक्षयन्ति किं ममात्र प्रद्वेषोत्पातैः, ण 'मणंपि ण पदोसए' अपि पादार्थादिषु, किमुपायेन वा निवारणमभिघातैः, 'उवेह ण हणे पाणे' उवेहा णाम उपेक्षा, न वारयति खाद्यमानं शरीरं, हणे पाणे 'हन हिंसागत्योः' प्राणा अस्य संतीति प्राणी, अतस्तेन प्राणे न हिंसेत इत्यर्थः, ते हि केवलमेव मांसशोणितं भुंजते, न मामात्मद्रव्यं वा, अत्रोदाहरणं पथेत्ति, अत्रोदाहरणगाहा–'चंपाए सुमिणभद्दो' गाहा (९३-९२) चंपाए नयरीए जियसत्तुस्स रन्नो पुत्तो सुमणभद्दो जुवराया, धम्मायरियस्स अंतीए धम्मं सोऊण निविन्नकामभोगो पव्वइतो, तहच्चेव एगल्लविहारपडिमं पडिवन्नो, पच्छा हेट्ठाभूमीए विहरंतो सरयकाले अडवीए पडिमागतो, रत्तिं मसएहिं खज्जति, सो ते ण पमज्जति, संमं सहति, रत्तिं पियमाणितो कालगतो, एवं अहियासेतव्वं, दंसमसगपरीसहो गतो। इदाणिं अचेलगपरीसहोऽवीय इति, अचेलं-अचेलगत्तं ॥ ५९ ॥
परीसहतीति अचेलगपरीसहो, तस्य हि स्वयमेव अचेलगत्वमभ्युपगम्य नैवमुपपद्यते-'परिजुन्नेहिं वत्थेहिं' सिलोगो (६० सू० ९२) वस्त्र इति वस्त्रं परि सर्वतोभावे सर्वतो जीर्णानि परिजीर्णानि, परिभुज्यमानानि परिजुन्नाणि से वत्थाणि, अतो तेहिं परिजुन्नेहिं,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||६०-६१||

दीप अनुक्रम [६०-६१]

होक्खामित्ति अचेलए, तस्स एवं अधिति भवति-परिजीर्णेषु सत्सु अचेलगो इदाणिं भविस्सामित्ति, यच्च दुःखमचेलकत्वं, कथमिदानिं शिष्यो इमं दिट्ठंतं अंगीकरेतुं अहियासेज्जा?, यथा यस्य वित्तं नास्ति स हि न वित्तनिमित्तैरुपद्रवैर्बाध्यते, उक्तं हि-'परिग्रहेष्वप्राप्तनष्टेषु कांक्षाशोकैः' अपि च-'कतिया वच्चति सत्थो? किं भंडं?' कत्थ? केत्तिया भूमी? । को कयविक्कयकालो? णिव्विसति किं? कहिं? केण? ॥ १ ॥ अयं चापरो गुणः-स्वयमेवाचेलत्वे ऽत्यागते 'अथवा सचेलगो होमि' त्ति, तस्य हि अचेलकत्वे सति न कदाचित् अप्युपपद्यते-अहं वस्त्रवान् शोभामीति, अन्यानि वा शोभनतराणि वस्त्राणि मृगयिष्ये यैः शोभिष्ये, इत्येवमसौ भिक्षुर्न चिंतयाति, उक्तं च—पंचहिं ठाणेहिं समं पुरिमपच्छिमाणं अरिहंताणं भगवंताणं अचेलगे पसत्थे भवति, तं०-अप्पा पडिलेहा१ विसासिए रूए२तवे अणुमये३लाघवे पसत्थे४विपुले इंदियणिग्गहे५' अतिप्रसक्तार्थनिवृत्तये व्यपदेश्यमाने मा भूदपर्याप्तोऽपि अचेलकत्वं करिष्यतीत्यर्थः ॥ 'एगता अचेलगे भवति' सिलोगो (६१ सू० ९२) एगता नाम जदा जिणकप्पं पडिवज्जति, अहवा दिवा अचेलगा भवति, ग्रीष्मे वा, वासासुवि वासे अपडिते ण पाउणति, एवमेव एगता अचेलगो भवति, 'सचेले यावि एगता' तंजहा-सिसिररातीए वरिसारत्ते वासावासे पडंते भिक्खं हिंडंते, पठ्यते च 'अचेलओ सयं होइ' अचेलओ स्वयमेव, नाभियोगत इत्यर्थः, अहवा यदाऽस्य चीराण्युत्पद्यंते तदा सचेलको जीर्णे अलभ्यमाने वा अचेलकः, सर्वथाप्यचेलकत्वमेव स्यात्, कमालंबनं कृत्वाऽचेलकत्वेन सहितः?, उच्यते, 'एयं धम्महितं णच्चा, 'णाणी णो परिदेवए' एतदिति यदुपदिष्टं धर्मस्य हिताय, न धर्मापरोधायेत्यर्थः, धम्मोवग्गहकारं णाऊणं, णाणी णो परिदेवए, णाणिग्गहणं विदितपरापरत्वान्न लज्जते, प्रायस्तिर्यञ्चो नग्ना, नारकास्तु नग्ना एव, न हि ते लज्जंते, न चैवं(षां)शीतवातपरित्राणानि संति वासांसि,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||६०-६१||

दीप अनुक्रम [६०-६१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ६१ ॥

अरति परीषहः

मयापि च नारकतिर्यग्भवभयादेव विद्यमानान्येव स्वयमपोहितानि इत्यतः शीतवातादिभिरभिहन्यमानोऽपि णाणी नो परिदेवए, परिदेवणं णाम अहं अचेलो सीएण उण्हेण दंसेहिं वा पीडिज्जामि, जिण्णाणि पोत्ताणि, अतो अण्णाणि भविस्सति, एत्थ उदाहरणं महल्लेति दारं, सोवि अज्जरक्खिअपिता तस्स पुण आदी 'वीयभयं देवदत्ता' 'दट्ठूण चेडिमरणं' 'माया य रुद्दसोमा' 'सीहगिरि भद्दगुत्ते' (९४-९७।९६) चत्तारि गाहाओ जियपडिमाउप्पात्तिं कहेऊणं दसपुरुप्पत्ती अज्जरक्खितपव्वज्जा दिट्ठिवाताधिगमो जाव अज्जरक्खितेण पिया पव्वाविओ जाव चोलपट्टगो कओ,तेणं पुव्वं अचेलगपरीसहो णाधियासिओ, पच्छा अधियासिओ, अचेलगपरीसहो गतो। इदाणिं अरतिपरीसहो 'गामाणुगामं रीयंतं' सिलोगो (६२सू०९७) ग्रसते बुद्ध्यादीन् गुणानिति ग्रामः, ग्रामादन्यत् पथि अनुलोमं वा गच्छतो अनुग्रामः, अगा वृक्षाः तैः कृतमगारं नास्य अगारं विद्यत इत्यनगारः तं पुण अणगारं 'अकिंचनं' नास्य किंचनं सोऽयमकिंचनः निष्कांचनो वा,स हि सुखेन रीयति अप्रतिबद्धः गृहवानपि, सकिंचनः दुःखं रीयति, उदाहरणं तच्चन्निकेतओ,आयरियं उद्दिस्स पच्छतो गच्छमाणेण नउलओ दिट्ठो, सो तेण गहितो,भयतः आचार्यं समेत्य ब्रवीति-बिभेमि पच्छतो, पुरतो गच्छामि, उज्झ भयंतीत्युक्तः, पुरतो बीभेति, आयरियसमीपत्थो बिभेमीत्याह, उज्झ भयामिति पुनरप्युक्तः, तस्य धम्मसंज्ञा सुज्झिता, दूरतोज्झितः, आचार्येणोक्तः-किमिदानिं न बिभेसि ?, जं तुरंतो ता गच्छसि, सो भणति-उज्झितं मे भयं, इत्येवं अकिंचणो सुहं विहरति। तमेवं परीयंतं यदि नाम अरती अणुपविसेज्ज, पश्चाद्धि अरतीत्यनु, बिभ्रतामिति संजमे अरतिं, तितिक्खे णाम सहमानस्तां परिव्रजेत्, अरतस्य हि नापि धर्मो, नो तद्वंतंपि नरः शक्तो व्यवस्थापयितुं धम्मे इति अतो धम्मविघ्नकारिणीं मत्वा तां 'अरतिं पिट्ठतो किच्चा' सिलोगो (६३ सू० ९९) पृष्ठतो नाम दूरतः उज्झित्ता, विरतवान् ॥ ६१ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||६२-६३||

दीप अनुक्रम [६२-६४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ६२ ॥

अरति परीषहः

विरतः, विरतस्य हि सतः कुतोऽरतिः संयमे स्यात्, आत्मेवात्मानं रक्षतीत्यात्मरक्षितः, किमभिप्रेतं ?, आत्मसमुत्था दोसा अरतिः, आत्मनि च वैराग्यमस्योत्पन्नं, किं वारतिं प्रयोजयेत्, अरतिः स्यात्कुचरतः तदिदमुच्यते–'धम्मारामे' अत्यर्थं रमति तस्मिन् इत्यारामः धर्म एवाराम धर्मारामः, श्रुतभावनादध्ययनादिषु, आरंम्यत इत्यारंभः, आरंभो नास्तीतिकृत्वा, कृत्येष्वारंभवतां रतिर्भवति, 'उवसंते मुणी' उपेत्य शांतः उपशांतः-प्रशांतः, अकषायवानित्यर्थः, अत्रोदाहरणं तापसेन, तत्थ गाहा— 'अयलपुरे जुवराया' (९८—९९) अयलपुरं णाम अहिट्ठाणं, तत्थ जियसत्तु राया, तस्स पुत्तो जुवराया, सो राहायरियाण अंतिए पव्वइतो, सो य अण्णया विहरंतो गतो तगरिं णगरिं, तस्स य राहायरियस्स सज्झंतेवासी अज्जराहखमणा णाम उज्जेणीए विहरंती, ततो आगता साहुणो तगरं, गता राहस्समीवं, ते पुच्छिता णिरूवसग्गं, ते भणंति– रायपुत्तो पुरोहियपुत्तो य बाहेंति, तस्स जुवरायापव्वतियगस्स सो रायपुत्तो भत्तिज्जतो भवति, मा संसारं भमिहितित्ति आपुच्छिऊण आयरिए गतो उज्जेणिं, भिक्खवेलाए उग्गाहेऊण पट्ठितो, आयरिएहिं भणितो–अच्छाहि, सो भण्णति-ण अच्छामि, णवरं दाएह तं पडिणीतं घरं, चेल्लगो भणितो-वच्च दाएहि, तेण दाइतं, सो तत्थ गतो, वीसत्थो य पविट्ठो, तत्थ ते दोऽवि अच्छंति, ते तं पेच्छिऊण उट्ठिता, तेणवि महासद्देण धम्मलाभियं, ते भणंति-अहो लट्ठं, पव्वइगो अम्हंतेण(आ) गतो, वंदामत्ति, भणंति ते-आयरिया ! तुब्भे गायितुं जाणह, तेण भणियं-आमं जाणामो, तुम्हे वाएह, ते आढत्ता, जाव ण जाणंति, तेण भण्णति-एरिसगा चेव तुब्भे कोलिया, ण किंचिवि जाणह, ते रुट्ठा उद्धाइया, तेण घेत्तुं तेसिं णिजुद्धं जाणंतएण सव्वे संधी खोहिता, पढमं ता पिट्टियता, ते हम्मंता राडिं करेंति, परियणो जाणइ—सो एस पव्वइओ हम्मंतो राडिं करेइ, सोऽवि गतो, पच्छा तेहिं ॥ ६२ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||६२-६३|| दीप अनुक्रम [६५-६६]

अरति परीषहः

॥ ६३ ॥ दिट्ठा, णवि जीवंति, णवि मरंति, णवरिं निरिक्खंति एक्कमेक्कं दिट्ठीए, पच्छा रण्णो सिट्ठं पुरोहितस्स य, जहा इत्थ उ कोइ पव्वइतो, तेण दोवि जणा विसंखलिऊण मुक्का, पच्छा राया सव्वबलेण आगओ, पव्वइतगाण मूलं गतो, सोवि साहू एगपासे अच्छति परियट्टंतो, राया आयरियाणं पादेहिं पडितो, पसायमावज्जह, आयरिएहिं भण्णति-अहं ण याणामि, महाराय ! एत्थ एगो साहू पाहुणगो आगतो, जति परं तेणं होज्जा, राया तस्स मूलं समागतो, पच्चभिण्णातो य, ततो तेण साहुणा भणितो—धिरत्थु ते रायत्तणस्स, जो तुमं अप्पणो पुत्तभंडाणवि णिग्गहं ण करेसि, पच्छा राया भणति– पसायं करेह, भणति—जति परं पव्वयंति दोण्हं मोक्खो, अन्नहा नत्थि, रायणा पुरोहिएण य भण्णति–एवं होउ, पव्वयंतु, पुच्छिया भणंति—पव्वयामो, पुव्वं लोओ कओ, पच्छा मुक्का, पव्वइया, सो य रायपुत्तो णिस्संकिओ चेव धम्मं (कुणति) पुरोहितपुत्तस्स पुण जातिमतो, अम्हे य मड्डाए पव्वाविया, एवं ते दोवि कालं काऊण देवलोगे उववन्ना, इतो य 'कोसंबीए सेट्ठी' गाहा-(९९—९९)कोसंबीए नयरीए तावसो नाम सेट्ठी, सो मरिऊण नियघरे सूयरो जातो, जाईसरो, ततो तस्स चेव दिवसगे पुत्तेहिं मारितो, पच्छा तहिं चेव घरे उरगो जातो, तहिंपि जाइस्सरो जातो, तत्थवि अंतो घरे मा खाहितित्ति मारितो, पच्छा पुणोवि पुत्तस्स पुत्तो जातो, तत्थऽवि जाइं सरमाणो चिंतेइ-कहं अहं अप्पणो सुण्हं अम्मंति वाहरीहामि?, पुत्तं वा तातंति?, पच्छा मूयत्तणं करेति, पच्छा महन्तीभूतो, साधूणं अल्लीणो, धम्मोऽणेण सुतो, सावगो जातो, इत्तो य धिज्जाइय देवो महाविदेहे तित्थगरं पुच्छति-किमहं सुलहबोहिओ दुल्लभबोहियत्ति, ततो सामिणा भणिओ-दुल्लभबोहियोऽसि, पुणोवि पुच्छति-कत्थाहं उववज्जिस्सामि?, भगवया भण्णति-कोसंबीए मूयस्स भाया भविस्ससि, सो य मूओ पव्वइस्सति, सो देवो भगवंतं वंदिऊण गतो मूयगस्सगासं, तस्स सुबहुयं दव्व- ॥ ६३ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||६२-६३||

दीप अनुक्रम [६५-६६]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ६४ ॥

अरति परीषहः

जातं दाऊण भणति-अहं तुब्भ पिउघरे उववज्जिस्सामि, तीसे य डोहलओ अंबएहिं भविस्सति, अमुगे य पव्वते मया अंबगो सदापुप्फफलगो कतो, तुमं तीए पुरओ णामं लिहिज्जासि जहा तुब्भं पुत्तो भविस्सति, जइ तं मम देसि तो ते आणामि अंबफलाणिति, ततो ममं जातं संतं तहा करेज्जासि जहा धम्मे संबुज्झामित्ति, तेण पडिवण्णे गतो देवो, अण्णया कयवयदिवसेसु चइऊण तीए गब्भे उववन्नो, अकाले अंबडोहलो जातो, स मूगो णामगं लिहसि, तहेव कहेइ, ताए भण्णति-दिज्जति, तेण आणीताणी अंबफलाणि, विणीतो डोहलो, कालेण दारगो जातो, सो तं खुड्डलयं चेव होंतं साधूण पाएसु पाडेति, सो धाहाओ करेति, ण य वंदति, पच्छा संतपडितंतो मूयगो पव्वइओ, सामन्नं काऊण देवलोगं गतो, तेण ओही पउत्ता, जाव णेण सो दिट्ठो, पच्छा णेण तस्स जलोदरं कतं, जेण ण सकेति उट्ठेउं, सव्ववेज्जेहिं पच्चक्खातो, सो देवो डोम्बरूवं काऊण घोसंतो हिंडति—अहं वेज्जो सव्ववाही पसमेमि, सो भणति-मम पोट्टं सज्जावेहि, (जइ समं वयासि) तेण भण्णति-वच्चामि, तणे सज्झवितो, गतो तेण सद्धिं, तेण तस्स सत्थगोसगो अल्लवितो, सो ताए देवमायाएऽतीव भारितो, जाव य पव्वतियगा एगंमि पदेसे पढंति, वेज्जेण सो भण्णति-जति पव्वयसि तो तं मुयामि, सो तेण भारेण परिताविज्जंतो चिंतेति-वरं मे पव्वइउं, भणति—पव्वयामि, पव्वइतो, देवे गते णाचिरस्स उप्पव्वइतो, तेण देवेण ओहिणा पेच्छिऊण सो चेव से पुणोऽवि वाहि कओ, तेणेव उवाएण पुणोवि पव्वाविओ, एवं एक्कसिं दो तिन्नि वाराओ पव्वइतो, तइयावाराए गच्छति देवो तेणेव समं, तणभारं गहाय पलियन्तयं गामं पविसति, तेण भण्णति-किं तणभारएण पलित्तं गामं विससि ?, तेण भण्णइ-तुमं कहं कोहमाणमायालोभसंपलितं गिहवासं पविससि?, तहावि ण संबुज्झति, पच्छा पुणोऽवि दोवि जणा गच्छंति, णवरं देवो अडवीए उप्पहेण पट्ठितो, तेण भण्णति- ॥ ६४ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||६२-६३||

दीप अनुक्रम [६५-६६]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ६५ ॥

स्त्री परीषहः

तुमं कई मोक्खपदं मोत्तूण संसाराडविं पविससि ?, तहावि ण संबुज्झति, पुणो एगंमि देवकुले वाणमंतरो अच्छि(च्चि)ओ हिट्ठाहुत्तो पडति, अहो वाणमंतरो अधण्णो अपुण्णो य जो उवरिहुत्तो कओच्चिय अतो य हेट्ठाहुत्तो पडिति, तेण देवेण भण्णति- अहो तुमंपि अहन्नो जो पराहुत्तो ठवितो अच्चाणिज्जे य ठाणे पुणो पुणो उप्पव्वयासि, तेण भण्णइ-कोऽसि तुमं ?, तेण मूयरूवं दंसियं, पुव्वभवो य से कहितो, सो भण्णति-को पच्चओ जहाऽहं देवो आसी ?, पच्छा सो देवो तं गहाय गतो वेयड्ढं पव्वयं सिद्धाययणकूडं च, तत्थ तेण पुव्वं चेव संगारो कइल्लओ, जहा जति जहं ण संबुज्झेज्जा तो एयं ममच्चयं कुंडलजुयलं सनामंकियं सिद्धाययणपुक्खरणीए दरिसिज्जासि, तेण से तं दंसियं, सो तं कुंडलं सनामंकं पेच्छिऊण जातिस्सरो जातो, संबुद्धो पव्वइतो, संजमे य से रती जाता, पुव्वं अरती आसी, पच्छा रती जाता, अरतिपरीसहो गतो। इदाणिं इत्थिपरीसहो, स्यात्किंसमुत्था अरतिः ?, उच्यते, स्त्रीसमुत्था, 'संगो एस मणुस्साणं' सिलोगो (६४ सू० १०३) सज्यते इति संगः, एष इति प्रत्यक्षीकरणे, एष एव सर्वसंगानां संग इति, कश्चासौ ?, 'जाउ लोगंसि इत्थितो' जा इति अनिर्दिष्टस्य निर्देशे, लोगो तिविहो— उड्ढलोगो अहोलोगो तिरियलोगो, अस्मिन् लोगे इत्थिओ तिरिक्खजोणीओ मणुस्सीओ देवीओ, जस्सेया परिण्णाता नाम लहुसियाए "एता हसंति च रुदंति च अर्थहेतोर्विश्वासयंति च परं न च विश्वसंति। तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः स्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ॥१॥" "इति, समुद्रवीचीचपलस्वभावाः, संध्याभ्ररेखा व मुहूर्तरागाः। स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं, निपीडितालक्तवत् त्यजंति ॥२॥" एवं जाणणपरिण्णाए परिजाणिऊण चत्ता पच्चक्खाणपरिण्णाए इत्यतो जस्सेता परिण्णाता, उभयथावि परिण्णाता, 'सुकडं' सुक्खं क्रियत इति सुकडं, सुट्ठु वा कयं सुकडं, निष्ठार्थग्रहणं परिजाणिऊण ॥ ६५ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||६४-६५||

दीप अनुक्रम [६५-६६]

सव्वसंगपरिमुकस्स, किं च समणत्तणस्स दुकरं?, समणभावं सामण्णं ॥ 'एवमाताय मेधावी' सिलोगो, (६५ सू० १०६) एवमनेन प्रकारेण एवमाज्ञाय-एवमुवलभ्येत्यर्थः, पठ्यते च-'एचमाधाय मेधावी' एतत्परिज्ञानमादायेति जहा एया लहुस्सिगा इत्यादि, पंकेण तुल्या पंकभूता जहा पंके णिमज्जंते मच्छंते, एवमेतासु बालिशाः सत्त्वाः संसारपंके णिमज्जंते, 'णो ताहिं विनिहान्निज्जा चरेज्जत्तगवेसए, घातो नाम तासु अभिस्संगो तन्निमित्तो वा धम्मपरिच्चागो, चरे इति अनुमतार्थे, आत्मानं गवेसयतेत्ति अत्तगवेसए, कथं ते आत्मा न संसारायेति, कथं वा मे चरित्रात्मा ताभिर्न हन्येत इति ॥ अत्रोदाहरणं-'पडिमाए मूलभवो वत्त' गाहा 'उसभपुरं' पंच गाहाओ (१०० । १०४—१०६) भाणियव्वाओ, एतं च अक्खाणयं, जक्खाए० थूलभद्दो गणियाघरे वुच्छो, सेसा तिन्नि साधू. एगो सप्पवसहीए एगो वग्घवसहीए एगो कूवतडे, जाव कंबलरयणं चंदणियाए छूढं, जहा थूलभद्देण अहियासियं तहा अहियासेयव्वं, ण जहा तेण साहुणा न अधियासियं तहा णाहियासेयव्वंति इत्थिपरीसहो गतो । इदाणिं चरियापरासहो 'एग एव' सिलोगो (६६सू० १०७) एगो णाम रागद्दोसरहितो, अहवा एगो 'जणमज्झेवि वसंतो' गाहा ( ) एगे पुण पढंति 'एग एगो चरे लाढे' एगो नाम असहायवान्, एगत्थविहारी, बितियमेकग्रहणं अरागद्वेषवान्, चरेदित्यनुमतार्थे, लाढे इति फासुएण उग्गमादिसुद्धेण लाढेति, साधुगुणेहिं वा लाढय इति ज्ञापयतेति, अभिमुखं भूत्वा सोढवान्, न तैरभिभूत इत्यर्थः, कुत्र चरेत्?, किमरण्ये ?, नेत्युच्यते-'गामे वा नगरे वा' ग्रसति बुद्ध्यादीन् ग्राम इति, नात्र करो विद्यते इति नगरं, नयन्तीति निगमास्त एव नैगमाः, नानाकर्मशिल्पजातय इत्यर्थः, ते यत्र संति तं निगमं, राज्ञः धानी राजधानी, स्याद् बुद्धिः — किमरण्णे न वसतीति?, उच्यते, लोकायत्ता हि तस्य प्रासुकाहारवृत्तिः,

॥ ६६ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||६६-६७||

दीप अनुक्रम [६७-६८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ६७ ॥

स्त्री परीषहः

तेन जनपदे वसति, तत्रापि वासो वसन् ' असमानो चरे भिक्खू ' सिलोगो (६७सू० १०७) असमान इति असमादि(नि)कः, असंनिहित इत्यर्थः, यथा असमानिकत्वात् गृहवान्, तस्स बद्धमणी ण वहति, एवं सोऽपि जत्थ वसति तत्थ ण सडितस्स पडियस्स वा उदंतं वहइ, अहवा असमाण इति नो गृहितुल्यितः, न हि तदुदंतप्रवृत्ता मूर्छिताश्चास्मिन्, अथवा असमानः अतुल्यविहारः, अन्यतीर्थिकैः, परिग्रहो नामो उवस्सगस्सेव तदुपकारिणं वा कोपादीनां धनधान्यस्य वा, मूर्छा परिग्रह इतिकृत्वा, यैः सह वसति तैः ग्राम्यैर्नगरैः प्रातिवेशकैः वा, तेसिं 'णेव कुज्जा परिग्गहं' ममीकारमित्यर्थः, ग्रामादिष्वपि च वसन् नासक्ते, गृहादीनामारामोद्यानादिषु 'असंसत्तो गिहत्थेहिं' असंसत्तो असंसक्त इत्यर्थः, गृहे तिष्ठतिर, कथंचिन्नाम आसन्नोपि वसन् तैर्न भावतः संसज्जेत, निकेतं-गृहं, नास्ति निकेतनमस्येत्यनिकेतः अणिययवासो वा, अत्रोदाहरणं सीसे(ण)हिंडगेण, तत्थ गाहा, ' कोल्लयरे ' गाहा (१०६—१०७) कोल्लयरे वत्थव्वो संगमथेरो आयरिओ, जंघाबलपरिहीणो, दुब्भिक्खे न हिंडतो, तस्स सीसो आहिंडको दत्तो नाम, जहा पिंडनिज्जुत्तीए तहा वाच्यं, एत्थ य तस्सायरियस्स णववसहिभागिस्स जयणाजुत्तस्स अच्छंतस्सवि एकहिं भावचरिया एव, जेण जुट्ठो, दत्तस्स पुण दव्वचरिया अविसुद्धा, जेण न जुट्ठो, चरियापरीसहो गतो, इदाणिं निसिहियापरीसहो, तप्पडिवक्खेण णिसीहियत्ति वा ठाणंति वा एगट्ठं, तं तु तस्स साधोः कुत्र स्थाने स्यात्?, णिसीहियमित्यर्थः?,-'सुसाणे सुन्नगारे वा' सिलोगो (६८ सू० १०८) सुसाणं सुन्नागारं, रुक्खस्स आसन्नं रुक्खमूले, एतागी—असहायगो रागद्दोसविरहिओ वा, अकुक्कुओ निसीएज्जा, विविधं त्रासनं वित्रासनं। 'तत्थ से अच्छमाणस्स' सिलोगो (६९ सू० १०९) तत्थित्ति तस्मिन् सुसाणादिसु, उपसज्यंत इत्युपसर्गाः, विविधाः समस्ताः प्रत्येकं सोढा, अभिधारणा नाम

॥ ६७ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||७०-७१||

दीप अनुक्रम [७१-७२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ६८ ॥

स्त्री परीषहः

प्रार्थना, अभिमुखं वा धारयंतीति अभिधारणा, केचित्तु पठंति-'उवसग्गभयं भवे' स तैः प्रार्थ्यमानो बज्झमाणो वा संकातीतो ण गच्छेज्जा, संका अण्णाणतो देवं पेच्छेज्जा भावसंका सा घेप्पति, ताए संकाए भीतो ण गच्छेज्जा, अत्रासंका, भापनीत्यर्थः, भयं, आसंकितं वा भयं, किमत्र भयं स्यात् ?, न बिभेति, भयं तु प्रत्युत्पन्नमेव येनाभिद्रुतः स्यात्, पलायति वा विक्रोशति वा, एवं गामेवि हितोत्पत्तौ अणुपविसति, एत्थोदाहरणं— 'अगणि' त्ति, तत्थ गाहा—'णिक्खंतो गयपुरातो' गाहा (१०७—१०९) कुरुदत्ततो णाम इब्भपुत्तो, तहारूवाणं थेराणं अंतीए पव्वइतो, सो कयाए एगल्लविहारपडिमं पडिवन्नो, साएतस्स णगरस्स अदूरसामन्ते पोरसी ओगाढा, तत्थेव पडिमं ठितो चचरे, ततो एक्काओ गामाओ गावीओ हिरिज्जंतिओ तेणोगासेण णीताओ. कुडिया मग्गमाणा यागता पेक्खंता पदेण जाव साधू दिट्ठो, तत्थ दुवे पंथा, पच्छा ते ण तेण जाणंति-कतरेण पंथेण णीतातो?, ते साहू पुच्छंति-कयरेण पहेण गावीतो णीतातो ?, सो भगवं न वाहरति, तेहिं रुट्ठेहिं ण वाहरतीतिकाऊण तस्स सीसे मट्टियाए पालिं बंधिऊण चितआओ अंगारा घेत्तूण सीसे छूढा गया य, सोऽवि भगवं संमं सहति, तेण णिसीहियापरीसहो अहियासिओ, निसीहियापरीसहो गतो, इदाणिं सेज्जापरीसहो 'उच्चावयाहिं' सिलोगो (७० सू० ११०) उच्चा अवचाश्च, उर्द्धचिता उच्चा, उपाचिता गुणैः उच्चत्तेण वा, अथानेकप्रकारासु उच्चावयासु शेते तस्यामिति शय्या भिक्खु थामवां णातिवेलं विहण्णिज्जा, वेला सीमा सेतुर्मर्यादेत्यनर्थान्तरं, अतिवेलं विहण्णेज्जा, विविधं हन्यते विहन्यते, विघातो णाम जेण संजमजीवियाओ हन्यते, उच्चाए अहो इमा शीतला उतुक्खमा, अवचाए अहो इमा पावा सेज्जा अऋतुक्खमा, एवं पावदिट्ठि विहण्णाति, पापदृष्टिः, अभियोगमित्र मन्यते, बारसमालंबा जति महो जस्सेसा पवाता वा ॥ ६८ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||७०-७१||

दीप अनुक्रम [७१-७२]

णिवाता वा पतिरिक्का वा, एवं अवचितासु, उच्चासु त अहो मे मणुन्ना सेज्जा, एवं पावदिट्ठि विहण्णति । स एवं अपापदिट्ठी “ पयरीक्कुवस्सयं णच्चा ’ सिलोगो (७१सू० ११०) पयरेक्को णाम पुण्णो, अव्वाबाहो वा असु(ञ्मु)ण्णवो वा, ण किंचिवि तत्थ ठविया, जं निमित्तं तत्थागच्छिस्संति, अयं ऋतुखमितो, ण कप्पडियादिहिं य उवभुज्जति, कल्यतामानयतीति कल्याण:, पापको नाम पांसु कूरे वा अरितुक्खमो वा पापक:, पइरिक्केऽपि वसन्-‘किं मज्झ एगरातीए? ’ किमिति परिप्रश्ने, किमेकरात्र्यां भविष्यति, सो हि एगल्लविहारी गामे एगरातीए णगरे पंचरातीए, रमणीए तावत् अद्यैवायं रमणीयः उपाश्रयः, हिज्जो अन्नो भवति सोभणो असोभणो वा,पापकोऽपि अद्यैवायं ममाशोभनो,हिज्जो अन्नो भविस्सति,यत्रापि चिरं वसति तत्राप्यालंबते ‘किं मज्झ एगरायाए’ किमियं एगरात्री देरात्री भविष्यति, बद्धोऽपि एकरात्रं लंघयति, एवं आलम्बनं कृत्वा एवं तत्थऽधियासए, अत्रोदाहरणं ‘णिव्वेगं’, तत्थ गाहा— ‘ कोसंबि जण्णदत्तो ’ गाहा (१०८—१११) कोसंबी णयरी, जण्णदत्तो धिज्जातितो, तस्स दो पुत्ता-सोमदत्तो सोमदेवो य, ते दोवि निव्विन्नकामभोगा पव्वइया, सोमभूतिस्स अणगारस्स अंतीए, बहुसुता बहुआगमा य जाता, ते अन्नया सन्नातयपल्लिमागता, ते य तेसिं मातापितरो उज्जेणिं गतिल्लिया, तेहिं पवसिए हिज्जाइगिणिओ वियडं आवियंति, ताहे तेसिं वियडं अण्णदव्वेण मेलेऊण दिन्नं, केई भणंति- वियडं चेव अयाणंतीए दिन्नं, तेहिंविय तं विसेसं अयाणमाणेहिं पीयं, पच्छा वियडत्ता जाया, ते चिंतंति-अम्हेहिं अजुत्तं कतं,पमाओ एस, वरं भत्तं पच्चक्खायंति ते एगाए णदीए तीरे कट्ठाण उवरिं पाओवगया, तत्थ अकाले वरिसं पडियं, पूरो य आगतो, हरिता वुज्झमाणा य उदएण समुद्दं णीया, तेहिं सम्मं अहियासियं, अहाउयं पालियं, सेज्जापरीसहो अहियासिओ समविसमाहिं सेज्जाहिं, एवं सेज्जापरी-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||७२-७३||

दीप अनुक्रम [७३-७४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ७० ॥

आक्रोश परीषहः

सहो गतो। इदाणिं अक्कोसपरीसहो 'अक्कोसेज्ज परो भिक्खू' सिलोगो (७२सू०१११) आक्रुस्यते यतस्स आक्रोशः-अनिष्टाभिधानं, परे णामाधमो बहिरात्मानं व्यवस्थाप्य भिक्षणशीलो भिक्षुः एतेसिं अक्कोसंताणं पडिसंजले, प्रति संजलतीति प्रति संजलेत्ति,समस्तं वा जलति संजलति, इंधणे वा अग्गी, संजलियलक्खणं तु पडिअक्कोसंति आहणंति वा, जो एवं पडिसंजलति सो सरिसो होइ बालाणं, जो पडिअक्कोसेति आहणति वा, अत्रोदाहरणं— देवता उवसंता, सा अभिक्खणं वंदिता एति, वदइ य-ममं कज्जमाणेज्जासि, सो एएण धिज्जातीएण सह असंखडं लग्गो, सो तेण बलवंतेण खामसरीरो पाडितो तालिओ य, रत्तिं देवता तं वंदिया आगता, वंदति, खमगो तुसिणीतो अच्छति, सा भणइ-कोइ मम अवराधो ?, सो भणति- तुमे ण किं तस्स धिज्जातियस्स कतं ?, सा भणति-अहं तत्थ विसेसं चेव ण याणामि-को धिज्जाइओ खमगो वत्ति, दोऽवि तुल्ला तुज्झे, सम्मं पडिचोयणात्ति पडिवन्नं, इत्यतः सरिसो होइ बालाणं, तत्थ ण पडिसंजले, यतश्चैवं 'सोच्चाणं फरुसा भासा' सिलोगो (७३ सू० ११२) फरुसा निःस्नेहा अनुपचारा, श्रमणको निर्लज्जा इत्यादि, मणं दारयतीति दारुणा, ग्रसत इति ग्रामः-इंद्रियग्रामः तस्य इंद्रिग्रामस्य कंटगा, जहा पंथे गच्छंताणं कंटगा विग्घाय, तहा सद्दादयोवि इंद्रियग्रामकंटया मोक्खिणां विग्घायेति, ताणेव कंटकान् तुसिणीओ उवेहेज्जा, उपेक्षा नामैतेस्वनादरः, मनःकरणं नाम तदुपयोगः, मनसोऽसमाधिरित्यर्थः, एत्थ अज्जुण उदाहरणं, मोग्गरेत्ति दारं। तत्थ गाहा— 'रायगिह मालगारे' गाहा— (११०—११२) रायगिहे णगरे अज्जुणओ ॥ ७० ॥
नाम मालागारो परिवसति, तस्स भज्जा खंदसिरी णामा, तस्स रायगिहस्स नगरस्स बहिया मोग्गरपाणी णाम अज्जुणकस्स कुलदेवतं, तस्स य मालागारस्स आरामपंथे चेव जक्खो, अण्णदा खंदसिरी भत्तं तस्स भत्तारस्स णेतुं गता, अग्गाइं पुप्फाइं

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||७२-७३||

दीप अनुक्रम [७३-७४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने

॥ ७१ ॥

आक्रोश परीषहः

घरे घेत्तुं गच्छति, मोग्गरपाणी घरए य विभाए वूढा, सा ताए गोट्ठीए छहिं जणेहिं दिट्ठा, चिंतेति-एसा अज्जुणगस्स भज्जा पडिरूवा गिण्हा मो णं. तेहिं सावि गहिया, छवि जणा तस्स जक्खस्स पुरतो भोगे भुंजंति, सो हि मालागारो निच्चकालमेव अग्गेहिं वरेहिं पुप्फेहिं जक्खं अच्चेति, अच्चिउकामो सो ततो आगच्छति, ताए ते भणिता—एसो मालागारो आगच्छति, तुब्भे मए किं विसज्जेह ?, तेहिं णातं-एताए पियं,तेहिं भणियं-एतं मालागारं बंधामो, तहिं सो बंद्धो अवउडएण, जक्खस्स पुरतो ठवेऊण पुरतो चेव से भारियं भुंजंति, सावि तस्स भत्तारस्स मोहुप्पाइयाइं इत्थिसद्दाइं करेति, सो मालागारो चिंतेति-एयं अहं जक्खं निच्चकालमेव अग्गेहिं वरेहिं उतुगेहिं पुप्फेहिं अच्चेमि तहावि अहं एतस्स पुरतो चेव एवं कीरामि, जति एत्थ कोइ जक्खो होंतो तो अहं ण कीरिंतो एवं, सुव्वत्तं एतं कट्ठं, णत्थि कोई मोग्गरपाणी। ताहे सो जक्खो अणुकंपंतो मालागारस्स सरीरमणुपविट्ठो, तडयडस्स बंधाण छित्तूण लोहमयं पलसहस्सनिप्फन्नं मोग्गरं गहाय अण्णाइट्ठो समाणो तत्थ छप्पित्थिसत्तमे पुरिसे घातेति, एवं दिणे दिणे इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घातेमाणो विहरति, जणवतोवि रायगिहाओ णगराओ ताव ण णिग्गच्छति जाव न सत्त घातिता। तेणं कालेण तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरति जाव सुदंसणो सेट्ठी वंदओ णीति, अज्जुणएण दिट्ठो, सागारपडिमं ठितो, ण तरति अतिक्कमेउं, परिपेरंतेहिं भमेत्ता परिसंतो अज्जुणओ, सुदंसणं अणिमिसाए दिट्ठीए पलोएति, जक्खो य मोग्गरं गहाय पडिगतो, पडिओ अज्जुणगो, उट्ठितो य तं पुच्छति-कहिं गच्छासि ?, भणति- ॥ ७१ ॥
सामिवंदओ, धम्मं सोच्चा पव्वइतो, रायगिहे य भिक्खं हिंडंतो सयणमारगोत्ति लोगेण अक्कुसति णाणापगारेहिं, सो सम्मं सहति खमति, सम्मं सहंतस्स केवलनाणं उप्पन्नं, एवं अक्कोसपरीसहो गतो। इदाणिं वद्दपरीसहो—'हतो ण

प्रत
सूत्रांक
[१]
गाथा
||७४-७५||

दीप
अनुक्रम
[७५-७६]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ७२ ॥

वध परीषहः

संजले भिक्खू ' सिलोगो (७४ सू० ११४) हन्यते स्म हतः, संजलनं नाम रोषोद्गमो मानोदयो वा, संजलितलक्षणं " कंपति रोषादग्निः संधुक्षितवच्च दीप्यतेऽनेन । तं प्रत्याक्रोशत्याहंति च मन्येत येन स मतः ॥ १ ॥ " मणंपि न पदोसए, किमु प्रत्याहणणं?, अथवा मनःप्रदोषा एव कायेन प्रत्युद्गच्छत्याक्रोशति वा, स्यात्-किमालंबनं कृत्वा न पडिसंज्वलेदिति ?, उच्यते, 'तितिक्खं परमं णच्चा' तितिक्खणं सहणमित्यर्थः,परं मानं परमं, नातः परं निर्जराद्वारमस्ति, भिक्खुधम्मं विचिंतए, इमातो य आलंबणातो सहियव्वं ' समणं संजयं दंतुं ' सिलोगो (७५ सू० ११४) समो सव्वत्थ मणो जस्स भवति स समणो, सम्मं जतो संजतो-हस्तपादातिसंजतो, को णाम दुज्जणो से दोषोपहतात्मानं हन्यात् जाहम्ममाणोवि, स एव हत्थपायाइसंजओ, ण पच्छा सूरयतीति, दुज्जणा हि पच्छा सूरणभयादेव ण परं वावाययंति, उक्तं हि— " अविनयमनसो हि दुर्जनः, क्षमिणि जनेऽप्यधिकं हि वर्त्तते । जनमिह तु समेत्यकर्कशः, परिशुद्धेर्वाऽश्मनि न प्रवर्त्तते ॥ १ ॥ कोऽपीति कश्चिद्बालः, कत्थवित्ति गामे नगरे वा उवस्सए वा, तत्थालंबणं ' अक्कोसहणणमारणधम्मब्भंसाण बालसुलभाणं । लाभं मन्नति धीरो जहुत्तराणं अभावंमि ॥ १ ॥ अक्कोसति कोति विद्यते एवं बालेसु, अयं तु लाभो-जं मे ण तालेति, तालेंति जं मे ण मारेति, मारेंति जं मे धम्मातो ण भंसइ, नित्यत्वात् अमूर्तत्वाच्च न शक्नोति जीवं नाशयितुं, एवं 'णत्थि जीवस्स णासे' त्ति णाऊण 'ण ता पेहे असाधुवं' ति, साधू हि सति सत्तीए न प्रत्युद्गमनायोपतिष्ठति, असत्तो पुण जो न मणसा संकिलिस्सति, अथवा 'ण य पेहे असाधुत्वं' असाधुभावो असाधुता, पठ्यते च 'णत्थि जीवस्स णासोत्ति एवं पीहेज्ज संजए' पीहेज्ज-चिंतज्जा,एत्थ उदाहरणं वणेत्ति दारं, तत्थ गाहा— ' सावत्थी जियसत्तु' गाहा ' मुणिसुव्वयंतेवासी ' गाहा 'पंच सया जंतेण गाहा ॥ ७२ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||७४-७५||

दीप अनुक्रम [७५-७६]

(१११।११३-११५) सावत्थीनयरीए जियसत्तू राया, धारिणी देवी, तीसे पुत्तो खंदओ नाम कुमारो, तस्स भगिणी पुरंदरजसा, कुंभकारे णगरे दंडी णाम राया, तस्स दिन्ना, तस्स य दंडगिस्स रण्णो पालगो नाम पुरोहितो, अण्णदा सावत्थीए मुणिसुव्वयसामी तित्थंकरो समोसरितो, परिसा निग्गता, खंदओऽवि णिग्गतो, धम्मं सुच्चा सावगो जातो, अन्नया सो पालकमरुओ दूयत्ताए आगतो सावत्थिं नगरिं, अत्थाणिमज्झे साधूण अवण्णं वयमाणो खंदएण णिप्पिट्ठपसिणवागरणो कतो पदोसमावण्णो, तप्पभिइं चेव खंदगस्स छिद्दाणि चारगपुरिसेहिं मग्गावेंतो विहरति, जाव खंदओ पंचजणसएहिं कुमारोलग्गएहिं सद्धिं मुणिसुव्वयसामिसगासे पव्वतितो, बहुस्सुतो जातो, तहेव सो पंच सताणि सीसत्ताए अणुण्णाताणि, अण्णया खंदओ सामिं पुच्छति-वच्चामि भगिणिसयासं, सामिणा भणियं-उवसग्गो मारणंतिओ, भणति-आराहगा विराहगा वा ?, सामिणा भणियं-सव्वे आराधगा तुमं मोत्तुं, सो भणति—लट्ठं जति एत्तिया आराधगा, गतो कुंभकारकडं, मरुएण जहिं उज्जाणे ठितो तहिं आयुहाणि खणूमिताणि, राया वुग्गाहितो, जहा कुमारो परीसहपराइतो एतेण उवातेण तुमं मारेत्ता रज्जं गिण्हिहिति, जइ विपच्चइओ उज्जाणं पलोएहि, आयुधाणि ओलइताणि दिट्ठाणि, ते बंधिऊण तस्स चेव पुरोहितस्स समप्पिता, तेणं सव्वे पुरिसजंतेण पीलिता, तेहिं सम्मं अहियासियं, तेसिं केवलनाणमुप्पण्णं, सिद्धा य, खंदोऽवि पासए धरिओ लोहितचिरिकाहिं भरिज्जंतो सव्वपच्छा पीलिओ, णिदाणं काऊण अग्गिकुमारेहिं उववन्नो, जंपि से रजोहरणं रुधिरलित्तं पुरिसहत्थउत्तिकाउं गिद्धेहिं (गहियं) पुरंदरजसाए पुरतो पाडितं, सावि तद्दिवसं अधितिं करेति, जहा-साधू ण दीसंति, तं च णाए दिट्ठं, पच्चभिन्नातो कंबलओ, णिसिज्जाओ तीए चेव दिन्नाओ, तीए नायं, जहा ते मारिया, ताए खिंसितो राया-पाव! विणट्ठोसि, ताए चिंतियं- पव्वज्जामि, देवेहिं

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||७४-७५|| दीप अनुक्रम [७५-७६]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ७४ ॥

याचा परीषहः

मुणिसुव्वयसामीसगासं णीता, तेण देवेण णगरं दड्ढं, सजणवओ, अज्जवि डंडगारण्णं भण्णति, अरण्णस्स य वणक्खा भवति, एत्थ तेहिं साधूहिं वधपरीसहो अहियासिओ, एवं सम्मं अहियासितव्वं, ण जहा खंदएण णाधियासियं, वधपरीसहो गतो। इदाणिं जायणापरीसहो-'दुक्करं खलु भो निच्चं' सिलोगो (७६सू.११६) दुकरं (क्खं) कज्जातित्ति दुकरं, खलु विसेसणे, किं विसेसेति?, दुक्खं हि णिरुपकरिणा सता प्रतिदिवसं हि पिंडार्थे परः प्रणयितुं, भो इत्यामंत्रणे, णिच्चं नियतं कालं, आहारायत्तत्वात् प्राणीनां, यावज्जीवमित्यर्थः, नास्य अगारं विद्यते अनगारः, भिक्खणसीलो भिक्खु, अण्णेवि अणगाराः संति मृगचरोद्दंडिगाद्याः तद्व्युदासार्थं भिक्षुग्रहणं, तत्रापि च ये भिक्षवः शाकादयः (त) अफासुगाहारत्वात् उदकादिस्वयंग्रहात् द्रव्यभिक्षवः, भावभिक्षुस्तु उद्गमउप्पायणेसणासुद्धं भिक्षणशीलत्वाद् भिक्षुः अतस्तस्य भिक्षोः 'सव्वं से जाइयं होइ' सव्वंति-आहारोपकरणसेज्जादि अथवा अस्य शरीरोपकरणत्वात् दंतशोधनाद्यपि, अदत्तं कल्पनीयं, न प्रतिषेधे, अपरिग्रहस्यापि अदत्तादानाविरतेश्च, नास्ति किंचिदयाचितं ॥ 'गोयरग्गपविट्ठस्स' सिलोगो (७७-सू. ११६) गोरिव चरणं गोयरो, जह सो वच्छतो सद्दादिविसयसंपउत्ताएवित्थीए अमुच्छिओ, एवं साधूवि गोयरस्स अग्गं गोयरग्गं, अग्गं पहाणं, जतो एसणाजुत्तं, ण जहा चरगादीणं परिक्खे तोसलिणं, आगतो गोयरपविट्ठस्स पाणी णो सुप्पसारए पातेति पिबति वा तेणेति पाणी, णो सुप्पसारए जहा मम देहित्ति, अवि य-'धणवइसमोऽवि दो अक्खराइं लज्जं भयं च मोत्तूणं। देहित्ति जाव ण भणति पडइ मुहे नो परिभवस्स ॥ १ ॥ स एवं तेण जायणापरीसहेण तज्जिओ 'सेओ आगारवासे'त्ति श्रयंति तमिति श्रेयः, सेयो आगारवासो, यत्र हि अयाचितमेव उदकादि, यत्र वा वेदादिकर्मभिः स्वयमुपार्ज्य मृतबान्धवैश्च पूर्वकमुपनीतं साधुजनदीनानाथकृतसंविभागैर्भुज्यते, एवं चिंतए भिक्खू न, एत्थ रामेण उदाहरणं, तत्थ गाहा- 'जायणपरीसहं' गाहा ॥ ७४ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||७६-७९||

दीप अनुक्रम [७७-८०]

(११३॥-११७) सो सिद्धत्थेण देवेण बोधितो तदा कण्हवासुदेवस्स सरीरगं सक्कारेऊणं कयसामाइओ लिंगं पडिवज्जिउं तुंगीसिहरे तवं तप्पमाणो, माणेण कहं भिच्चाण भिक्खट्ठाए अल्लिस्सन्ति तेण कट्ठहाराईण भिक्खं गिण्हइ, न गामं नयरं वा अल्लियइ, तेण णाहियासिओ जायणापरीसहो,अन्ने भणंति-बलदेवस्स भिक्खं हिंडंतस्स बहुजणो रूवेण उम्मत्तसमो, ता ण किंचि अण्णं जाणति, तच्चिंतए अच्छति, तेण सो ण हिंडति, एस जायणापरीसहो ॥ इयाणि अलाभपरिसहो 'परेसु घासमेसेज्ज' सिलोगो, (७८सू.११७) परे णाम असंयता पापकर्माणो, ग्रस्यत इति ग्रासः-आहारोवकरणं च, भुज्जत इति भोयणं,परिणिट्ठियं-फासुगीकृतं, तं च अप्पणो अट्ठाए,तम्मि सुलद्धे पिण्डे अलद्धे वा अनुगतःतापःअनुतापःअथवा अंतःतप्तं पश्चाद् घटित्वेति तप्यति-अहो मया न लब्धमित्यनुतापः, स्याद् बुद्धिः-अलब्भे ताव तप्यते, लब्धे कथं तप्यते?, उच्यते, अल्पे वा लब्धे, संजत एव, संजतेन निरुपकारिणा को नाम दद्यात्, तदालंबनं तु 'अज्जेवाहं ण लब्भामि' सिलोगो. (७९सू.११७) अस्मिन्नहनि अद्यैव, किं?, मया न लब्धं,यद्यपि तथावि लाभः श्वो भविष्यति, परस्वके सिया, अथवा किमभिप्रेतं?, गुरो! यदि मयोद्धाटं न लब्धं स्थाप्यो निर्जरालाभस्तु मया लब्ध एव अणेसणादि परिहरता, 'जो एवं पडिसंबिक्खे'य एवं प्रति संप्रतिष्ठति रिपोरिवोदीर्णस्य तमलाभकस्स परीसहो तं न तज्जति, यस्तु दैन्यं गत्वा परिदेवति स तेनालाभकपरीसहेणाभिभूयते, लोइयमुदाहरणं–वसुदेवसच्चगदारुगा आसावाहिगा अडवीए निग्गोहपादवस्स अधे रत्तिं वासो गता, जामग्गहणं, दारुगस्स पढमो जामो, कोधो पिसायरूवं काऊण आगतो, दारूगं भणति-आहारपत्थी इहमागतो एते पासुत्ते भक्खयामि, जुद्धं वा देहि, दारुगेण भणितं-बाढं, तेण सह संपलग्गो, दारुगो य तं पिसायं जहा ण सकेति णिहणिउं तहा तहा रूसइ, जहा जहा रूसइ तहा तहा सो कोहो वड्डति, एवं सो दारुगो किच्छपाणो तं जामं णि-

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

व्वाहेति, पच्छा सच्चगं उट्ठवेति, सच्चगोवि तहेव तेण पिसाएण किच्छप्पाणो कतो, ततीए जामे बलदेवं उट्ठवेति,(चउत्थे वासुदेवं उट्ठवेति) वासुदेवो (बलदेवो वासु) देवोऽवि तेण पिसाएण तहेव भण्णति, वासुदेवो भणाति-ममं अणिज्जित्तुं कहं सहाए खाहिसि ?, जुद्धं लग्गो, जहा जहा जुज्झते पिसाते तहा तहा वासुदेवो आह-अतिवतसंपन्नो अयं मल्लो इति तुस्सते. तहा तहा पिसाओ परीहियादि,सो तेण एवं खतितो जेण घित्तुं उवाङ्कियाए छूढो, पभाते पस्सते तिन्निवि ते भिन्नजाणुकोप्परे, केणंति पुट्ठा भणंति-पिसाएण, वासुदेवो भणति-से एस कोऽवि पिसायरूवधारी मया पसंतयाए जितो, उवड्डियाओ णीणेऊण दरिसितो, एस अलाभपरीस्सहो गतो, जेण जेतव्वो एत्थ सुयगद्दुदाहरणं पुरेति, पुराणिबद्धस्स तत्थ गाहापच्छद्धं 'किसिपारासरढंढो अलाभए होइ आहरणं (११४-११८) एगंमि गामे पारासरो णाम, तम्मि य अन्नेवि पारासरा अत्थि, सो पुण किसो तेण किसीपारासरो से णामं, अहवा किसीए कुसलो तेण किसीपारासरो, सो तंमि गामे आगत्तियं राउलियं चारिं वाहावेति, ते य गोणादी दिवसं छातेल्लया भत्तवेलं पडिच्छंति, पच्छा ते भत्तेऽवि आणीते मोएउकामे भणति-एक्केक्कं हलयं देह तो पच्छा भुंजहा, तेहिंवि छहिं हलसएहिं वाहिता, तेण तहिं बहुयं अंतराइयं बद्धं, मरिऊणं सो संसारं भमिऊणं अण्णेण सुकयविसेसेण वासुदेवस्स पुत्तो जातो ढंढो नाम, अरहतो अरिट्ठनोमिसामीसगासे पव्वइतो, तं अंतराइयं कम्मं उदिन्नं, फीताए बारवतीए हिंडंतो न लब्भइ कहिंचि, जदावि लब्भति तयावि जं वा तं वा, तेण सामी पुच्छितो, तेहिं कहितं-जहावत्तं, पच्छा तेण अभिग्गहो गहितो, जहा मे परस्स लाभो न गिण्हियव्वो, अण्णया वासुदेवो पुच्छति तित्थगरं—एतासिं अट्ठारसण्हं समणसाहस्सीणं को दुक्करकारओ ?, तेहिं भणितं-जहा ढंढो अणगारो, अलाभकपरीसहो कहितो, सो कहिं?, सामी भणति—णगरिं पविसंतो पिच्छिहिसि, दिट्ठो पविसंतेण, हत्थिखंधाउ उत्तरिऊण वंदितो, ॥ ७६ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||७६-७९||

दीप अनुक्रम [७७-८०]

रोग परीषहः

सो एक्केण इब्भेण दिट्ठो, जहा महप्पा एसु जो वासुदेवेण वंदितो, सो य तं चेव घरं पविट्ठो, तेण परमाए सद्धाए मोयगेहिं पडिलाभितो, भमिऊण सामिस्स दावेति, पुच्छइ य–मम अलाभपरीसहो खीणो?, सामिणा भण्णति-ण खीणो, एस वासुदेवस्स लाभो, तेण परलाभं न उवजीवामित्तिकाउं अमुच्छितस्स परिट्ठावेंतस्स केवलनाणं उप्पन्नं, अधियासेतव्वो अलाभपरीसहो जहा ढंढेण अणगारेण ॥ इदाणिं रोगपरीसहो—'णच्चा उप्पतितं दुक्खं' सिलोगो (८० सू० ११९) उत्पत्तिअं रोगं दुक्खं वा, स तु रोगो वातिकः पैत्तिकः श्लेष्मजश्चेति, वेद्यंत इति वेदनाः ताभिर्वेदनाभिः आर्तीकृतः वेदनादुहट्टितो 'अदीणो' न दीयते स्म, तिष्ठाति काचित्, प्रज्ञायतेऽनयेति प्रज्ञा, स्पृष्टवान् पुट्ठो, 'तत्थे' ति तत्थ वेदनायां (अध्यासीत) अथवा अदीनतां थापयति प्रज्ञा, अथवा प्रज्ञालक्षणं ज्ञानमागमस्य हि फलं॥ कथं अधियासितं भवति? 'तेइच्छिन्नाभिणंदिज्जा' सिलोगो (८१ सू. १२०) चिकिस्सितं चिकित्सा रोगप्रतीकार इत्यर्थः, अभिमुखो नन्दते आभिनंदते, सम्यक् तिष्ठते संचिक्खे, ण कूजति कक्करायति वा, आत्मानं गवेषयतीत्यात्मगवेषकः चरित्रात्मानं, चारित्रात्मनि गवेष्यमाणे द्रव्यात्मापि गविष्ट एव, न परित्यक्त इत्यर्थः, स्यात्कथं?, **एवं खु तस्स सामण्णं** एतदिति प्रत्यक्षः, श्रमणभावः श्रामण्यं, यदुत्पन्नेषु तत्प्रतिकारायोद्यमं न कुरुते, तंत्रमंत्रयोगलेपादिभिः स्वयं करणं, न स्नेहविरेचनादिना स्वयं करोति, कारापणं तु वैद्यादिभिः, शक्यं हि निरोगेण श्रामण्यं कर्तुं, यस्तु रोगवानपि न सावद्यक्रियामारभते तं प्रतीत्योच्यते- एयं खु तस्स सामन्नं, जहा केण ण कतं? केण वा ण काराविंयं?, भिक्खाए ओसहं दिन्नं, जहा कालासवेसियपुत्तस्स, तत्थ गाहा—'महुराए कालवेसिय' (२१५-१२०) गामे महुराये जियसत्तुरण्णो काला णाम वेसिया, पडिरूवत्तिकाउं ओरोहे छूढा, तीसे पुत्तो कालाए कालवेसिउत्ति कुमारो, सो तहारूवाण थेराण अंतिए ॥ ७७ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||८०-८१|| दीप अनुक्रम [८१-८२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ७८ ॥

तृणस्पर्श परीषहः

धम्मं सोऊण पव्वइतो, एगविहारपडिमं पडिवन्नो, गतो मुग्गसेलपुरं, तस्स सद्धिं भगिणी हतसत्तुस्स रण्णो महिला, तस्स साधुस्स अंसिया उवलंबंति, सो य तिगिच्छं ण कारवेति सावज्जेति, पच्छा तीसे भगिणीए वेज्जो पुच्छितो, तेण केचिद्दव्वसंजोगा संजोएऊण सा भणिया—आहारेण से सयं देज्जाहि, तो भिक्खाए समं दिण्णं, ताहे ताओ अंसियाओ पडिवद्धा गंधेण चेव, पच्छा सो चिंतेइ—मम णिमित्तेण राया भगिणी विज्जा य आरंभंति, किं मम जीविएण?, भत्तं पच्चक्खामि मुग्गसेलसिहरे, तेण कुमारत्ते रत्तिं सियालाण सद्दं सोउं पुच्छिता ओलग्गगा-के एते जेसिं सद्दो सुव्वति ?, ते भणंति-एते सियाला अडविवासिणो, तेण भण्णति-एतं मम बंधिऊण आणेह, तेहिं सियालो बंधिऊण आणीतो, सो तं हणति, सो हम्मंतो खिक्खियाति, तत्थ सो रतिं विंदइ, सो सियालो साहम्मतो मओ, अकामनिज्जराए वाणमंतरो जातो, तो वाणमंतरेण सो भत्तपच्चक्खाओ दिट्ठो, ओहिणा आभोतित्ता इमो सोत्ति आगंतूण सपेल्लियं सियालिं विउव्विऊण खिखियंतो खाति, राया तं साधुं भत्तपच्चक्खाययंतिकाउं रक्खावेति पुरिसेहिं, मा कोइ से उवसग्गं करेस्सइत्ति, जाव ते पुरिसा तं ठाणं एति ताव ताए सियालीए खइओ, जाहे ते पुरिसा ओस्सरेन्ता होंति ताहे सद्दं करेंती खाइ, जाहे आगता ताहे न दीसइ, सोऽवि उवसग्गं सम्मं सहति खमति, एवं अहियासेयव्वो, रोगपरीसहो सोलसमो समत्तो ॥

इदाणिं तणफासपरीहो—तृणानि स्पृशंतीत्यतो तणफासपरीसहो—'अचेलगस्स' सिलोगो (८२ सू. १२१) नास्य चेलमस्तीति अचेलः अतस्तस्य अचेलगस्स, 'लूहस्स' त्ति रूक्षो बाह्याभ्यन्तरतः, संजतस्य, तपोऽन्वितः तवस्सी, तवस्सिग्गहणं तपोयुक्तस्य हि रूक्षा तनुर्भवति, तस्य चास्तरणविवर्जितस्य आर्द्रभूम्यादिषु 'तणेसु सुयमाणस्स' तरतीति तृणं, तत्तु कुशादि, नतु ॥ ७८ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||८२-८३|| दीप अनुक्रम [८३-८४]

पलालादि, झुसिरैः,तैर्विषमसंधिभिः तीक्खशिखैश्च होज्जा गातविराहणा, गच्छति गत इति वा गात्रं आविराधितं भवति,विविधराइं कृतं विराइतं-पंडरास्तस्य राजयो रूक्षस्योपतिष्ठंति, फालिज्जंति य दब्भेहिं, स्निग्धगात्रस्य हि पंडरा रेखा न भवंति, हिणिल्ल-समाणेहि य ण तहा लंछिज्जति, स ताओ लीहाओ ण संलूसेति समहरवेति, ण वा भीतो तेसिं तणेसु ण सुविज्जा ॥ किंच- तेसु तणक्खएसु गीम्हे सरदि वा 'आतवस्स णिवातेणं' सिलोगो, (सू० ८३-१२१) आताप्यते येन स आतपः, निपतनं निपातः,निपातो नाम स्वेद एव विशेषितः,तेन च निपातेन तृणक्षतेषु पुंडरेसु 'तिउला होइ वेदणा' तुदतीति तिउला वेदना, यं च सह [मान]माणे सोढो तणफासपरीसहो भवति, नतु भयमानस्य,'एवं णच्चा ण सेवंति तंतुजं' एवं-इमं उपदेसं अथवा एवमपि ज्ञात्वा वेदणोदयामिमं तथावि अक्षुरणट्ठा ण सेवेज्जा तंतुज्जं, तनोत्यसौ तन्यते वा तंतु, तंतुभ्यो जातं तन्तुजं, अथवा तन्यत इति तंत्रं-वेमविलेखनंछनिकादि तत्र जातं तंत्रजं, तनुवस्त्रं कंबलो वा, तं ण सेवंति, जिणकप्पिया जे अचेला, 'तणतज्जिता' तृणाग्रैः विषमैश्च तर्जिता--भर्त्सिता, सा यथा केन सहिता?, एत्थ संथारोत्ति दारं, तत्थ गाथा 'सावत्थीएँ कुमारो' गाथा (११६-१२२) सावत्थीए नयरीए जियसत्तुस्स रन्नो भद्दो नाम कुमारो, सो पव्वइतो, एगल्लविहारी पडिमं ठितो, सो विहरंतो वेरज्जे चारिउत्ति-काउं गहितो, सो बंधावेऊण खारेण तच्छितो, सो दब्भेहिं वेढिऊण मुक्को, सो दब्भेहिं लोहितसंमिलितेहिं दुक्खविज्जंतो सम्मं सहति, एवं सहितव्वं, 'तणफासपरीसहो गतो ॥ इदाणिं जल्लपरीसहो-'किलिन्नगाए मेधावी' सिलोगो (८४ सू० १२२) ॥ ७९ ॥
अस्नातस्य सुक्खेषु तनेसु स्वपतः स्वेदसंबंधात् जल्लेन क्लिन्नः कायो भवति, पठ्यते च- 'किलिट्ठगाते' क्लिष्टो नाम रजोमलपरितापितः स एव किलिट्ठगाए, मेहया धावतीति मेधावी, पतंत्यस्मिन्निति पंकः, पंको नाम स्वेदाबद्धो मलः रजस्तु सर्वशुष्कः,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||८४-८५||

दीप अनुक्रम [८५-८६]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ८० ॥

सत्कार पुरस्कारः

कमढीभूतो जल्लो शुष्कमात्रस्तु रजः, पंकेन वा रएण वा, रज्यत इति रजः, यदा तु पंको भवति तदा न रज इत्यतो विपाके 'घिंसु वा परितापेणं' घिंसु वा नाम ग्रीष्मे, समंततो तापः परितापः, सज्जत इति सादः, अमानोनाः प्रतिषेधे, परिदेवनं नाम सातमाह्वयति, जहा जलाश्रयाः होन्ति नगो वेति, तहा चन्दनोसीरोरक्षीपवायवः, एवं परिदेवति, न परिदेवमानः अपरिदेवमानः॥ स एवं अपरिदेवमानः सातं 'वेदेज्ज निज्जरापेही' सिलोगो (८५ सू० १२३) वेदेज्ज इति अनुगतार्थे, सम्यग् वेदेज्जा सि, नो तस्स पडिकारं करेज्जा सि, किमर्थं वेदेज्ज ?- निज्जरं पेहीति, जल्लं धारयतो हि विउला निज्जरा भवति, एवं निज्जरां पेहमाणो, पेहति अभिलषतीत्यर्थः, 'आयरियं धम्माणुत्तरं' धम्मं ज्ञानं पश्यति चेति वाक्यशेषः, अथवा 'विद ज्ञाने' वेदेज्जा निज्जरापेही, शुद्धनयान् प्रतीत्योच्यते-वेदेज्ज निज्जरापेही, वेदिंतो जाणंतो इत्यर्थः, चरेति धम्मं, अथवा जल्लधारणमेव धर्मं, तं तु 'जाव शरीरभेदाए, यावत्परिमाणावधारणयोः, भिद्यतीति भेदः, जायते लीयते वा जल्लं 'जल्लो काए ण उवट्टे' उद्वर्त्तनमित्यर्थः, किमंग पुण सिणाणादिः, पठ्यते च 'जल्लं काएण धारए' एस दव्वमलो भावमलनिज्जरणत्थं धारिज्जति, न च शक्यते निर्मलं शरीरं कर्तुं, यदि बाह्यवदंतओ, एत्थ दारं 'मलधारणे' त्ति, तत्थ गाहा 'चंपाए' गाहा (११७-१२३) चंपाए सुणंदो णाम वाणियओ, सावओ, आवणाओ चेव जो जं मग्गति साहू तस्स तं देइ ओसहभेसज्जं सत्तुगादीयं च, सव्वभंडिओ सो, तस्सऽण्णता गिम्हेसु साहूणो जल्लपरिदिद्धंगता आवणं आगता, तेसिं गंधो जल्लस्स ताण सव्वदव्वाण गंधे भिंदिउं उव्वरति, तेण सुगंधदव्वभाविएण चिंतितं-सव्वं लट्ठं साहूणं, जति णाम जल्लं उवट्टेंता तो सुंदरं होतं, एवं सो अणालोइयपडिकंतो कालगतो कोसंबीए नयरीए इब्भकुले पुत्तत्ताए आयाओ, णिव्विन्नकामभोगो धम्मं सोऊण पव्वतितो, तस्स तं कम्मं उदिण्णं, दुब्भिगंधो जातो, जतो जतो

॥ ८० ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||८६-८७||

दीप अनुक्रम [८७-८८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ८१ ॥

प्रज्ञा परीषहः

गच्छति तओ तओ उड्डाहो, पच्छा सो साधूहिं भणिओ--तुमं मा निग्गच्छसि, उड्डाहो, पडिस्सए अच्छाहि, रत्तिं देवताए काउस्सग्गं करेति, पच्छा देवताए सुगंधो कतो, से जहानामए कोट्ठपुडाण वा०, पुणोऽवि उड्डाहो, पुणो देवताए आराधणं, सामावियगंधो जातो, तेण णाहियासितो जल्लपरीसहो, एवं णो णाधियासेतव्वं, जल्लपरीसहो गतो ॥ इदाणिं सक्कारपुरक्कारपरीसहो, करणं कारः,शोभनकारःसत्कारः सत्कारमेव पुरस्करोति सत्कारपुरस्कारपरीसहो भवति,स त्वेवं सोढव्यः, स सत्कारः एवंविय'अभिवादण' गाहा (८६ सू० १२४) ' अभिवादणं ' अभिमुखं उट्ठाणं ' सामी कुज्ज ' त्ति राया कुज्जा एताणि, णिमंतणं वस्त्रपात्रलेह्यावसधिभ्योराजाऽमात्यो वा मरुयाणं पासंडीणं वा अण्णं वा सकारं कुज्जा'जे ताइं पडिसेवंति'य इति अणिद्दिट्ठस्स उद्देसे'ताइं' ताणि अभिवादणादीणि प्रतिसेवंति- पडिसेविंति 'ण तेसिं पीहए मुणी' अहो इमे सुहिया राजादिभिः पूज्यंते वयं नेति, कथमस्माकमप्येवंविधा पूजा स्यादिति, स तेसिं अपीहमाणो ' अणुक्कसाय ' गाहा (८७ सू० १२४) ' अणुकसायो ' अणुशब्दः स्तोकार्थः, अतो नेत्यनु, कषयंतीति कषायाः क्रोधाद्याः, न रुष्यत्यपूज्यमानः, न वा मानं करोति, मां लोकः पूर्वे पूजितवान् इदानीं न पूजयतीति ' अमहेच्छ :' अल्पेच्छ इत्यर्थः, न पूजासत्कारमासंशयति, अज्ञातैषी, न ज्ञापयत्यहमेवंभूतः पूर्वमासीत्, न वा क्षपको बहुश्रुतो वेति, आहारोपकरणादिषु अलोलुपः, न लोभ इत्यर्थः, भूयिष्ठत्वादाहारे लोप्यमस्य जंतोर्भवतीतिकृत्वा व्यपदिश्यते 'रासिएसु णातिगिज्झेज्ज'रससहिताणि रसियाणि तेसु रसिएसु णोभिगिज्झेज्ज,अहवा रसेसु णाणुगिज्झेज्जा, रसाइं आर्द्रतादयः स्वस्थानपटवः यदा ये चानुकूलाः तेषु यथा पूर्वं गृद्धवान् तथा न गृध्येत, ये च रसानुत्कृष्टा नाहारयंति लभंति वा परं तत्र 'ण तेसिं पीहए मुणी ' पठ्यते चान्यथा ' नाणुतप्पेज्ज पण्णवं ' वा, यथा मया दुष्टं कृतं इह लब्धिपाषंडे सर्ववैरिणि वा प्रव्रजता, तत्रो-

॥ ८१ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||८८-८९|| दीप अनुक्रम [८९-९०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ८२ ॥

प्रज्ञा परीषहः

दाहरणं 'अंगविज्जं' ति 'महुराए इंददत्तो' गाहा (११८--१२५) अरहंतपइट्ठीताए महुराए नयरीए इंददत्तेणं पुरोहितेणं पासातगतेणं हेट्ठेणं साधुस्स वच्चंतस्स पाओ लंबितो सीसे कउत्तिकाउं, सो य सावएण सेट्ठिणा दिट्ठो, तस्स अमरिसो जातो, दिट्ठो एतेण पावेण साधुस्स उवरिं पादो कतोत्ति, तेण पइण्णा कया- अवस्सं मए तस्स पादो छिंदियव्वो, तस्स छिद्दाणि मग्गति, अन्नया अलभमाणो आयरियसगासं गंतूण वंदित्ता पडिकहेति, तेहिं भण्णति--का पुच्छात्ति, अधियासितव्वो सक्कारपुरक्कारपरीसहो, तेण भणियं--मए पतिण्णा कतेल्लिया, आयरिएहिं भण्णति--एयस्स पुरोहियस्स घरे किं वट्टइ ?, तेण भण्णइ--एयस्स पुरोहितस्स पासादो कतेल्लओ, तं तस्स पवेसणे रण्णो भत्तं कीरति, तेहिं भण्णति-जाहे राया पविसति तं पासादं ताहे तुमं रायं हत्थे गहेऊण अवसारेज्जासि, जहा पासातो पडति, ताहेऽहं पासातं विज्जाए पाडिस्सं, तेण तहा कयं, सेट्ठिणा राया भणिओ--एतेण तुब्भे मारिता आसि, रुट्ठेण रण्णा पुरोहितो सावगस्सेव अप्पितो, तेण तस्स इंदकीले पादो कओ, पच्छा छिन्न एव काउ लोहमआ काऊण सो छिन्नो, इतरो विसज्जितो, तेण णाधियासिओ सक्कारपुरक्कारपरीसहो। इदाणिं पण्णापरीसहो,प्रज्ञायते अनयेति प्रज्ञा, प्रगता ज्ञा प्रज्ञा, प्रज्ञापरीसहो नाम सो हि सति प्रज्ञाने तेण गव्वितो भवति तस्य प्रज्ञापरीषहः, प्रतिपक्षे ण प्रज्ञापरीषहो भवति, अविण्णाणमंतो हि ण अद्धितिं करेंति यथाऽहमविज्ञातवानिति, शक्यं मज्ञानं, दुःखतरं पुनरज्ञानं, सो बुद्धिमिति विचिंतयति, उच्यते कथं ?- 'किं कट्ठं अण्णाणं०' गाथा, तथा चोक्तं 'नैवंविधमहं मन्ये, जगतो दुःखकारणम्। यथाऽज्ञानमहारोगो, दुरंतमतिदुर्जयम् ॥ १ ॥' इति, पण्णाणं जह सहमाणस्स परीसहो भवति तथा अप्रज्ञानमपि सहितव्वं, ततो परीसहो भवति, तद्यथार्थमेवोच्यते 'से णूण मए पुव्विं' गाहा (८८ सू० १२६) से इति पूरणे आत्मनिर्देशे वा, णूणमनुमाये 'मये' ति आत्मन्युपगमे, ॥ ८२ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||८८-८९|| दीप अनुक्रम [८९-९०]

यथा कृतानि कर्माणि पूरयतीति पूर्वं-पूर्वजन्मनि पूर्वं, क्रियंत इति कर्माणि, फलतीति फलं, अज्ञानं फलतीति अण्णाणफला, अज्ञानं फलमेषां, तदुदये सति येनाहं नाभिजानामि, अभिमुखं जानामि अभिजानामि 'पुट्ठो केणति कण्हुई' पृच्छ्यते स्म पृष्टः 'कण्हुयी' सुत्ते अत्थे वा, तत्रालंबनं--एतानि हि प्रज्ञानवध्यानि, मयैतानि प्रागुपात्तानि बध्धानीतिकृत्वा तद्भयात् पुनः प्रज्ञा बाध्यति तं न करिष्ये, यानि पूर्वं बद्धानि तानि 'अथ पच्छा उदेज्जंति' सिलोगो (८९ सू० १२६) अथेत्यव्ययं निपातः पूर्वकृतापेक्षः, किमपेक्षते ?, वेदितव्यं, उक्तं हि--'पावाणं खलु भो कडाणं कम्माणं पुव्विं दुच्चिण्णाणं दुप्परक्कंताणं वेदयित्ता मोक्खो, णत्थि अवेदइत्ता, तवसा वा जोसइत्ता' न च सर्वं बद्धं क्षयमवाप्नोति, प्राप्तकालमुदीयते, यानि तु अवश्यं वेदनीयानि तानि 'अह पच्छा उदिज्जंति' अज्ञानफलानि, तानि सम्यक् सहामीति वाक्यशेषः, यथैवायमेतेषां उदयः प्राप्तः एवं तत्क्षयोऽपि भविष्यतीतिकृत्वा 'एवमस्सासेति अप्पाणं' आश्वासनमाश्वासः आत्मनमात्मना, 'णच्चा कम्मविवागतं' विविधः पाके विपाकः, तत्स्वभावो हि विपाकता तां, अवश्यं हि कर्म्म, चैतन्यवन्तमवश्यमन्वेति इति वाक्यशेषः, अथवा विपाकता णाम विलक्षणंति, पाकानि हि कर्म्माणि यथा कृतानि उच्यंते इति, अत्रोदाहरणं 'सुत्ते' ति, एत्थ गाहा--'उज्जेणी कालखमणो' गाथा (११९--१२७) उज्जेणीए अज्जकालगा आयरिया बहुस्सुया, तेसिं सीसो न कोइ नाम इच्छइ पढिउं, तस्स सीसस्स सीसो बहुस्सुओ सागरखमणो नाम सुवन्नभूमीए गच्छेण विहरइ, पच्छा आयरिया पलायितुं तत्थ गता सुवण्णभूमीं, सो य सागरखमणो अणुयोगं कहयति, पण्णापरीसहं न सहति, भणति-खंता! गतं एयं तुब्भ सुयक्खंधं जावोकधिज्जतु, तेण भण्णति-गतंति, तो सुण, सो सुणावेउं पयत्तो, ते य सिज्जायरणिब्बंधे कहिते तस्सिसा सुवन्नभूमिं जत्तो वलिता, लोगो पुच्छति तं वृंदं गच्छंतं-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||८८-८९||

दीप अनुक्रम [८९-९०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ८४ ॥

ज्ञान परीषहः ॥ ८४ ॥

को एस आयरिओ गच्छति ?, तेण भण्णति--कालगायरिया, तं जणपरंपरेण फुसंतं कोइं सागरखमणस्स संपत्तं, जहा- कालगायरिया आगच्छंति, सागरखमणो भणति--खंत ! सच्चं मम पितामहो आगच्छति ?, तेण भण्णति-मयावि सुतं, आगया साधुणो, सो अब्भुट्ठितो, सो तेहिं साधूहिं भण्णति--खमासमणा केई इहागता ?, पच्छा सो संकितो भणति--खंतो एक्को परं आगतो, ण तु जाणामि खमासमणा, पच्छा सो खामेति, भणति--मिच्छामिदुक्कडं जं एत्थ मए आसादिया, पच्छा भणति-खमासमणा ! केरिसं अहं वक्खाणेमि ?, खमासमणेण भण्णति--लट्ठं, किंतु मा गव्वं करेहि, को जाणति कस्स को आगमोत्ति, पच्छा धूलिणाएण चिक्खिलपिंडएण य आहरणं करेंति, ण तहा कायव्वं जहा सागरखमणेण कतं, ताण अज्जकालगाण समीवं सक्को आगंतु णिगोयजीवे पुच्छति, जहा अज्जरक्खियाणं तथैव जाव सादिव्वकरणं च, पण्णापरीसहो गतो ॥ इदाणिं णाणपरीसहो, सोऽवि जहा पण्णापरीसहो तहा उभयथा भवति, णाणपरीसहो अण्णाणपरीसहो य, तत्थ णाणपरीसहं पडुच्च भण्णति--'णिरत्थयं मि विरतो' सिलोगो (९० सू० १२८) रयात्ति रत्थइ वा अर्थो, नास्य अर्थो विद्यत इति निरर्थकमिति, रतोऽसिलोगो (?) निरर्थके अर्थे, विरतः, विरतिः, पंचप्रकारा, तत्र तु गरीयसी मैथुनाद्विरतिर्येनापदिश्यते 'मेहुणातो सुसंवुडो' सुट्ठु संवुडो, यतः संवृतत्वे सति किं भवति-'समक्खं' णाम सहसाक्षिभ्यां साक्षात् समक्षं तो साक्षात्, अभिमुखं जानामि, ध्रियते स्म धर्मः, स्वभाव इत्यर्थः, कः कल्याणधर्मः? कः पापधर्म ? इति, काणि वा कल्लाणाणि वा कम्माणि काणि वा पावगाणि कम्माणि ?, किमभिप्रेतं?-केवंविधानि कल्लाणफलनिर्वर्त्तकानि कर्माणि येनासौ कल्याणो जायते यैर्वा पापक इत्यर्थः, ताणि वा (न), अर्थतश्च अर्थो विद्यत इति निरर्थकं, मित्ति रतो 'तवोवहाण' सिलोगो (९१ सू० १२८) तप्पत इति तपः, उपधीयत इत्युपधानं, तपोपधानानीत्यर्थः,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९०-९१|| दीप अनुक्रम [९०-९२]

पडिमा नाम मासिकादिता, तपोपधानपूर्वकाः प्रतिमाः पडिवज्जंतो, इतरथावि तपोपधानानि करोमि ग्रामनगराणि च अभ्युद्यतविहारेण विहरामि, तहावि 'एवंपि मे विहरतो' एवं अनेन अप्रतिबद्धविहारेण, छादयतीति च्छद्म:,छादयतीत्यर्थः, नियतं वर्त्तते न निवर्त्तते, ' परितंतो ' गाहा (१२०--१२९) अत्रोदाहरणं---गंगाकुले दोवि साहू पव्वइया भातरो, तत्थेगो बहुस्सुतो एगो अप्पसुतो, तत्थ जो सो बहुस्सुओ सो सीसेहिं सुत्तत्थणिमित्तं उपसंपन्नेहिं दिवसतो विरगो णात्थि, रात्तिंपि पडिऊच्छण सिक्खादीहिं सोवितुं ण लहइ, जो सो अप्पसुओ सो सव्वं रत्तिं सुव्वइ, अण्णया सो आयरिओ निद्दापरिकूलेदितो चिंतेति--अहो अयं साहू पुण्णमंतओ जो सुव्वइ, अम्हे मंदपुण्णा न सुविउंपि लब्भति, एवं नाणपउत्तेण णाणावरणीज्जं कम्मं बद्धं, सो तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिकंतो कालमासे कालं किच्चा देवलोगे उववण्णो, ततोवि चुओ समाणो इहेव भरहवासे आभीरकुले दारओ जातो, कमेण संवड्ढितो, जोव्वणत्थो य विवाहितो, दारिका य से जाता अतिरूविणी, सा य भद्दकन्नगा, अन्नया कयाइ ताणि दोवि पियापुत्ताइं अन्नेहिं आभीरेहिं समं सगडं घयस्स भरेऊण णगरं विक्किणणाए पत्थिताणि, सा कय (भद्द) कन्नगा सारहित्तं सगडस्स करेइ, ततो तं गोवदारगा तीए रूवेण अक्खित्ता तीसे सगडस्स अब्भासयाइं सगडाइं खेडंति, तं पलोएंताणं ताइं सयलाइं सगडाइं भग्गाइं, तीए नामं कयं--असगडा, असगडाए पिता असगडपिता, तस्स तं चेव वेरग्गं जातं, तं दारियं परिणावेऊण सव्वं से घरसारं दाऊण थेराण समीवे पव्वइतो, तेण तिन्नि उत्तरज्झयणाणि जाव अधीताणि, असंखते उद्दिट्ठे तं णाणावरणं उदिण्णं, गता दोवि दिवसा अंबिलछट्ठेण, न आलावगो ठाइ, आयरिएणवि भण्णति--उट्ठिहि, जा ते एयं अज्झयणं अणुण्णवेज्जति, सो भणति-एयस्स केरिसो जोगो ?, आयरिया भणंति--जाव ण उद्देति ताव आयंबिलं, सो भणति--अलाहि मम अणुण्णाएणंति, एवं तेण

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९०-९१||

दीप अनुक्रम [९०-९२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ८६ ॥

ज्ञानानध्यासे स्थूलभद्रः ॥ ८६ ॥

अदीणेण आयंबिलाहारेण बारसहिं संवच्छरेहिं अधिज्जियं असंखयं, उवसंतं, सेसं लहुं चेव अधिज्जितं, एवं पण्णापरीसहो अहियासेयव्वो जहा असगडपिउणा, तप्पडिवक्खे इमं उदाहरणं, एगो थूलिभद्दो नाम आयरिओ बहुस्सुतो, तस्स एगो पुव्वमित्तो आसि सण्णातगोऽवि य, सो तस्स घरं गतो, महिलस्स पुच्छाति--सो अमुगो कहिं गतो ?, सा भणति--वाणिज्जेण, तं च घरं पुव्विं लट्ठं आसि, पच्छा सडितपडियं जातं, तस्स य पुव्वएहिं एगस्स खंभस्स हेट्ठा दव्वं णिहेल्लयं, तं सो आयरिओ नाणेन जाणति, पच्छा तेण तओहुत्तो हत्थं काऊण भण्णति- ' इमं च एरिसं तं च तारिसं ' गाथा (१२२-१३०) इमं च इत्तियं दव्वं, सो य अण्णाणेण भमिति, सो य आगतो, महिलाए सिट्ठं, थूलभद्दो आगतो आसित्ति, सो भणइ--किं थूलभद्देण भणियं ?, सा भणइ-ण किंचि, णवरं खंभहुत्तं दायंतो भणति--इमं च एरिसं तं च तारिसं, तेण पंडितेण णातं, जहा- अवस्सं एत्थ किंचि अत्थि, तेण खतं, णवरं णाणापगाररयणाण भरिता कलसा अच्छंति, तेण णाणपरीसहो णाधियासिओ, एवं ण णाधियासितव्वं ॥ इदाणिं दंसणपरीसहो, ऐहिकामुष्मिकं च तपोफलं अपश्यतः कस्साति दिट्ठिवामोहो होज्ज, तत्रैहिकं क्षीराश्रवभरणादि पारलौकिकं देवेन्द्रादि, तत्सर्वं मिथ्या, एवं दरिसणपरीसहो भवति, स तु अदर्शनपरीषह एवोच्यते, को दृष्टान्तः ?, यथा वध्यमानः साधुर्यदा न क्षुभ्यते तदाऽस्य वधपरीषहो भवति, एवमवश्यं तपोफलानि संति, यो हि दर्शनान्न मुह्यते तस्य दर्शनपरीषहो भवति, तत्रोर्ध्वदेहिकमधिकृत्यापदिश्यते ' णत्थि णूणं परे लोए ' सिलोगो (९२ सू० १३१) कथं ?, यस्मात्तपःफलं प्राप्य देवा इह नागच्छंति, नैव दृश्यंते, इत्यतः परलोको नास्ति, कश्चित्तु जातिस्मरणादिभिः परलोकास्तित्वमभ्युपेत्य इदं न प्रतिपद्यते 'इड्ढी वावि तवस्सिणो' न हि तपस्विनो देवलोकोपपत्तिरस्ति, न चैषां खेचेऽपि सति ऋद्धिरस्ति, न तु परलोकस्याभाव एव धर्म्मफलस्य वा, यत्तु इह

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९०-९१||

दीप अनुक्रम [९०-९२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ८७ ॥

दर्शन-परीषहः

नागच्छंति परलोकादल्पर्द्धित्वात् परायत्तत्वाचेति, यद्येवंविधं परिज्ञानमेव न समस्ति तेषां, यथा वयममुक स्थानादागता इति, यतश्चैवं ततः 'अद्दवा वंचितो मित्ति' अदुवेति अथशब्दः,भो अहं वंचित इति कथं वंचित इति?, न भोगा भुक्ता, न च परलोको अस्ति, धर्मफलं वा विशिष्टं 'इति भिक्खू ण चिंतये', व्यपदिश्यते-' अभू जिणा ' गाथा (९३ सू० १३२) अभू जिणा इति ऋषभादयः, अत्थि महाविदेहे,भविस्संति महापउमादयो,यच्चान्यदेवमिति तत्सर्वं मृषा वदंति अक्खातं,ण य तं एवं,सांप्रतं प्रज्ञापयंति- यथा अभू जिणा, एष तु अजिनकाले परीषहः, एवमन्यदपि यत्परोक्षं जिनोक्तं तदश्रद्धतः दंसणपरीसहो भवति, तत्रोदाहरणं ' ओधाविउकामोऽविय ' गाहा (१२२-१३३) वत्थाभूमीए अज्जासाढा णामायरिया बहुस्सुता, तत्थ गच्छे जो कालं करेइ तं निज्जाविंति, भत्तपडियाइक्खितातो बहुया णिज्जाविता , अप्पाहि ता पज्जवंति , अण्णया एगो अप्पणो सीसो तेण आदरतरेण भणितो–देवलोगाओ आगंतु मम दरिसावं देज्जासित्ति, न य सो आगच्छति, पच्छा सो चिंतेति–सुबहुं कालं किलिट्ठोऽहं, सलिंगेण चेव ओधावति, पच्छा तेण सीसेण देवलोगगतेण ओधाइतो आभोइतो, पेच्छंति ओधावंतं, तेण तस्स पहे गामो विउव्विओ, णडपेच्छा य, सो य तत्थ छम्मासे अच्छितो पेच्छंतो, ण छुहं ण तण्हं कालं वा दिव्वपभावेण वेदेति, पच्छा देवेण तं साहरिउं गामस्स बहिआ विजणे उज्जाणे छ दारए सव्वालंकारविभूसिए विउव्वति, सो चिंतेति--गिण्हामि तेसिं आभरणयाणि. वरं सुहं जीवंतोत्ति, सो एतं दारगं भणति- आणेहि आभरणगाणि, सो भणति--भगवं ! एगं ताव मे अक्खाणयं सुणेह, पच्छा गेण्हेज्जासि, भणति--सुणेमि, एगो कुंभकारो सो मट्टियं खणंतो तडीए अक्कंतो, पच्छा एसो भणति-'जेण भिक्खं बलिं देमि' गाथा (१२३–१३४) एवं भगवं अम्हे धारणत्तया तुब्भे सरणमुवगता, तेण भन्नति–अतिपंडितवादिओऽसि, घेत्तूणा-

॥ ८७ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९२-९३|| दीप अनुक्रम [९३-९४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ८८ ॥

आर्याषाढाः

भरणानि पडिग्गहे छूढाणि,पुढविकायो गतो। इदाणिं आउकाओ बितियओ भणति, सोऽवि अक्खाणयं कहेति, जहा एगो तालायरो पाडलो नाम, सो अन्नया गंगं उत्तरंतो उवरिं वुट्ठोदएण हीरति, तं पासिय जणो भणति-- 'बहुस्सुतं' गाथा (१२४-१३४) पच्छा तेण पडिभणितं गाथा 'जेण रोहंति बीयाणि' गाथा (१२५-१३४) तस्सवि तहेव गेण्हति, एस आउक्कातो॥ इदाणिं तेउक्कातो ततिओ, ताहे अक्खाणयं कहेति-एगस्स तावसस्स अग्गिणा उडओ दड्डो, पच्छा सो भणति-'जमहं दिया य राओ य' गाहा (१२६-१३४) अहवा 'वग्घस्स मए भीएणं, पावगो सरणं कतो। तेण अंगं महं दड्डं, जातो सरणतो भयं (१२७-१३५) तस्सवि तहेव गेण्हति, एस तेउक्काओ॥ इदाणिं वाउक्काओ चउत्थो, तहेव अक्खाणयं कहेति, जहा-एगो जुवाणो घणणिचियसरीरो, सो पच्छा वाएहिं गहिओ, अण्णेण भण्णति- 'लंघणपवणसमत्थो पुव्विं होऊण संपयं कीस ?। दंडलतियग्गहत्थे वयंस! किंनामओ वाही ?। (१२८—१३५) पच्छा सो भणति- 'जेट्ठासाढेसु मासेसु' गाहा (१२९—१३५) अहवा 'जेण जीवंति सत्ताणि, निरोहंमि अनंतए। तेण मे भज्जती अंगं, जातो सरणओ भयं (१३०—१३५) तस्सवि तहेव गिण्हइ, एस वाउक्काओ॥ इदाणिं वणस्सतिकाओ पंचमो, तहेव अक्खाणं कहेइ, जहा एगंमि रुक्खे केसिंचि सउणाणं आवासो, तहिं अंडपेल्लगाणि सयं च अच्छति, पच्छा रुक्खाब्भासातो बल्ली वड्डिता, रुक्खं वेढंती उवरिं विलग्गा, वल्लीअणुसारेण सप्पेण विलग्गिऊण ते पेल्लगा सऊणा य खतिया, पच्छा सेसगा भणंति--' जाव वुच्छं सुहं वुच्छं ' गाहा (१३१—१३५) तस्सवि तहेव गेण्हइ, एस वणस्सतिकाओ गओ॥ इदाणिं तसकायो छट्ठो, तहेव अक्खाणयं कहेति, जहा एगं नगरं परचक्केण रोहिज्जति, तत्थ य बाहिरीयाए हरिएसा, ते अब्भितरएहिं विणिज्जंति, बाहिरि-

॥ ८८ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९२-९३|| दीप अनुक्रम [९३-९४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ८९ ॥

धिग्जाति पुत्रीउदा० छगलोदाहरणं

याए परचक्केण घेप्पंति, पच्छा केणति अन्नेण भण्णति-'अब्भिंतरगा खुभिता' गाथा (१३२—१३६) अहवा एगत्थ णगरे राया सयमेव चोरो, पुरोहितो भंडेति, पच्छा दोवि हरंति, पच्छा लोगो भणति-'जत्थ राया सयंच रो' गाहा(१३३-१३६) अहवा एगस्स धिज्जाइयस्स धूया, सा य जोव्वणत्था पडिरूवदरिसणिज्जा, सो धिज्जाइओ तं पासिऊण तीए धूयाए अज्झोववन्नो, तीसे तणएण अतीव दुब्बलीभवति, बंभणीए पुच्छिओ णिब्बंधेण, कहाति, ताए भण्णति- मा अधितिं करेसि, तहा करेमि जहा केणइ पओगेण संपत्ती भवति, पच्छा धूतं भणति- अम्ह पुव्वं दारियं जक्खा भुंजंति, पच्छा देज्जति, तव कालपक्खचाउद्दसिए जक्खो एहिति, मा णं विमाणेहि, संमाणेहिसि, मा य तत्थ तुमं उज्जोतं काहिसि, तीएवि जक्खकोऊहल्लेण दीवओ सरावेण ठइतो, सो य आगतो, सतं परिभोत्तूण रतकीलत्तो पसुत्तो, इमावि कोउगेण सरावगं फेडिती, णवरं पेच्छति तायं, ताए नायं, जं होउ तं होउ, पुव्वं भुंजामि भोगे, पच्छा ताइं रतिकिलंताइं, उग्गतेवि सूरे ण विबुज्झंति, पच्छा बंभणी भणति- 'आचिरुग्गतए व सूरिए, मागहिया (१३४-१३७) पच्छा सा तीसे धूया तं सुणेत्ता पडिभणति-'तुमए व अम्म ए लवे' मागहिया (१३५-१३७) पच्छा सा धिज्जाइणी भणति 'नव मास कुच्छीइ धालिता' मागहिया (१३६-१३७) अहवा एगेण धिज्जाइतेण तलागं खणावियं, तत्थवि य पालीए देउलं आरामो य कतो, तत्थ य तेण जण्णओ पवत्तितो, छगलगा एत्थ मारेज्जंति, अण्णया य कयाइ सो धिज्जातिओ मरिऊण छगलिओ चेव आयातो, सो य घेत्तूण अप्पणिज्जएहिं पुत्तेहिं तत्थ चेव तलाए जण्णि मारिउं णेज्जति, सो य जातिस्मरो णिज्जमाणो अप्पणोच्चियाए भासाए बोब्बुयति, अप्पणा चेव सोयमाणो, जहा मए चेव पवत्तियं एयं, सो य बुब्बिएमाणो साधुणा एगेण अतिसेसिएण दरसति, तेण भण्णति-'सयमेव य लुक्ख लोविया'

॥ ८९ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९२-९३|| दीप अनुक्रम [९३-९४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २ परीषहाध्ययने ॥ ९० ॥

परीषहाध्ययनोपसंहारः

मागहिया (१३७-१३८) सो तं सोऊण तुण्हिक्को चेव ठितो, तेहिं धिज्जाइएहिं चिंतियं- किमिह पव्वइएणं पढियं तेण एस छगलओ तुण्हिक्को ठितो, ततो साधूणं गंतु भण्णति- किं भगवं ! एस छगलओ तुम्हेहिं पढियमेत्तेहिं तुण्हिक्को ठितो ?, तेण साधुणा तेसिं कहितो सब्भावो, जहा- एस तुज्झ पिया, किं अभिण्णाणं ?, तेण भण्णति- अहंपि जाणामि, किं पुण एसो चेव कहेहिति, तेण छगलेण पुव्वभवे तेहिं पुत्तेहिं समं णिहणयं णिहतं तं गंतूण पाएहिं खलवलेति, एयं अभिण्णाणं, पच्छा तेहिं मुक्को, स साधुसमीवे धम्मं सोऊण भत्तं पच्चक्खाइऊण देवलोगगं गतो, एवं तेण सरणमिति काउं तलागासमे जण्णा पवत्तिआ तमेव से असरणं जातं, एवंविधोऽत्र समवतारः एवं तुब्भे इमे म्हे सरणं गता, तहेव तस्सवि आभरणगाणि घेत्तूण सिग्घं गंतुमाढत्तो पंथे, णवरं संजतिं पासति मढितढिकितां, तेण सा भण्णति- 'कडगा य ते कुंडला' गाथा (१२८-१३८) पच्छा ताए भण्णति-'समणो असि संजतो असि' गाथा (१२९-१३९) एवं ताए उवदिट्ठो समाणो पुणोवि गच्छति, णवरं पेच्छति पुणोवि खंधावारं एंतं, तस्स णिवट्टमाणो डंडियस्सेव सवडिहुत्तो आगतो, तेण हत्थिखंधाओ उरुहित्ता वंदितो, भणितो य- भगवं! अहो मम परं मंगलं निमित्तं च जं साधू मए दिट्ठो, भगवं ! मम अनुग्गहनिमित्तं फासुगेसणिज्जं इमं मोदकादि संबलं घेप्पतु, मम अणुग्गहत्था, सो णेच्छति, भायणेसु आभरगाणि छूढाणि मा दिस्संति, तेण दंडिएण बलामोडिए पडिग्गहो गहितो जाव मोदगे छुभामि, णवरं पेच्छति आभरणगाणि, तेण सो खिज्जितो उवालद्धो य, पुणोवि संबोधितो, पच्छा दिव्वं देवरूवं काऊण वंदिऊण पडिगतो, तेण पुव्वं दंसणपरीसहो णाधियासिओ पच्छा अधियासिओ, दंसणपरीसहो बावीसतिमो समत्तो ॥ ॥ ९० ॥

'एते परीसहा' सिलोगो (९४ सू० १४०) एते जहुद्दिट्ठा सव्वेसिं पुरतो कासवो भगवं वद्धमाणसामी तेण पवेदिता

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९४|| दीप अनुक्रम [९५]

काहिता 'जे भिक्खू ण विहण्णेज्जा' णिहणणा-पराजिणणा 'केणइ'त्ति बावीसाए एगतरेण 'कण्हुवि' त्ति क्वचित्। इति बेमि, णया जहा विणय सुते ॥ परीसहज्झयणं समत्तं २ ॥

एवं परीसहा अधियासेतव्वा इमं आलंबणं काउं जहा दुल्लभा इमाणि चत्तारि परमंगाणि, एतेणाभिसंबंधेण चातुरंगिज्जं आगतं, चउसु अंगेसु हितं- चातुरंगेज्जं, एतस्स चत्तारि अणुयोगदाराणि जहा विणयसुते तहा वन्नेऊण जहा णामनिप्फन्नो निक्खेवो चउरंगेज्जं, दुपदं नाम, चत्तारि णिक्खिवितव्वं, तत्थ एगस्स अभावे कतो चतुट्ठाणं, तेण एगस्सेव णिक्खेवो कायव्वो, तत्थ गाहा- 'णामं ठवणा' गाथा (१४१-१४१) नामठवणाओ गताओ, दव्वेकगं तिविहं, तंजहा- एकं दव्वं सच्चित्तं अचित्तं मीसगं च, सच्चित्तं जहा एगो मणूसो, अचित्तं जहा एगो कारिसावणो, मीसं जहा पुरिसो वत्थाभरणविभूसिओ, मातुपदेकगा उप्पण्णेति विगतेति वा धुवेदि वा, एते तिन्नि दिट्ठिवादे मातुपदा, अथवा इमे मातुगपदा अआइ एवमादि, संगहेकगं जहा दव्वसंचयमुद्दिस्स एगो सालिकणो साली भण्णति, बहवो सालयो साली भण्णति, जहा णिप्फण्णे साली, तं संगहेकयं दुविहं- आदिट्ठं अणादिट्ठं च, तत्थ अणाइट्ठं अविसेसियं, आदिट्ठं णाम विसेसियं, अणाइट्ठं णाम जहा साली सालित्ति, आदिट्ठं कलमो, पज्जविकयं दुविहं आदिट्ठं अणादिट्ठं च, पज्जया गुणादिभेदा परिणति, तत्थ अणादिट्ठं गुणोत्ति, आदिट्ठं वण्णादि, भावेकगमवि आदिट्ठं अणादिट्ठं च, अणादिट्ठं भावो आदिट्ठं उदइओ उवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ, उदइयभावेकगं दुविहं आदिट्ठमणादिट्ठं च, अणादिट्ठं उदयितो भावो, आदिट्ठं पसत्थमप्पसत्थं च, पसत्थं तित्थकरनामोदयादि, अपसत्थं कोहोदयादि, उवसमियस्स खइयस्स अणादिट्ठादिट्ठा भेदा सामण्णविसेसाणमभेदे न संभवति, केइ खयोवसमियंपि एमेव इच्छंति,

एक-कनिक्षेपाः ॥ ९१ ॥

अध्ययनं -२- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -३- "चतुरंगिय" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९४...|| दीप अनुक्रम [९५...]

तं ण भवति, जेण सम्मदिट्ठीण मिच्छादिट्ठीण य खओवसमलद्धिओ बहुधा संभवंति, तासां दुविहाणं चेव, जाओ सम्मदिट्ठीणं ताउ पसत्थाओ, जाओ मिच्छादिट्ठीणं लद्धीओ ताओ अप्पसत्थाओ, पारिणामियभाविक्कयं दुविहं— आइट्ठमणाइट्ठं च, अणाइट्ठं पारिणामियभावो, आदिट्ठं सातियपारिणामिओ य अणादियपारिणामिओ य, तत्थ सातियपारिणामिएक्कगं कसायपरिणयो जीवो कयायी, अणादिपरिणामियएक्कयं जीवो जीवभावपरिणतो सदा एवमादि, इह कतरेण एक्कएण अधिकारो ?, उच्यते, भिन्नरूवा एक्कगा चत्तारि सद्देण संगहिता भवंति, तेण संगहिक्कएण अधिकारो, सुयणाणं भावे खओवसमीए वट्टतित्ति भावेक्कएण अधियारो, दुयादि परूवणावसरे परूवेज्जंति, एवं सेसं परूवितं भवति, तम्हा चउक्काणिक्खेवो, सो सत्तविधो-'णामं ठवणा' गाथा (१४२-१४१) णामचत्तारि ठवणा० दव्व० खेत्त० काल० गणण० भावच०, णामठवणाओ गयाओ, दव्वचउक्के चत्तारि दव्वाणि सचित्ताचित्तमीसगाणि, सचित्ते चत्तारि मणूसा अचित्ते चत्तारि करिसावणा मीसे चत्तारि मणूसा सालंकारा, खेत्ते चत्तारि आगासपदेसा, जंमि वा खेत्ते चउक्को परूविज्जति, काले च ारि समया आवलियाउ वा एवमादि, जंमि वा काले चत्तारि परूविज्जंति, गणणा एक्को दो तिन्नि चत्तारि, भावे एताणि चेव चत्तारि परमंगाणि, एत्थ गणणाचउक्केण अधिकारो, चत्तारित्ति गतं ॥ इदाणिं अंगत्तिदारं, तत्थ गाहा-'णामं' गाहा-(१४३-१४१) णामठवणाओ गताओ, दव्वंगे इमा दारगाहा-'गंधंग ओसंधंगं' गाहा- (१४४-१४१) दव्वंगं छव्विहं, तं०- गंधंगं ओसंधगं मज्जंगं आउज्जंगं सरीरंगं जुद्धंगं, एत्थ एगेगं अपि अणेगप्पगारं, तत्थ गंधंगे इमा गाथा 'जमदग्गि'गाहा (१४५ १४२) जमदग्गिणाम वालओ रिणुगा हरेणुगा चेव संवराणियंसियं णाम तमालपण्णं विण्णियाण मज्झो, मगंगो- गंधद्रव्यं रुक्खतणे मोचायं एताणि मल्लियावासिताणि कोडिं अग्घंति, कोडी-

॥ ९२ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९४...||

दीप अनुक्रम [९५...]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३ चतुरंगीया ॥ ९३ ॥

युद्धांगानिः भावांगानि

ग्रहणमित्युपमा, महार्या अर्यो(र्हो) अथवा इमं गंधंगं 'ओसीर हिरिबेराणं' गाथा(१४६ १४२) उसीरं उसीरमेव हिरिबेरं वालओ भद्रदारुसतपुप्पाणं भागो य तमालपत्तस्स तमालपत्रमेव 'एयं ण्हाणं एयं विलेवणं' गाहा (१४७ १४२) एतं गंधंगं, इदाणिं ओसधंगं 'दो रयणीओ' गाहा (१४८ १४२) दो रयणीओत्ति दारुहरिद्रा पिंडहरिद्रा य- महिंदफलं णाम इंद्रजवा, तिन्नि उसिणंगं इति तिकडुगं, कणगमूलं नाम बिल्लमूलं, उदगओ अट्ठमं, 'एसा हणंतो कंडू' गाहा (१४९ १४२) पूती एसा, गंधंगं गतं। इदाणिं मज्जंगं 'सोलस दक्खा भागा' गाथा (१५०-१४२) कंठ्या, इदाणिं आयोज्जंगं 'एगमुकुंदा तूरं' गाथा (१५१-१४३) एगा एव हि मुकुंदा तूर्यं, यथाभिमारकड्डमगणी य, सरीरंगं 'सीसमुरोय' गाथा (१५२-१४३) कंठ्या, जुद्धंगाणि 'जाणावरण' गाहा (१५२-१४३) जाणं रहे आसो हत्थी य, जदि एताइं णत्थि किं करेउ पाइक्को, लद्धेसुवि जइ आवरणं कवयाई णत्थि तावि ण सेज्झति, सति आवरणे पहरणेण विणा किं सक्का हत्थेहिं जुज्झिउं ?, सति प्रहरणे जति कुसलत्तणं णत्थि णवि जाणति- किध जोद्धातव्वं, सति कोसल्ले णीतिएवि विणा किं करेतु ?, समूहे मारेज्जत्ति अवक्कमणं उवक्कमणं च अयाणंतो, जहा अगडदत्तो दक्खत्तणेण फेडति डेविंति वा, तेसु सव्वेसुवि लद्धेसु जति विवसायो णत्थि णेव जुज्झति अणिव्वेयं, सइवि ववसाए सरीरेण असमत्थो किं करेउ ?, तेणं जाणं आवरणं पहरणं कुसलत्तं णीति दक्खत्तं ववसाओ सरीरमारोग्गं एताणि जुद्धंगाणि ॥ इदाणिं भावंगाणि 'भावंगं विय दुविधं' गाथा (१५४-१४४) भावंगं दुविधं-सुत्तंगं नोसुत्तंगं च, सुत्तंगं बारसंगाणि, णोसुत्तंगं चउव्विहं, तंजहा- माणुस्सं धम्मसुती सद्धा तवसंजमंमि वीरियं च। (१५५-१४४) एते भावंगा दुल्लभया संसारे, तत्थ सरीरदव्वंगस्स इमाणि एगट्ठियाणि-'अंग दस भाग' गाहा (१५६-१४४) अंगंति वा दसत्ति वा भागात्ति वा भेदेति वा ॥ ९३ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९४...||

दीप अनुक्रम [९५...]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३ चतुरंगीया ॥ ९४ ॥

आलस्या-द्यो धर्मविघ्नाः

अवयवेत्ति वा पुण्णेति वा खंडेति वा देसे पदेसा पव्वे साहा पउला पज्जवेत्ति वा खिलेत्ति वा, भावंगस्स इमाणि एगट्ठियाणि 'दया य संजमो' गाहा, दयत्ति वा संजमोत्ति वा दुगुंछा लज्जा छलणा तितिक्खा अहिंसा विरति वा, तत्थ माणुस्सं पढमं अंगं, तं च दुल्लभं, कथं ?- 'माणुस्स खेत्त जाती' गाथा (१५८-१४५) तत्थ माणुसत्तं दुल्लभं इमेहिं दसहिं दिट्ठंतेहिं परूविज्जति, तं०-'चोल्लग पासग' गाहा (१५९-१४५) एसा गाहा जहा सामाइए, एवं आयरियं खेत्तंपि आयरिया जाति कुलं रूवंति आरोग्गं आउगं बुद्धि सवणं धम्मस्स कहणं पियसड्ढा संजमो तंमि य असढकरणं, तं एताणि लोगदुल्लभगाणि, अथवा अन्नपरिवाडीए गाथा, चत्तारि अंगाणि दुल्लभाणि 'इंदियलद्धी णिअत्तणा य' गाथा, भावओ इंदियाणि, लभित्तावि कोइ अणिव्वत्तिएहिं चेव मरति, णिव्वत्तेउंपि केई ण सव्वपज्जत्तीहिं पज्जयत्तं, पज्जत्तएसुंपि पुणरवि उवघातो भवंति कुंटादिभिः, अहवा णिव्वात्तिज्जमाणाणि उवहम्मन्ति वी(थि)रबाहुगअबाहुगजातंबखुज्जादिसु, सव्वनिव्वत्तीएवि खेमं दुल्लभं, खेमो धातं विभवं सुभिक्खं दुल्लभं, अथवा धातं- विभवो, आरोग्गं- विरोगता, सड्ढा- धम्मसद्धा, गहणेत्ति गाहको उवयोगी, अट्ठेत्ति संजमो अट्ठे, अथवा इमेहिं दुल्लभं 'आलस्स' गाहा (१६०-१५१) आलस्सेण साधूणं पासे न अल्लीयति, अहवा णिच्चत्तमपत्तो, मोहाभिभूतो इमंपि कायव्वं तत्थत्ति सुणे न, अहवा अवज्ञा किं एते जाणंतगा हिंडंति ?, अथवा थंभेणं थद्धो ण किंचि पुच्छति, अहवा अट्ठविहस्स मदस्स अन्नयरथंभेण, अहवा दट्ठूण चेव पव्वइए कोहो उप्पज्जति, पमादेण पंचविहस्स पमादस्स अन्नतरेण, अहवा किविणत्ता मा एतेसिं किंचि दायव्वं होहित्ति तेण ण अल्लियति, भएण वा एते णरगतिरियाणि दायंति अलाहि तो एतेहिं सुएहिं, अण्णाणेण वा कुप्पहेहिं मोहिओ इमंमि से ण चेव धम्मसन्ना उप्पज्जइ, अहवा वक्खेवो अप्पणो णिच्चमेव आउलो, कोउहल्लेण णडपेच्छादिसु, ॥ ९४ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९४...||

दीप अनुक्रम [९५...]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३ चतुरंगीया ॥ ९५ ॥

श्रद्धा दुर्लभता

अहवा रमणसीलो वट्टगुलियादीहिं, 'एतेहिं कारणेहिं' गाहा (१६१-१५१) कंठ्या, धम्मंतराइयाण कम्माणं उदएणं दुल्लभं संजमंमिवि वीरियं, सरीरहाणिताए, जो पुण मिच्छादिट्ठी सो पुण धम्मसुतिंपि लद्धूणं ण तं सद्दहति, तत्थ गाथा 'मिच्छादिट्ठी जीवो' (१६२-१५१) मिच्छादिट्ठी उवदिट्ठं पवयणं न सद्दहति, असब्भावं पुण उवदिट्ठं वा अणुवदिट्ठं वा सद्दहाति, जो पुण सम्मदिट्ठी सो उवादिट्ठं पवयणं सद्दहति, असब्भावं पुण अणाभोगेण (गुरुनिओगेण) वा सद्दहेज्जा, तत्थ अणाभोएण अविकोविओ गिण्हिएसु संकितो अन्नेहिं पण्णवेज्जमाणो अप्पणो य दिट्ठिएसु एसो जिणोवएसत्तिकाऊण अविकोविओ सद्दहेज्जा, गुरुणिओगेणंति गिण्हइ (ई)सि सो तं निण्हयदिट्ठिं गुरुणाऽऽणवेज्जितो सद्दहेज्जा, जहा य 'ततेणं तस्स जमालिस्स अणयारस्स एवमाइक्खमाणस्स एवं भास० एवं पण्ण० एवं परूवेमाणस्स अत्थेगतिया समणा णिग्गंथा एयमट्ठं सद्दहंति, तत्थ णं जे य एयमट्ठं ण सद्दहंति ते णं समणं भगवं महावीरं उवसं० विहरंति, तेसु पुण निण्हया इमे 'बहुरय पदेस' गाहा (१६४--१५२) 'बहुरय जमालीपभवा' गाहा (१६५—१५३) 'गंगातो दोकिरिया' (१६६—१५३) एतेसिं जत्थ उप्पन्ना दिट्ठिओ ता इमा णगराओ 'सावत्थी उसभ' गाथा (आव०   ), इदाणिं एतेसिं कालो भण्णति 'चउद्दस सोलस वीसा' गाहाउ दो, इदाणिं भण्णाति- 'चोद्दस वासा तइया' गाथा, अक्खाणयसंगहणी, 'जेट्ठा सुदंसण' गाहा (१६७—१५३) एवं सत्तण्हवि निण्हयाण वत्तव्वया भाणियव्वा जहा सामाइयनिज्जुत्तीए, केइ पुण निण्हए एत्थ आलावगे पडिकहन्ति 'सोच्चा णेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सति' एवं अंगंति गतं, अस्स चतुरंगनिष्फण्णं चातुरंगिज्जं, णामनिप्फन्नो निक्खेवो गतो, सुत्ताणुगमे सुत्तं उच्चारेतव्वं, 'चत्तारि परमंगाइं' सिलोगो (९५सू.१८१) चत्तारीति संख्या, परि(रं)मानं यस्य तत्परमं, अङ्ग्यतेऽनेनेत्यंगं, ॥ ९५ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९५-११४|| दीप अनुक्रम [९६-११५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३ चतुरंगीया ॥ ९६ ॥

परमाणि च तान्यंगानि, अणुत्तराणीत्यर्थः, दुक्खं लभ्यत इति दुर्लभानि, इहेति इहलोके, दिह्यतीति देहं देही-जीवो भवति 'माणुसत्तं सुती सद्धा संजमंमि' मनसि शेते मनुष्यः, श्रवणं श्रुतिः, कस्यासौ?, श्रुतधर्मस्य, श्रद्धानं श्रद्धा, धर्मस्यैव, विराजयत्यनेनैव वीरियं, संजमे वीरियं, संजमे योगकरणमित्यर्थः, तत्र तावत् प्रथमं मानुष्यं, तस्मिन् सति शेषांगाणि स्युरिति, तदपिचापि दुर्लभमेव, कथं ? 'समावण्णाण संसारे' सिलोगो (९६सू.१८१) एगतो आवण्णा समावण्णा, संसरणं संसारः, संसृतिर्वा संसारः, नानार्था भवांतरत्वे सति जायत इति, जननं जातिः, नानागोत्रास्विति हीणमज्झिमउत्तमासु, कहं णाणागोत्तासु संसरति ?, 'कम्मा नाणाविधा कडा' क्रियत इति कर्म्म नामार्थान्तरत्वे सति तद्धीनोत्तरजातिनिर्वर्त्तकं कर्म्म कृत्वा पृथक् पृथक् पुढो अथवा पुणो २ विश्वनामकप्रकारं प्रजायत इति प्रजा, विश्वसा भवंतीति विस्सभंति वा, कथं विस्सं भविस्संति ?, उच्यते. 'एगता देवलोगे' सिलोगो (९७ सू० १८२) एकस्मिन् काले एकदा, दीव्यंत इति देवाः देवानां लोको देवलोकः, नारकानां लोको नारकलोकः, एगता आसुरे काये, अस्यत्यसावित्यसुरः असुराणामयमासुरः, चीयत इति कायः, आहितैः कर्मभिरारोपितैरित्यर्थः, आधितो वा कर्मसु, अथवा कर्मभिः शुभैरशुभैर्देवत्वेऽपि सति उच्चस्थानवान् भवति, अशुभैर्नीचैः स्थानैः, एवं स्थानादिसुखसंविदा यथाकर्मोपगाः, अशुभैरपि आभियोग्यकिल्बिषादिषु सर्वदेवभेदाः यथाकर्मोपगाः ॥ मानुष्यमपि प्राप्य 'एगता खत्तिओ होई' सिलोगो (९८ सू० १८२) क्षतात् त्रायत इति क्षत्रियः, 'चंडो' इति चण्डालः, अहवा सुद्देण बंभणीए जातो चंडालो, वुक्कसो वर्णान्तरभेदः, यथा बंभणेण सुद्दीए जातो णिसादोत्ति वुच्चति, बंभणेण वेसीते जातो अंबट्ठेत्ति वुच्चति, तत्थ निसाएणं अंबट्ठीए जातो सो बोक्कसो भवति, क्षत्रियग्रहणादुत्तमजातयो गृह्यन्ते, चण्डालग्रहणान्नीचजातयः, अथवा वाग्वि-

नरत्व-दौर्लभ्यं ॥ ९६ ॥

आवर्त्त-योनिभ्रमः

भागादिषु अन्येऽपि नीचोत्तमा मानुष्यजातिभेदाः, तिरिएसु 'ततो कीड पतंगो य' कंठ्यं, एवं पृथिव्यादिष्वपि च ' एवमावट्ट-जोणीसु ' सिलोगो (९९ सू० १८३) एवमनेन प्रकारेण, आवर्त्तते यत्र स आवर्त्तः, द्रव्यावर्त्तो नदीसमुद्रादिषु, भावे संसार एव, पुनः पुनर्यथाऽऽवर्त्तते सत्त्वा यथायुषं तामिति योगः, आवर्त्त आवर्त्तस्य वा योनिषु, प्राणनं प्राणः, प्राणा येषां संतीति प्राणिनो, 'कम्मकिव्विसा' इति कम्मेहिं किव्विसा कम्मकिव्विसा, कर्माणि तेषां किल्बिसाणि कर्मकिल्बिसा, त एवं तासु आवर्त्तयोनिषु पर्यटंतोवि ण णिव्विज्जंति संसारे, न इति प्रतिषेधे, निर्वेदनं निर्वेदः, संसरति तासु तासु गतिष्विति संसारः, संसरति वा धावती तासु जातिषु सत्त्वः, सर्वे अर्था सव्वत्था, जे मणुस्सकामभोगोपकारिणः ते सर्वे एव गृह्यंते शब्दादयः, ते च पर्याप्ता तस्य, न चासौ तान् भुंजानो निर्वेज्जते, अप्येवासौ यथा यथा भुंजते तथा तथा प्रतापोऽभिवर्द्धते, एवं संसारिणः संसरंतः संसारे दुःखैः शारीरमानसैरभिभूयमाना न निर्विद्यंते, अप्येव रंजंत एव, कोऽभिप्रायः ?, यतस्तत्प्रतिघाताय नोद्यमंते, अथवा 'सव्वत्थ खत्तिय'त्ति सर्वैः कामैर्यस्यार्थः स सर्वार्थः, स हि भ्रष्टराज्यः, तस्याज्ञा वितथा, यो राजा, कामैः सर्वैरेवार्थः, स च तान् प्रार्थयन् न निर्विद्यते, एवमसावपि संसारी संसारे दुःखाभिभूतः संसारसुखान्येव प्रार्थयेत्, न तैः प्रार्थनासुखैर्निर्विद्यते, ते एवं संसरंतः ' कम्मसंगेहिं संमूढा ' सिलोगो (१०० सू० १८३) सज्यते यत्र स संगः, पंकादयो द्रव्यसंगः, कामसंगस्तु काम-भोगाभिलाषः, अथवा सर्वे एव कर्मसंगतैः कर्मसंगैः संमूढाः, समस्तं मुह्यतेऽस्मात् संमूढा, दुःखमेषां जायते दुःखिता, वेद्यंत इति वेदनाः शरीराद्या बहवो वेदना, अथवा अत एव दुःखिता येन बहुवेदना, अथवा क्षुत्पिपासाद्येव बहवो वेदना, 'अमाणुसासु जोणीसु' मानुषाणामियं मानुषी न मानुषी अमानुषी, नियतं निश्चितं वा हन्यते निहन्यते, विशेषेण वा हन्यते,'कम्माणं तु पहाणाए'

॥ ९७ ॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९५-११४|| दीप अनुक्रम [९६-११५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३ चतुरंगीया ॥ ९८ ॥

नरत्वादि-दौर्लभ्यं

सिलोगो (१०१ सू० १८३) तु विसेसणे, किं विसेसयति ?, तेषां मानुसजातिनिर्वर्तकानां कर्मणां प्रहीयत इति प्रहाणा, आनुपूर्वी नाम क्रमः तया आनुपूर्व्या, प्रहीयमाणेषु मनुष्ययोनिघातिषु कम्मेसु निर्वर्त्तकेषु वाऽऽनुपूर्व्येण उदीर्यमाणेसु, कथमानुपूर्व्या उदीर्यते ?, उच्यते, उक्कडुंते जहा तोयं, अहवा कम्मं वा जोगं व भवं च आयुगं वा मणुस्सगतिणामगोत्तस्स कस्मिंश्चित्तु काले कदाचित्, तु पूरणे, न सर्वदेवैत्यर्थः, 'जीवा सोधिमणुप्पत्ता' शुद्ध्यते अनेनेति शोधिः तदावरणीयकर्मापगमादित्यर्थः, मनुष्यभवो मानुष्यं तमपि च 'माणुस्सं विग्गहं लद्धुं' सिलोगो (१०२ सू० १८४) विगृह्यतेऽनेनेति विग्रहः, स च यथा दुर्लभः तथा चोक्तं चोल्लगपासकादिभिः, इदानिं द्वितीयमंगं सुति, धम्मस्स श्रवणं श्रुतिः श्रूयते वा, ध्रियते वा धारयतीति वा धर्मः, दुःखेन लभ्यते इति दुर्लभः, आह- श्रवणादस्य किं भवति ?, उच्यते, 'जं सोच्चा पडिवज्जंति' यं इति अनिर्दिष्टस्य निर्देशः 'सोच्चा' श्रुत्वा प्रतिपद्यन्ते, तवो बारसविधो, खंतिग्गहणेन दसविधो समणधम्मो गहितो, अहिंसागहणेण पंच महव्वयाणि ॥ 'आहच्च सवणं लद्धुं' सिलोगो (१०३ सू० १८४) आहच्च णाम कदाचित्, कस्य श्रवणं ?, धर्मस्य, श्रद्धा, संयमोद्यम इत्यर्थः, परमदुर्लभा नास्मात्परं किंचिदप्यन्यत् दुर्लभं परमदुर्लभा, कथं तर्हि ?, विषयतृषिता हि विला (सिनः) 'सोच्चा णेआउयं मग्गं' नयनशीलो नैयायिकः, यं श्रुत्वापि बहवो सर्वतो परिभ्रश्यन्ते, केचित्तावत् दर्शनादपि परिभस्संति, केचित् श्रद्धानात्, अथवा सर्वतो भ्रश्यंते जहा णिण्हवा, येऽपि न भ्रश्यंते तेषामपि 'सुतिं च लद्धुं' सिलोगो (१०४ सू० १८४) ॥ ९८ ॥ विरायते येन तं वीरितं भवति, च पुनर्विशेषणे, सर्वदुर्लभं हि संजमवीरियं शेषेभ्यः, अथवा पंडितवीरियामिति विशेष्यते, कुतः ?, जओ 'बहवे रोयमाणावि' केवलं रोचमाना एव सम्यग्दर्शने वर्तंते, न तु चरित्रं प्रतिपद्यन्ते, एवमियं सामग्री

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९५-११४||

दीप अनुक्रम [९६-११५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३ चतुरंगीया ॥ ९९ ॥

श्रद्धा-दौर्लभ्यं शोधि-महिमा

दुर्लभा, एकैकस्य चारित्रलाभाद्युपाये चोल्लगादयो वक्तव्याः, अथैषा सामग्री कथं भवति ?, उच्यते, एकैकावरणकर्मप्रहाणतः, 'माणुसत्तंमि आयातो' सिलोगो (१८५ सू० १८५) कंठ्यं, 'तवस्सी वीरियं लद्धुं' तत् तपस्वीवीरियं लब्ध्वा सम्यग् वृत्तः संवृत्तः संयत इत्यर्थः, सुसंवृतात्मा तपोवीर्येण स क्षिपेद्रज इति संक्षिणुयादित्यर्थः। स्यात्-कथं संवरो भवति?, उच्यते, भावशुद्धितः, येनापदिश्यते'सोधी उज्जुअभूतस्य'सिलोगो(१०६सू.१८५)शोधनं शुद्धिः,अर्जतीति ऋजुभूतः,तद्गुणवतस्तु धर्मशुद्धिः,तप्यते शुद्ध्यते शोभना वा शुद्धिः तिष्ठति, नावगच्छतीत्यर्थः, अशुद्धस्य हि अशोधितमलस्येवातुरस्य न शोभिर्भवति, स एवं भावशुद्धसंवरवानिहैव 'णिव्वाणं परमं जाति'निर्वृत्तिर्निर्वाणं,परमं णाम न तेन मुक्तिसुखेनात्रत्यं संसारसुखं तुल्यमत्थि कहापि, दार्ष्टांतिकोऽर्थः न शक्यते दृष्टान्तमंतरेणोपपादयितुं, एकदेशेनोपनयः क्रियते, जहा'घतसित्ते व पावए'जघार्त्ति घरत्ति वा घतं, पावं व हव्वं सुराणं पावयतीति पावकः, एवं लोइया भणंति, वयं पुण अविसेसे दहण(ण दहे)इति पावकः, यथा घताभिषिक्तः पावकः परां निर्वृत्तिमाप्नोति तथाऽसावृजुभावोऽपि इहैव तावत् विशुक्तामृतपानेन निर्वृत्तिमाप्नोति च, उक्तं हि- 'नैवास्ति राजराजस्य तत्सुखं नैव देवराजस्य। यत्सुखमिहैव साधोर्लोकव्यापाररहितस्य ॥ १ ॥ स्यात्-कथं जायते निर्वृत्तिः पावकस्य घृतेनेति ?, उच्यते, येन तृणतुषपलालकारीषादिभिरींधनविशेषैरिंध्यमानो न तथा दीप्यते यथा घृतेनेत्यतोऽनुमानात् ज्ञायते यथा घृतेनाभिषिक्तोऽधिकं भाति, तथा निर्माणस्य घृतेंधनादिकमेव, न तणा, पठ्यते 'घतसित्तेव पावए', नागार्जुनीयास्तु पठंति एवं 'चतुद्धा संपदं लद्धुं, इहैव ताव भायते। तेयते तेयसंपन्ने, घयसित्ते व पावए ॥१॥ एतत्तावदिहैव फलं चतुरंगस्य, पारलोकिकं तु 'विकिंच कम्मुणा' सिलोगो, (१०७ सू० १८६) अथवा अयमुपदेशः- स एवं निर्वृतात्मा विकिंच कम्मुणा हेउं, विचिर् पृथक्भावे, पृथक् कुरुष्व. अहवा विगिंचेति उज्झित इत्यर्थः,

॥ ९९ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९५-११४||

दीप अनुक्रम [९६-११५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३ चतुरंगीया ||१००||

शीलवैषम्यं

हिनोतीति हेतुः, कर्महेतुरिति कर्मनिदानं, रागाद्याः कर्महेतवः, अथवा मिथ्यादर्शनाविरतिमादि, यमो नाम संयमः तं संयमं चिराहि, केण ?, 'खंतीए' क्षमणं क्षान्तिः आदिग्रहणात् दशप्रकारः श्रमणधर्मः, स एवं यशस्वी विकिंच कर्माणि 'पाढवं शरीरं हिच्चा' पुढवीए भवं पाढवं, तत्र पृथति पृथते वा तस्यामिति पृथिवी, पृथिव्यां भवं पार्थिवं, वैशेषिकसांख्यानां हि पार्थिवं शरीरं, चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनादि आकाशाप्तेजोवायुराज्योतिश्च, स्वसमयासिद्धितोऽपि- पार्थिवमिव पाढिवं, तद्धि शैलेशीं प्राप्तस्य भगवतः शैलभूतं भवति, स च पार्थिवः शैल इत्यतः पाढवं शरीरं हित्वा, येऽपि न निर्वान्ति तैरपि संलिहितात्माभिः तदुत्सृष्टं पृथिवीतुल्यं भवतीत्यत पाढवं शरीरं हित्वा, अथवा सुखदुःखविकल्प(विकल)त्वात् पाढवं शरीरं, उक्तं हि-'पुढवीविव सव्वसहेण भगवता', शीर्यत इति शरीरं, हेत्वा णाम हेत्वा, ऊर्ध्वमिति मोक्षः भृशं क्रमति इति चतुरंगफलमुक्तं ॥ ये पुनः पूर्वकर्मावशेषतः न तत्फलं वाप्नुवंति तेऽपि चतुरंगहेतुकर्मत एव संसारफलमासाद्य 'विसालिसेहिं सीले' सिलोगो (१०८ सू० १०८) समानं सदृशं, न सदृशं विसदृश्यं(शं), रलयोरैक्यमितिकृत्वा, ते हि विशालिसा हि शीलयंति तमिति शीलं, विसरिसाणि, कहं विसदृशानि?, न हि सर्वे तुल्यतपोनियमसंजमा भवंति, उक्तं हि- "जहा जहा णं तेसिं देवाणं तवनियमबंभचेराणि ऊसितानि भवंति, जस्स जारिसं सीलमासि तारिसो जक्खो भवति" यांति क्षयमिति यक्खा, उत्तरुत्तरा णाम तपोविशेषैः स्थानैः रिद्धिसुखसंपदः प्राप्नुवंति, यथा सौधर्मेसाणादी,'महासुक्का व जलंता'शोभत इति शुक्रः चंद्रादित्यग्रहगणादि महाशुक्लाः,प्रत्यक्षत्वाच्च चंद्रादित्यानां न हीनोपमा, केन वाऽन्येनोपमीयंते ?, चयनं चयः, पुनश्च्यवतीति पुनश्च्यवं, न हि तस्मिन् देवलोके, दीर्घायुत्वाच्चैवं मन्यन्ते यथा वयं न च्योष्यामः, अथवा तेषां नित्यसुखसक्तानां चिंतैवेयं न भवति च्योष्यामो वयमिति, 'अप्पिता देवकामानां' सिलोगो(१०९ सू०१८६) ||१००||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९५-११४||

दीप अनुक्रम [९६-११५]

प्रेत्यदर्शांगानि

अर्पितमस्यास्तीत्यर्पितः अर्पितवानित्यर्थः,अर्पितं गमितं दर्शितमित्यर्थः,ते हि पूर्वोक्तपनत(तपोऽव) स्थामिव तपउपनता इव तेषां देवकामानां अर्पिता इव अर्पिता,यथा भवद्भिर्ललयितव्या एते,काम्यंते कमनीया वा कामाः,रोचेत रोचयति वा रूपं, कामतो रूपाणि विकुर्वितुं शीलं येषां ते इमे कामरूपविकुर्विणः, अष्टप्रकारैश्वर्ययुक्ता इत्यर्थः, न चैषामल्पकालिकं सौख्यमित्यतोऽपदिश्यते- 'उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति' ऊर्द्धमध कल्पाः२ तेषु उड्ढंकप्पेसु, अहवा उवरिमेसु कप्पेसु, पूरयतीति पूर्वं, आवर्षतीति वर्षः, बहूणि पूर्वाणि च शतानि च, अप्रत्यक्षत्वात् न पल्योपमसागरोपमानि, क्रियत धर्म्मधारणा, देशकानां च पूर्वायुषं मनुष्यमारभ्य यावद्वर्षशतायुष इत्यतः तत्प्रत्यक्षीकरणार्थमपादिश्यते पुव्वावास सता बहू ।। 'तत्थ ठिच्चा जहा ठाणं' सिलोगो (११० सू० १८७) तत्थेति तस्मिन्निति, यथात्रस्थानमिति इंद्रसामानिकान्यायुष्कत एति, नहि तेषामुपक्रमो अस्तीत्यतःआयुष्कक्खया ओवेंति माणुसं जोणिं उपेत्यायान्तीत्युपेंति, मनुष्यानामियं मानुषी, युवति जुषंति वा तामिति योनिः'से दसंगेऽभिजायति' दशानामंगानां समूहो दशांगं, तद्यथा 'खेत्तं वत्थुं' सिलोगो (१११सू० १८७) चीयत इति क्षेत्रं-ग्रामनगरं, यवादिसस्यानि वा यत्रोत्पद्यन्ते, अथवा(आर्य)क्षेत्रमित्यर्थः,राजगृहमगधाद्यं, वसंति तस्मिन्निति वस्तु. तत्र क्षेत्रं सेतुं केतुं सेतुं केतु वा, सेतुं रहट्टादि, केतुं वरिसेण निप्फज्जते, इक्ष्वादि सेतुं केतुं, अहवा वत्थुंपि सेतुं भूमिघरादि,केतुं यदभ्युच्छ्रितं प्रासादाद्यं, उभयथा गृहं सेतुकेतुं भवति,अथवा वत्थुं खायं ऊसियं खातूसियं, खातं भूमिघरं ऊसितं पासाओ खातूसितं भूमिघरोवरि पासादो, हिरण्णग्रहणेण रूप्यसुवण्णं गहितं, पश्यते तामिति पशु, से सव्वं चउप्पयं गहियं ।। ||१०१||
'दासपोरुसं' दयित इति दासः, पुरे शयने पुरुषः, एते चत्तारिवि खेत्तवत्थुहिरण्णपसवो दासपोरुषं च एकं कामंगखंधं, 'जत्थ से उववज्जति' जेसु जेसु कुलेसु एताणि चत्तारिवि सदा सुचीण्णाणि वत्थू विज्जंति, इतरत्थ हि दुक्खं विभवहीनं स्यात्, किं तर्हि ?,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||९५-११४||

दीप अनुक्रम [९६-११५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||१०२||

भावना-येनासौ गर्भलालितमेव भवति, एकमंगमुक्तं, 'मित्तवं णातवं होइ' सिलोगो (११२ सू० १८७) मज्जति मज्जंति वा तमिति मित्रं मित्रमस्यास्तीति मित्रवान्, ज्ञातका अस्यास्तीति ज्ञातवान्, मित्ता सहवड्ढितादि, णातगता तऽम्मापिइ संबद्धा वा,गूयति इति गोत्रं उच्चागोत्तं राजा राजामात्यो वा, वृणीते वृणोति वर्णयति वा तमिति वर्णः (तद्वान्) रूपवानित्यर्थः,'अप्पातंके महापन्ने' अप्पातंको नाम अरोगः, क्षुत्पिपासाद्या हि नित्यं अनुगता एव शरीररोगाः, आमयास्तु नैवोत्पद्यन्ते, उक्तं हि- 'कच्चित्त्वनारोग्यमतीव मेधा' महती प्रज्ञा यस्य स भवति महाप्रज्ञः, पंडितः इत्यर्थः, अविजातो नाम विनीतः अनुकूल इत्यर्थः, यशस्वी बलवं, एतानि दश 'भोच्चा माणुस्सते भोए' सिलोगो (११३ सू० १८८) अपडिरूवे असरिसे अजेहिं अहाउयं पालित्ता पुव्वविसोहिं पुण बोहिं लभेत्ता ॥ तम्हा 'चउरंगं दुल्लभं मत्ता' सिलोगो (११४सू० १८८) मत्ता णातुं संजमं पडिवज्जिया तवसा धुतकम्मंसे सिद्धे भवति सासते, इतिबेमि । नयाः पूर्ववत् , चातुरंगिज्जं सम्मत्तं ३ ॥

प्रमाद-स्वरूपं

एवं चरणं दुल्लभं जाणेत्ता अप्पमातो कायव्वो, जहा तेसु ण परिभस्साति, तेण इमं पमादऽपमादणामं अज्झयणमागतं, तस्स चत्तारि अणुयोगदारा जाव णामणिप्फन्ने निक्खेवे पमादऽपमादं, पमादे वर्णिते तप्पडिवक्खो अप्पमादो वर्णित एव भवति, सो पमातो चउव्विहो- 'णामं ठवणा' गाथा (१७९-१९० प्र०) तत्थ दव्वपमादो जेण भुत्तेण वा पीतेण वा पमत्तो भवति, जाणि वा अण्णाणि वत्थूणि पमादकर्तृणि णिज्जासगंधर्वआलस्यादीनि, भावप्रसादस्तु आत्मैव प्रमत्तः, स च पंचधा प्रमद्यते ||१०२||
'मज्जं विसय कसाया' गाहा (१८०-१९० प्र०) मज्जपीतस्य हि भावप्रमत्तत्वात् न कार्याकार्यदक्षो भवति, 'कार्याकार्ये ण जानीते, वाच्यावाच्ये तथैव च। गम्यागम्येऽति(वि)मूढश्च, नापेयं मज्जमित्यतः ॥ १ ॥ तथा विषयप्रमत्तोऽपि कृत्याकृत्यानभिज्ञो

अध्ययनं -३- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -४- “असंस्कृत” आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

भवति, कसाएसु विविहं आहणइ हिंसति अक्कोसति कलहसाहसीहोति, णिद्दापमत्तोवि पलीवणगादिसु विणस्सति, इंदियप्रमत्तावि मगादयो विणासं पावेंति, जहा 'सद्देण मिगो', गाहा, एस पमादोऽवि पंचविहो भणिओ, तस्स य पडिवक्खे अप्पमादो, सोऽवि पंचविहो, एस चेव अप्पमादेण भणितव्वो, 'पंचविहो य पमादो' गाहा (१८१-१९१) किंच गतो णामनिप्फण्णो, सुत्तालावगनिप्फण्णो, सुत्तं उच्चारेतव्वं 'असंखतं जीवित मा पमादए' वृत्तं (११५ सू० १९१) संस्क्रियते स्म संस्कृतं, न संस्कृतं असंस्कृतं, यतः पूर्वकृतकारणं कतरतो विनाशमाप्यत् पुनः संस्कार्यते तत् संस्कृतं भवति, यथा छिद्रपटः पुणोवि संविज्जति तुन्निज्जाति इ वा, जं तु विणट्ठं पुण न सक्कति संस्कर्तुं तदसंस्कृतं भवति, यथा घटभेद इत्यादि, अथवा आकाशादीनि वा नित्यद्रव्याणि असंस्कृतानि, तत्थ इमा गाहा 'उत्तरकरणेण' गाहा (१८२-१९४ प्र०) संस्कृतंति वा करणंति वा एगट्ठं, तेण करणेन तमेव निक्खिवतव्वं-'णाम ठवणा' गाहा (१८३-१९४) णामकरणं जस्स करणामिति णामं, अथवा णामस्स णामतो वा जं तं करणं तं णामकरणं, अक्खणिक्खेवो जो जस्स करणस्स आगारविसेसोत्ति, दव्वस्स दव्वेण वा दव्वंमि वा जं करणं तं दव्वकरणंति, तं दुविहं- आगमतो णोआगमतो य, आगमतो जाणए अणुवउत्ते, णोआगमतो जाणगसरीर० भवियसरीर० तव्वइरित्तं, वतिरित्तं दुविहं- सण्णाकरणं णोसण्णाकरणं च, तत्थ सण्णाकरणं अणेगविहं च, जंमि जंमि दव्वे करणसण्णा भवंति तं सण्णाकरणंति, तंजहा- कडकरणं अद्धाकरणं पेलुकरणं एवमादि, 'सण्णा णामंति मती तं णो णामं जमभिहाणं ॥ जं वा तदत्थवियले कीरति दव्वं तु दविणपरिणामं । पेलुकरणादि गहितं तदत्थहीणं ण वा सद्दो ॥ १ ॥ जति ण तदत्थविहीणं तो किं दव्वकरणं जतो तेणं । दव्वं कीरति सद्देण करणंति य करणरूढीओ ॥ २ ॥ इदाणिं णोसण्णाकरणं, तं दुविहं, तं०- पयोगकरणं वीससाकरणं च, विस्स-

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||१०४||

करण-निक्षेपाः

सेति कोऽर्थः ?, वित्ति विपर्यये, अन्यथा भाव इत्यर्थः, स्र गतौ, विविहा गती विश्रसा, तं दुविधं-सादीयं अणादीयं च, अणादीयं जहा धम्माधम्मागासाण अण्णोण्णसमाधाणंति, 'णणु करणमणादीयं च विरुद्धं भण्णती ण दोसोऽयं। अण्णोण्ण-समाधाणं जमिहं करणं ण णिव्वत्ती ॥ १ ॥ अहवा पदपच्चयादुपचारमात्रं करणं, यथा गृहमाकाशं कृतं उत्पन्नकमाकाशं विनष्टं गृहं, गृहे उत्पन्ने विनष्टं आकाशं। इदाणिं साइयं वीससाकरणं, तं दुविहं-चक्खुफासियं अचक्खुफासियं च, चक्खुफासियं जं चक्खुसा दीसइ, तं पुण अब्भा अब्भरुक्खा एवमादि, चक्खुसा जं न दीसइ तं अचक्खुफासितं, जहा दुपएसियाणवि परमाणुपोग्गलाणं एवमादीणं जं संघातेणं भेदेण संघातभेदेण वा उप्पज्जाति तं ण दीसाति छउमत्थेणंति तेण अचक्खुफासितं, बादरपरिणतस्स अणंतपएसियस्स चक्खुफासियं भवति, पयोगकरणं दुविधं—जीवपयोगकरणं अजीव-पयोगकरणं च, होइ पयोगे जीवविवागो, तेण विणिम्माणे सजीवं अजीवं वा पयोगकरणं, तं दुविहं—मूलपयोगकरणं उत्तर-पयोगकरणं, मूलपयोगो णाम मूलं आदिरित्यनर्थांतरं, तत्थ मूले ओरालियादीणि पंच सरीराणि, पयोगकरणं नाम जो निप्फन्नो तो निप्फज्जाति, तं तेसिं चेव उरालियवेउव्वियआहारयाणं तिण्हं उत्तरकरणं, सेसाणं तत्थि, तत्थ मूलकरणं अट्ठ अंगाणि अंगोवंगाणि उवंगाणि य, जहा 'सीसं उरो य उयरं पट्ठी बाहा य दोन्नि उरुया त। ते अट्ठंगाणी पुण सेसाणि तदेवु-वंगाणि ॥ १ ॥ होंति उवंगा अंगुलि णासा कण्णा य जहण्णं चेव, णहदंतमंसकेसु अंगोवंगा एवमादीणि, अहवा इह उत्तर-करणं दंतस्स रागो कंणवड्डणं नहकेसरागो, एवं ओरालियविउव्वियाणि, आहारए नत्थि ताणि, इमं वा आहारगस्स गमणादी इति, अहवा ओरालियस्सेवेगस्स उत्तरकरणविसेसेण ओसहेण वा पंचण्ह य इंदियाणं विणट्ठाणं पुणो वरणा णिरुवहताण वा

||१०४||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

विणासणं एवमादि, तत्थ पुण ओरालियवेउव्वियआहारयाणं तिविहं करणं— संघातकरणं पडिसाडणाकरणं संघातपरिसाडणाकरणं च, दोण्हं सरीराणं संघातणा णत्थि, उवरिल्लाणि दोन्नि अणातीणि, तिन्निवि करणाणि कालओ मग्गिज्जंति, तत्थोरोलियसरीरसंघातकरणं जं पढमसमयोववन्नगस्स, जहा तेल्लि ओगाहिओ छूढो तप्पढमताए आदियति, एवं जीवोवि उववज्जति पढमे समये गेण्हइ ओरालियसरीरपयोगाइं दव्वाइं, ण पुण मुंचति किंचि, परिसाडणाए हि समयो मरणकालसमए, एत्थं च सो मुंचति ण गेण्हति, मज्झिमे काले किंचि गिण्हति किंचि मुंचति, तं च जहण्णेणं खुड्डायभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कोसेणं तिन्नि पलितोवमाणि समऊणाणि, 'दो विग्गहंमि समया समयो संघायणाते तेहूणं। खुड्डागभवग्गहणं सव्वजहण्णो ठिती कालो ॥ १ ॥ उक्कोसो समयूणं जो सो संघातणासमयहीणो। किह ण दुसमयविहूणो ? साडणसमएऽवनीतंमि ॥ २ ॥ भण्णति भवचरिमंमिवि समए संघातसाडणे चेव। परभवपढमे साडणमओ तदूणो ण कालोत्ति ॥ ३ ॥ जति- परभवपढमे साडो णिव्विग्गहतो त तंभि संघातो। णणु सव्वसाडसंघातणाओ समतं विरुद्धाओ ॥ १ ॥ जम्हा विगच्छमाणं विगतं उप्पज्जमाण उप्पन्नं। तो परभवादिसमये मोक्खादाणाण ण विरोहे ॥ ३ ॥ चुतिसमए णेहभवो इह देहविमोक्खतो जहा तीए। जति(तंमि) ण परभवोऽवि तो सो को होउ संसारी ? ॥ ४ ॥ णणु जह विग्गहकाले देहाभावि ट्ठितो परभवो सो। चुतिसमएवि ण देहो ण विग्गहो जति स को होतु ? ॥ ६ ॥ इदाणिं अंतरं, संघातंतरकालो जहण्णगं खुड्डगं तिसमऊणं। दो विग्गहंमि समया ततिओ संघायणासमयो ॥ १ ॥ तेहूणं खुड्डभवं धरिउं परभवमविग्गहेणेव। गंतूण पढमसमए संघातंतो स विण्णेतो ॥ ७ ॥ इदाणिं संघातपरिसाडंतरं, जं ' उभयंतरं जहन्नं समयो निव्विग्गहेण संघातो। परमं सतिसमयाइं ते-

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ अ संस्कृता. ||१०६||

करणाधिकारः

तीसं उदहिणामाई।९। अणुभावितुं देवादिसु तेत्तीसमिहागयस्स ततियंमि। समए संघातातो दुविहं साडंतरं वोच्छं।।१०।। खुड्डगयभवग्गहणं जहण्णमुक्कोसयं च तेतीसं। तं सागरोवमाइं संपुण्णा पुव्वकोडी य।।११।।इदाणिं वेउव्वियस्स-वेउव्वियसंघातो समयो सो पुण विउव्वणादीए। ओरालियाणमहवा देवादीणा।दिगहणंमि।।१२।।उक्कोसो समयदुगं जो समयं वेउव्विय मतो बितीए। समए सुरेसु वच्चति णिव्विग्गहतो य तं तस्स ।।१३।।उभयजहण्णं समयो सो पुण दुसमयवेउव्वियमतस्स। परमतराइं संघातसमयहीणाइं तेत्तीसं।।१४।।वेउव्वियसरीरपरीसाडणकालोवि समय एव । इदाणिं अंतरं, वेउव्वियसरीरसंघातंतरं जहण्णेणं एगं समयं,सो य पढमसमयवेउव्वितमतस्स विग्गहेण ततिए समये वेउव्विएसु संघातेंतस्स भवति,अहवा ततिए समए वेउव्वियमतस्स अविग्गहेण देवेसु संघातेंतस्स,संघातपरिसाडंतरं जहण्णेणं समय एवासौ पुणरवि वेउव्वियमतस्स अविग्गहेण संघाडेंतस्स भवति,साडस्स अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कोसेणं अणंतं कालं,वणस्सतिकालो, इदाणिं आहारयस्स, आहारे संघातो परिसाडो य समयं समं होति। उभयं जहण्णमुक्कोसयं च अंतोमुहुत्तस्स ।।१।। बंधणसाडुभयाणं जहण्णमंतो मुहुत्तमंतरयं। उक्कोसेण अवड्ढं पोग्गलपरियट्टदेसूणं।।२।।तेयाकम्माणं पुण संताणाणादितो ण संघातो। भव्वाण होज्ज साडो सेलेसीचरमसमयंमि ।। ३ ।। उभयं अणाइनिहणं संतं भव्वाण होज्ज केसिंचि । अंतरमणादिभावादच्चंतऽवियोगतो णेसिं ।। ४ ।। जीवमूलपयोगकरणं गतं। इदाणिं जीवउत्तरपयोगकरणं,तत्थ गाहा 'एत्तो उत्तरकरणं'गाहा(१९३-२०१)'संघातणा य' गाथा (१९४-२०१) संघायणाकरणं जहा पडो तंतुसंघातेण णिव्वत्तिज्जति, परिसाडणकरणं जहा संखगं परिसाडणाए णिव्वत्तिज्जति, संघातपडिसाडणाकरणं जहा सगडं संघायणाए य परिसाडणाए य णिव्वत्तिज्जति, ण च संघातो ण च परिसाडो जहा थूणा उड्डा तिरिच्छा वा कीरति, 'अजीवप्पयोगकरणं' गाथा (१९५-२०१) जं जं निज्जीवाणं कीरति जीवप्पयोगयो

||१०६||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

तं तं। वण्णादि रूवकम्मादि वावि तदजीवकरणंति ॥ १ ॥ दव्वकरणं गतं। इदाणिं खेत्तकरणं- 'ण विणा आगासेणं' गाथा (१९६-२०१) खेत्तं आगासं तस्स करणं णत्थि तहावि वंजणतो परियावण्णं, जम्हा ण विणा खेत्तेण करणं कीरति, अहवा खेत्तस्सेव करणं, वंजणपरियावण्णं नाम जं करणेणं अभिलप्पति, अह जहा उच्छुकरणादीयं, बहुधा, सालिकरणं तिलकरणं एवमादि, अथवा जम्मि खेत्ते करणं कीरति वण्णिज्जति वा, खेत्तं करणं आगासेवि, तस्स वंजणपरियावन्नं। इदाणिं कालकरणं 'कालो जो जावतिओ' गाथा (१९७-२०२) कालकरणं जं जावतियकालेण कीरति, जंमि वा कालंमि, एतं ओहेण, अहवेह कालकरणं बवातिजोतिसियगाविसेसेणं घेत्तव्वं, तत्थ चरं सत्तविहं चउव्विहं थिरमवक्खायं, एवं गाथा (१९८-२०३) 'सउणि' गाथा (१९९-२०२) 'पक्खतिधयो दुगुणिता' गाथा। इदाणिं भावकरणं, भावस्स भावेण भावे वा करणंति, 'भावकरणं(च) दुविहं' गाथा (२०१-२०३) 'वण्णरसगंध' गाथा (२०२-२०४) अप्पप्पयोगजं जं अजीवरूवाति पज्जवावत्थं । तमजीवभावकरणं तप्पज्जायप्पणावेक्खं ॥ १ ॥ को दव्ववीससाकरणातो विसेसो इमस्स ? णणु भणितं । इह पज्जयवेक्खाए दव्वट्ठियणयमयं तं च ॥ २ ॥ 'जीवकरणं तु' गाथा (२०३-२०४) जीवभावकरणं दुविधं- सुतकरणं असुतकरणं च, सुतकरणं दुविधं- लोइयं लोउत्तरियं च, एक्केक्कं दुविहं-बद्धं अबद्धं च, बद्धं णाम जत्थ जत्थ सुओवणिबंधो अत्थि, जं एवं चेव पढिज्जति उवरियं ताणि अबद्धं, तत्थ बद्धसुतकरणं दुविधं- सद्दकरणं णिसीथकरणं च, 'उत्तोत्थ सद्दकरणं पगासपाढं च सरविसेसो वा। गूढत्तं तु निसीहं बंधस्स सुतत्थजं अधवा॥१॥'जं लोईयं बत्तीसं अड्डियाओ छत्तीसं पच्चड्डियाओ वा सोलस करणाणि लोगप्पवातबद्धाणि, (अहवा संगामे पंच) तंजहा- वइसाहं समपायं मंडलं आलीढं पच्चालीढं , एताणि पंच लोगप्पवाते सुयकरणे निबद्धाणि, तत्थाऽऽलीढं दाहिणं पायं अग्गतो- ||१०७||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||१०८||

करणाधिकारः

हुत्तं काऊं वामपादं पच्छाहुत्तं ओसारेति, अंतरं दोण्हवि पादाणं पंच पदा, एयं चेव विवरीयं पच्चालीढं, वइसाहं पण्हीउ अब्भंतराहुत्तीओ समसेढीए करेति अग्गिमतले बाहिराहुत्तो, मंडलं दोवि पादे समे दाहिणवामहुत्ता ओसारेत्ता उरुणोवि (तहा) आउंटावेति जहा मंडलं भवति, अंतरं चत्तारि पादा, समपदं दोवि पादे समं निरंतरं ठवेति, आरुहतपवयणे पंच आदेससताणि जाणि अबद्धाणि, तत्थेगा मरुदेवा, णवि अंगे णवि उवंगे पाढो अत्थि जहा मरुदेवा अच्चंतथावरा होऊण सिद्धत्ति, सयंभुरमणसमुद्दे मच्छाण पउमपत्ताण य सव्वसंठाणाणि अत्थि, णवरि वलयागारसंठाणं णत्थि, करडकुरुडाण य कुणालाए तेसिं णिद्धमालूणमूले वसही देवाणुकंपणं, रुट्ठेहिं पण्णरसदिवसेहिं वरिसणं, कुणालाणगरीविणासे ततिए वरिसे सातेते णगरे दोण्हवि कालकरणं, अधे सत्तमपुढवीए कालणरगे गमणं, कुलाणाणगरीविणासणकालातो तेरसमे वरिसे महावीरस्स केवलनाणुप्पत्ती, एवमादि अणिबद्धं, एतं सुतकरणं, णोसुतकरणं दुविधं—जुंजणाकरणं गुणकरणं च, गुणकरणं दुविहं—तवकरणं सजम० च, दोवि विसेसितव्वा, जुंजणाकरणं तिविधं—मणजुंजणाकरणं चउव्विहं मणोसच्चादि, एवं वयीवि, कायजोगो सत्तविधो ओरालियादीओ, एत्थ कतरेणाधिकारो?, उच्यते, दव्वकरणेण, तत्थवि मूलप्पयोगकरणेण, तत्थवि णोसन्नादव्वकरणेन, तत्थवि पयोगकरणेण, तत्थवि जीवपयोगकरणेण, तत्थवि मूलप्पयोगकरणेण, तत्थवि आयुकरणेण, तत्थ गाथा 'कम्मगसरीरकरणेण' गाथा (२०५-२०५) कंठ्या, असंखतंति पदं गतं, जीवितमिति जीवते जीवितवान् जीविष्यति वा, जीवः,आयुःकर्मजीवनाद्धि जीवितं भवति,तत्थेदमायुष्कं कम्मं असंस्कृतं भवति,कोऽभिप्रायः?,नहि जीवितं तुटितं तुन्नीयते वा न शक्यते पुनः संस्कर्तुं छिन्नवस्त्रवदित्युक्तं तम्हा चरित्तंमि अप्पमादो कातव्वो, जीर्यते येनेति जरा, जराभुप- ||१०८||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

नीतो जरोपनीतो येन, यतो न तत्र त्राणं, कोऽभिप्रायः?, न जराप्राप्तस्य पुनर्यौवनं भवति, 'अट्टण उज्जेणिं खलु' सव्वं अक्खाणगं भाणितव्वं, जाव फलहिमल्लेण मच्छियमल्लं निहणावेऊणं णियगं घरं गतो, तत्थ विमुक्कजुद्धवावारो अच्छति, सो महल्लोत्तिकाउं परिभूयते सयणवग्गेण, जहाऽयं संपदं ण कस्सति कज्जस्स खमोत्ति, पच्छा सो माणेण तेसिं अणापुच्छाए कोसंबिं णगरिं गतो, तत्थ वरिसमेत्तं उवरगमतिगतो रसायणमुवजीवति, सो बलड्डो जातो, जुद्धगपव्वते रायमल्लो णिरंगणो णाम तं णिहणाति, पच्छा राया मुणइ, तो मम मल्लो आगंतुएण णिहत्तोत्ति ण पसंसाति, रायाणगे य अपसंसंते सव्वो रंगो तुण्हिक्को अच्छति, ततो अट्टणेण राइणो जाणणाणिमित्तं भण्णति-'सहवड्डुयाण सउणाणं साहह तो नियय सयणयाणं (च।) णिहतो णिरंगणो अट्टणेण णिक्खित्तसत्थेणं ॥ १ ॥ एवं भणियमेत्ते रायणा एस अट्टणोत्तिकाउं तुट्ठेण पूइतो, दव्वं च से पज्जावइओ, आभरणयं देण्णं, सयणवग्गो य एतं सोउं तस्स सगासमुवगतो, पायवडणमादीहिं पत्तियाविओ, दव्वलोभेण अल्लियावितो, पच्छा सो चिंतेति-मम दव्वलोभेण अल्लियावेंति, पुणोवि ममं परिभविस्संति, जरापरिगतो बाढं ण पुण सुमहल्लेणावि पयत्तेण सक्किस्सं जुवा काउं, तं जावहं सचेट्ठो ताव पव्वयामित्ति संपधातुं पव्वइतो, एवं जरोवणीतस्स णत्थि ताणं भवति 'एवं वियाणाहि जणे पमत्ते' एवमित्यवधारणे, नेत्र जरोवणीतस्स हुऽत्थि ताणं, जरया वा उवणीतस्स स्वं विषयमिति, अथवा एवमित्यनुमाने, केनानुमिनोति?, जहा सो नलदामो चाणक्केण घातितो सपुत्रदारं चोरान् घादित्वा, एवमेव जणोवि, आयारमरमत् परलोगनिरवेक्खो पुव्वभणिएहिं पमादेहिं प्रमत्तवान् प्रमत्तः, प्रमादवानित्यर्थः, विविधं जानिहि विशेषेण वा जानीहि, किमिति परिप्रश्ने, नु वितर्के, कतरानं कण्णु, विविधं हिंसंतीति विहिंसा, 'अजता गहिन्ति' न यता अयता असंजता इत्यर्थः, गहितो गृह्णंति गृह्णिष्यंति वा तामिति, ||१०९||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||११०||

धनं न त्राणाय

विहिंसो काइं गिण्हिस्संतित्ति गमिष्यंति वा, कहिं गच्छिस्संति त विहिंसा ?, अथवा जरोवणीतस्स हु णत्थि ताणमिति, एवमवि जाणेमाणो न जराप्रहाणायोद्यतो,केवलं हिंसादिपमुखकम्मेसु पव्वंतो (पमत्तो),एवं(अ)संताणुकंपणं विहिंसा,स्यादेतत्-कथमयमेवंमनाः?, तत उच्यते 'जे पावकम्मेहिं' वृत्तं (११६—२०६) जे इति अणिद्दिट्ठस्स णिद्देसे, पातयते तमिति पापं, क्रियत इति कर्म, कम्माणि हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादीनि, धणं हिरण्णसुवण्णादीणि, समस्तमादीयंति समादीयंति, गृह्णंतीत्यर्थः, अशोभना मतिः अमतिः, यथा अशोभनं वचनमवचनं, कथं ?, प्राणिनां निरपेक्षत्वात् निस्तृंशो निरनुक्रोशो त्यक्तपरलोकभयः, एवंविधां अमतिं गृहीत्वा, अथवा णत्थि परलोगे णत्थि सुक्कडदुक्कडाणि कम्माणित्ति, पठ्यते च 'अमयं गहाय' अशोभनं मतं अमतं अवचनवत्, अथवा अमृतमिव गहाय, अमृतेनेवार्थः संगृह्यते इत्यर्थः, तमेवं धणमुवज्जिणिऊणं 'पहाय ते पास पयट्टिए नरे' भृशं हिच्चा अपहाय कृत्स्नमित्यर्थः, पस्सत्ति श्रोतुरामंत्रणं, त इति पावकर्मिणो, पयट्टिते पवृत्ते, तत्तु (न तु) सुहं, 'णरे' इति पुरुषस्याख्या, वेरेणं णासकत्वं अनुगता अनुमता अनुबद्धा इत्येकोऽर्थः णरगं उवेंति-णरगं-गच्छंति, अत्रोदाहरणं 'जे पावकम्मेहिं धणं मणुस्सा' इति- एगंमि णगरे एक्को चोरो, सो रत्तिं विभवसंपन्नेसु घरेसु खत्तं खणिउं सुबहुं दविणजातं घेत्तुं अप्पणो घरेगदेसे कूवे सयमेव खाणित्ता तत्थ दव्वजातं पक्खिवति, जाहिच्छितं व सुंकं दाऊण कण्णगं विवाहेउं पसूतं संतिं उद्दवेत्ता तत्थेव अगदे पक्खिवति, मा मे भज्जा अवच्चाणि वा परूढपणयाणि हंतूण रयणाणि परस्स पगासेस्संति, एवं कालो वच्चति, अण्णता तेणेगा कण्णगा विवाहिता अतीव रूविणी, एसा पसूता संता तेण ण मारिता, दारगो से अट्ठवरिसो जातो, तेण चिंतियं— अतिचिरकालं विधारिता, एयं पुव्वं उद्दवेउं पच्छा दारयं उद्दविस्संति तेण सा उद्दवेउं अगडे पक्खित्ता, तेण दारगेण गेहातो ||११०||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||१११||

णिगच्छिऊणं कहा (धाधा) कया, लोगो मिलितो, तेण भण्णति- मे माता मारितत्ति, रायपुरिसेहिं सुतं, तेहिं गहिओ, दिट्ठो कूवो दव्वभरितो, अट्ठियाणि य सुबहूणि, सो बंधेऊण रायसगासे समुवणीतो, जायणापगारेहिं सव्वं दव्वं दवावेऊण कुमारेण मारितो, एवं पहाय ते पास पयट्टिते णरे, एवं वणिजादयोऽपि कल्कादिविर्देन (भिर्धनं) उपार्ज्य तत्प्रहाय परलोके वैरिविघातमाप्नुवंति, न केवलं परलोके चेव ते दुक्खाइं पावंति, इहंपि ते दुक्खाइं पाविंति, दिट्ठंतो 'तेणे जहा संधिमुहे गहीते' वृत्तं (११७-२०७) स्त्यायत इति तिण्णं, येन प्रकारेण यथा, संधानं संधिः, क्षेत्रमुखमित्यर्थः, अत्रोदाहरणं—एगंमि णगरे एगो चोरो, तेण अभिज्जतो घरगस्स फलगचितस्स पागारकविसीसगं खणितुं खत्तं खतं, खत्ताणि य अणेगागाराणि कलसागिति-णंदियावत्तसंठितं(ताणि) पयुमामि(सुमागि)ति पुरिसाकिति वा, सो य तं कविसीसगसंठितं खत्तं खणंतो धणसामितेण विन्नातो, ततो तेण अद्धपविट्ठो पाएसु गहितो, मा पविट्ठो संतो आयुधेण वावाइस्सति, पच्छा चोरेण बाहिरठिएण हत्थे गिहितो, से तेहिं दोहिवि बलवंतेहिं उभयथा कड्डिज्जमाणो सतंकितपागारकविसीसगेहिं फालेज्जमाणो अत्ताणो विरवति, एवं स्वकर्म्मभिः कृत्यते पापकारी, एस दिट्ठंतो, अयं अत्थोवणयो, 'एवं पया पेच्च इहंपि लोए' एवमवधारणे, प्रज्ञा(जा)यंत इति(प्रजा) 'कडाण कम्माण न मोक्खो अत्थि', इह परत्र च, इहलोके तावत् पियविप्पओगअप्पियसंपयोगरोगदारिद्दोभग्गदुक्खदोमणस्सादि, परलोके पुण नरगतिरियकुमाणसेसु सारिरमाणसाणि दुक्खाणि अणुभवंति, अवस्सवेदणीयाणि कम्माणि, अथवा 'एवं पया पेच्च इहंपि लोए, ण कम्मुणा बीहइ नो कताथि' प्रजा इत्यामंत्रणे, प्रजा इह परत्र च कर्म्मभिः कृत्यन्ते, तेनैवंविधानां कर्म्मणां(न) पीहयेत् कदाचित्, न प्रतिषेधे, क्रियत इति कर्म्म, पीहनं अभिलसनं प्रार्थनमित्यर्थः, यैः स्तेयादिभिः पापाभिः कर्मभिः इह परत्र च पीड्यन्ते

इहलोकेऽपिधनमनर्थाय स्वकर्मणा छेदः

||१११||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

तद्विधानां कर्मणां पीहनमपि न कुर्यात्, किं पुनः करणामिति, अत्रोदाहरणं—एगंमि णगरे एगेण चोरेण रत्तिं दूरारोहे पासादे आरोढुं खत्तं खतं, सुबहुं च दव्वजातं णीणितं, णिययघरं च संपावेउं पभात्ताए रयणीए ण्हात्तसमालद्धो सुद्धवासो सो तत्थ गतो, को किं भासतित्ति जाणणत्थं, जइ तावऽज्ज लोगो मं न याणिस्सइ पुणोवि पुव्वठिइते चोरियं करिस्सामित्ति संपहारेऊण, तत्थ य लोगो बहू मिलितो संलवति—कधं दुरारोधे पासादे आरोढुं विसत्थेण खत्तं खतं?, कहं च खुड्डलएणं खत्तदुवारेण पविट्ठो?, पुणोवि सह दव्वेण णिग्गतोत्ति, सो सुणिउं हरिसेउं चिंतेति-सच्चमेतं, किं बहिं एतेण णिग्गतोत्ति अप्पणो उदरं कडिं च पलोएउं खत्तमुहं पलोयति, सो रायनिउत्तिएहिं पुरिसेहिं कुसलेहिं जाणित्ता गहितो, राइणो उवनीतो सासितो य, एवं पावकम्मपत्थणेऽवि दोसे, किमु करणे?, देहे वा हिंसादीणि पावकम्माणि, पमत्ता पावेहिं कम्मेहिं बज्झंति, तेवि पावगं च पाविंति, जं च परस्स चोएति पावं कम्मं कज्जति तस्स अप्पणा चेव वेदितव्वमिति, अत्रोच्यते, 'संसार' गाथा (११८-२०९) वृत्तं, संसृतिः संसरणं वा संसारः-नरकादि, अथवा कोहादीयं कम्मं, सो संसारो, समापन्नवान् समापन्नः, परंपरेणंति पुत्तस्स भज्जाए णट्ठाए एवमादि, उच्यते च 'संसारसमावन्नो परस्स अट्ठाए' परो णाम पुत्तबंधवादि, साधारणं नाम सव्वसामन्नं आत्मनिमित्तं बंधुराजब्राह्मणनिमित्तं वा, 'कम्मस्स तो तस्स तु वेदकाले' तस्येति आत्मनिमित्तस्य साधारणस्येति वा, वेद्यते इति वेदः उदय इत्यर्थः, वेदस्स कालः २, दानमानाक्रियया बध्नातीति बंधुः, बंधुः किल अहितनिग्रहहितप्रवृत्त्यर्थं, न चासौ तदहितं कर्म निगृहीतुं समर्थः, उक्तश्च-'सव्वस्स सयणमज्झे, एगो कस्सति दुहिट्ठितो संतो। सयणोऽवि य से रोगं ण विरिंचति णेव नासेति ॥१॥' इत्यनेन (न) बांधवा बांधवत्वं उविंतित्ति करेन्ति, अत्रोदाहरणं- एगंमि नगरे एगो वाणिओ अंतरावणे संववहरति, एगागी आभीरी उज्जुगा दो रूवगे

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||११३||

घेत्तूण कप्पासणिमित्तमुवट्ठिता, कप्पासो य तदा समग्घो वट्टति, तेण वाणिएणेगस्स रूयगस्स संमितं लाउं कप्पासो दिण्णो
सो, जति दोण्हवि रूवगाण दत्तोति सा पोट्टलयं बंधेऊण गता, पच्छा वणियतो चिंतेति- एस रूवगो मुहाए लद्धो, ततोऽहं एव उव-
भुंजामि, तेण तस्स रूवगस्स समत्तघयगुलाइ किणिउं घरे विसज्जितं, भज्जा संलत्ता- घयपुन्ने करिज्जासित्ति, ताए घतपुण्णा
कया, इत्थंतरे उस्सुगो जामाउओ सवयंसो आगतो, से ताए परिवेसितो घयपूरेहिं, सो भुंजिउं गतो, वाणियओ ण्हायप्पवणो भोयण-
त्थमुवगतो, सो य ताए परिवेसितो साभाविएण भत्तेण, तेण भण्णति- किं न कया य घयपूरा ?, ताए भण्णति- कया, ते जामाउ-
एतेण तेण सवयंसेण खइया, सो चिंतेति-पेच्छ जारिसं कयं मता, सा वराई आभीरी वंचेतु परनिमित्तं अप्पा अपुण्णेण संजोइओ, एसो
सचिंतो सरीरचिंताए णिग्गतो, गेम्हो य वट्टति, सो मज्झण्हवेलाए कयसरीरचिंतो एकस्स रुक्खस्स हेट्ठा वीसमति, साधू य तेणो-
गासेण भिक्खाणिमित्तं जाति, तेण सो भण्णति- भगवं ! एत्थं रुक्खछायाए विस्सम, धम्मुवसमणंति, साधुणा भणियं- तं व वक्खे-
वाइ, अहं अप्पणोच्चयं कम्मं करेमि, तेण भण्णति-भगवं ! को वा परायत्तं कम्मं करेति ?, णणु एस सव्वलोगो सकम्मउज्जुत्तो,
साधुणा भणितं- णणु तुमं चेव भज्जादिहेतुं किलिस्सति, स मर्मणीव स्पृष्टः तेणेव एक्कवयणेण संबुद्धो, भगवं ! तुम्हं कत्थ अच्छ-
ह ?, तेण भण्णति- उज्जाणे, ततो सो तं साधुं कउज्जमत्ति य जाणिऊण तस्स सगासं गतो, धम्मं सोऊण भणति- पव्वयामि, जाव
सयणं आपुच्छिउं एति(मि), गतो णियगबंधवं भज्जं च भणति-जहा आवणे विवहरंतस्स तुच्छो लाभगो होति, ता वणिज्जं करेमि,
दो य सत्थवाहा, तत्थेगो आदातुं पक्खेवयं लाभं मग्गति, एगो पुण पक्खेवयंपि देति लाभगं च ण मग्गति, तं कयरेण (कतरेण) सह
वच्चामि ?. ते भणंति- बियएण सद्धिं. तेहिं सो समणुण्णातो बंधुसहितो गतो उज्जाणं, तेहिं भण्णइ- कतमो सत्थवाहो ?, एस साधू

परार्थपापे- कार्पासिकः

||११३||

असोगच्छायाए उवविट्ठो, णिययघरे ववहारावेति, ण य लाभयं गेण्हइ, एतेण सह सण्णोज्जाणपट्टणं आमिति पव्वइतो, जहेव ण बंधवा त्राणाय भवंति कम्मविवागकाले, एवमेव 'वित्तेण ताणं ण लभे' वृत्तं (११९ सू० २२१) विद्यत इति वित्तं-धणसुवण्णहिरण्णगाविभवणसयणादि, त्रायतीति त्राणं, ण हि तेण वित्तेण लहते, कः ?, प्रमत्तः-पमत्तो विसएसु, पुव्वभणितेण वा पमाएण, इहापि तावल्लोके वित्तं न त्राणाय, किमंग पुण परलोगे ?, अत्रोदाहरणं-एगो किल राया इंदमहादीणं कम्हिवि उस्सवे अंतेउरे विणिग्गच्छंतो घोसणं घोसावेति, जहा-सव्वे पुरिसा नगरातो निग्गच्छंतु, तत्थ पुरोहितपुत्तो रायवल्लभत्तेण वेसाघरमणुपविट्ठो घोसिएवि ण णिग्गतो, सो य रायपुरिसेहिं निग्गहितो, तेण य रायवल्लभत्तणेण तेसिं किंचि दाऊण अप्पा ण मोइतो, दप्पायमाणो विवदंतो रायसगासमुवणीतो, राइणा वज्झो आणत्तो, पच्छा पुरोहितो उवट्ठितो- सव्वस्संपिय देमि, मा मारेज्जसु, तोवि ण मुक्को, सूलाए भिण्णो, एवं वित्तेण ताणं न लभे पमत्तो, इहलोकिकमुक्तमुदाहरणं, 'अदुवा परत्थ' अदुवेत्यथवा, यदि वित्तं न त्राणाय इहलोके, कथं नु परलोके त्राणाय भविस्सति ?, उक्तश्च- अत्थेण णंदराया ण रक्खिओ गोहणेण कुइकन्नो। धन्नेण तिल्लयसेट्ठी पुत्तेहिं ण ताइओ सगरो ॥ १ ॥ एवमत्राणः शारीरमानसैर्दुःखैरभिहन्यमानः न तस्स दुक्खस्स ग्रहणद्वारमुपलभते, को दिट्ठंतो ?, उच्यते, 'दीवे पणट्ठे व अणंतमोहो' दीप्यते इति दीपः, सो दुविहो-दव्वदीवो भावदीवो य, तत्थ य दव्वदीवो दुविधो-आसासदीवो पगासदीवो य, तत्थ आसासदीवो समुद्दमज्झे जो दीवो जं वुज्झमाणा पासिउं पाविउं च आसासेंदी सो आसासदीवो, पगासदीवो य ता जोतनं पगासेति, तत्थ जो सो आसासदीवो सो दुविधो- संदीणो असंदीणो य, तत्थ संदीणो णाम जो जलेण छादेज्जति, सो ण जीवितत्थसंताणाय, जो पुण सो विच्छिण्णत्तणेण उस्सितत्तणेण य जलेण ण छादेज्जति सो जीवितत्थीणं त्राणाय, असंदीणो

धनं नेहरपि त्राणं पुरोहित-पुत्रदृष्टान्तः

||११४||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||११५||

दीपद्वीप-स्वरूप-भेदादि

दीवो जहा कोंकणदीवो, पगासदीवो णाम जो उज्जोयं करेति, सो दुविधो- संजोइमो सो तृणपुलकवर्त्तिअग्निकर्द्दसमवायेन निष्पद्यते, असंजोइमो चंदादिच्चमणिमादि, एस दव्वदीवो । इदाणिं भावदीवो, सो दुविहो- आगासदीवो पगासदीवो य, तत्थ आगासदीवो सम्मद्दंसणं जं पाविऊण भविया जीवा संसारमहासागरे सदाकुवादिमहीवीयीहिं अवुज्झमाणा आससंति, पगासदीवो णाम पंचप्पगारा णंदी, तत्थ आसासदीवो दुविहो- संदीणो असंदीणो य, तत्थ खओवसमियसम्मद्दंसणदीवो पडिवातित्तिकाउं संदीणो, असंदीणो तु खायगसम्मद्दंसणदीवो, पगासभावदीवोवि दुविहो-विघातिमो संघाइमो य, तत्थ संघातिमो अक्खरपदपाद सिलोगो गाथाउद्देसगादिसंघातमयं दुवालसंग सुतज्ञानं, असंघातिमं केवलनाणं, एत्थ दव्वदीवे पगासदीवमधिकरेऊण भण्णति- दीव पणट्ठे व अणंतमोहो, एत्थ उदाहरणं, जहा-केई धातुवाइया सदीवगा अग्गि इंधणं च गहाय बिलमणुपविट्ठा, सो तेसिं पमादेणं दीवो अग्गादओ य विज्झायाओ, ततो ते विज्झातदीवग्गिया गुहातममोहिता इतो ततो सव्वतो परिभमंति, परिभमंता य अप्पडिगारमहाविसेहिं सप्पेहिं डक्का, दुरुत्तरे य अधे संणिवातिता, तत्थेव निधणमुवगया, एवं दीवप्पणट्ठेण तुल्लं दीपपणट्ठेव, अमणमंतः अम्यते वा अन्तः नास्यांतोऽस्तीति अनंतः, जहा तेसिं गुहापविट्ठाणं विज्झातदीवग्गीणं दुवारमलभमाणाणं तस्स तमसो अंत एव णत्थि, एवमेव संसारीणवि दीवपणट्ठे वा अणंतमोहो भावदीवपणट्ठाणं, 'अणंतमोहे' त्ति मुह्यते येन स मोहः, तच्च ज्ञानावरणदर्शनमोहनीयामिति, अहवा अट्ठप्पगारं कम्मं सव्वमेव मोहो, तच्चास्यानंतमित्यतोऽनन्तमोहे, नयनशीलं नैयायिकं, मग्गामिति वाक्यशेषः, तं नेआउअमग्गमसौ दट्ठंपि अदट्ठमेव भवति, जहा सो दीवपणट्ठो तं मग्गं दट्ठूणवि अदट्ठ एव भवति, एवमसावपि अनंतमोहवान् संसारी आजवंजवीभावात् जगति दृष्ट्वा अदृष्ट एव भवति, ||११५||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता ||११६||

प्रतिबुद्ध-जीवित्वं

किमभिप्रेतं ?, यतस्तमोऽभिघाताय नोद्यमते, अथवा नैयायिकं मार्गं कश्चित् दृष्ट्वापि पुनर्मोहोदयात् पतति, जहा ते विज्झा-तपदीवा न जानंति कुतोवि लद्धारं (तं दारं), एवं पुत्रदारादिआसक्ता नैयायिकं दृष्ट्वा अदृष्ट एवेति, मिथ्यादर्शनादभिनिवेशाद्वा णेआइयं दट्ठमदट्ठमेव , एवंविधेसु संसारिसु ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयमहानिद्राकारिषु 'सुत्तेसु याविप्पडिबुद्धजीवं' वृत्तं (१२०—२१३) सुपनं सुप्तं सुप्तमस्यास्तीति सुप्तः, सुप्तवानित्यर्थः, चशब्दोऽधिकवचनपादपूरणेषु, सो दुविहो सुत्तो-णिद्दासुत्तो भावसुत्तो य. तत्थ णिद्दं पति सुत्तो जागरो य, एवं भावेवि, तत्थ णिद्दाजागरणे उदाहरणं अगलदत्तो, सो तेसु चोरेसु (पु)ण पसुत्तेसु सुत्तेसु सु(स)खोडिपत्तेण पाउणिउं एगंते जग्गंतो अच्छति,ते य चोरा परिव्वायगेण णिद्दापमत्तत्ति जाणिऊण सव्वे सिरच्छिण्णा कया, अगलदत्तट्ठाणेवि किच्छेण पाउतेण पहारो दत्तो, तेणवि जग्गंतेण रुक्खगणमज्झे ठितो, भगिणी भूमि-गिहिपवेसणं, ताएवि अप्पमत्तत्ताए व ण सक्कितो वंचेउं, एस दिट्ठंतो भावे समोतारिज्जति, पसुत्ता चोरा घातिता सो एगो ण घातितो, एवं जे मिच्छादिट्ठीणो अविरता य भावतो पसुत्ता धम्मकज्जाइं ण पेक्खंति, तेसु सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवी, अपि बाढार्थे, भावसुत्तेसु वा जागरेण होयव्वं, सुत्तेसुवि च नातिनिद्राप्रमादवान् , भावप्रतिबुद्धो नाम भावजागरः, प्रति-बुद्धजीवनशीलः प्रतिबुद्धजीवी, ण विस्ससेज्ज कसायिंदिएसु, 'पंडिते व ' पापाड्डीनः पंडितः,आसुपण्णेत्ति आसुप्रज्ञा नाम संयमं प्रति क्षणलवमुहुर्तप्रतिबुद्धमानता, आसु प्रज्ञा यस्य, क्षिप्रं प्रज्ञा उत्पद्यते तेण ण विस्ससितव्वं, जहा कण्हकहाण-(ग)पक्खो, कम्हा ? 'घोरा मुहुत्ता' घूर्णत इति घोरः, निरनुक्रोश इत्यर्थः, कोऽभिप्रायः ?, णणु जाते पुव्वण्हे अवरण्हे वा काएवि वेलाए मच्चू आगच्छति, अतः अल्पकालायुष्कत्वात् अनियमितकालत्वाच्च पुंसा निरंतरमेव संजातपक्षो भवेत्, ||११६||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

तमेव मुहुर्त्तं न घोरत्वात् गत्वा पुनरस्येति, अथवा सगोचरप्राप्तस्य मथंतीत्यतो घोराः, यथैष मद्गोचरं प्राप्तः, अस्व तावद् मा मारेण भयमस्तु, एवं घोरा मुहूर्त्ताः, शरीरमपि अबलं, अल्पेनापि उपक्रमेण उपक्रम्यते, एवं मत्वा- 'भारुंडपक्खी व चरऽप्पमत्तो', पक्ष्यतेऽनेनेति पक्षः, पक्षावस्यास्तीति पक्षी, तेसिं किर दोण्हं तिपादा, जो मज्झिमतो पादो सो सामण्णो, पच्छा ते अप्पमत्ता चरंति, मा एको वा एक्कको वा पच्छा पज्जुपेच्छा, पादो हीरेज्जा, अथवा मा पडिहामो, एवं साधूवि 'चरे पदाणि पडिसंकमाणो' वृत्तं (१२१-२१६) युगपत्संभृतानि तस्येन्द्रियाणि, कषायाश्रितान्येव चापराधपदानि, उक्तं हि-'इन्द्रियविषयकषाया एतान्यपराधपदानि', यतोऽपदिश्यते-'चरे पयाइं पडिसंकमाणो' वृत्तं, चरेदित्यनुमतार्थे, किं कुर्वन्?, पदानि परि परि संकमानो, पद्यते अनेनेति पदं, परि सर्वतोभावे, सर्वतो संकमाणो परिसंकमाणो, मा मे मूलगुणउत्तरगुणपदेसु छलणा होज्जात्ति, पाश्यते येन पाशः बंधनमित्यर्थः, जांकिंचि अप्पणा पमादं पासति दुच्चिंचतितादि, दुच्चिंचितिएणावि बज्झति, किं पुण जो चिंतितु कम्मुणा सफलीकरेति, एवं दुब्भासितदुच्चिंचतितादि जं किंचि पासं 'इहे 'ति इह प्रवचने मण्णमाणो, जाणमाण इत्यर्थः, स्यान्मतिः-एवमप्रमत्तः कहं चरेत् 'लाभंतरे जीवित बूहइत्ता' लभ्यंत इति लाभाः, अंतरा छिनात्ति प्रयच्छाति वान्तरं, लाभं प्रयच्छतीति लाभान्तरं, लाभं धरेति वा दातुं कातुं वा, जीव्यते येन तज्जीवितं, 'बृहि वृद्धौ' बृंहयित्वा, कोऽभिप्रायः?, जाव निज्जरालाभसमत्थं जीवितं ताव बूहयामि, समानकर्तृकयोर्बृंहयित्वा, पश्चात् किं कुर्यात्?, उच्यते, 'पच्छा परिण्णाय मलावधंसी' पच्छा इति जाहे ण णिज्जरालाभसमत्थं ताहे व जाणिऊण जाणणापरिण्णाए मलावधंसी भवति, कथमिदानीं मह महंतीए जराए बाधिणा वा अभिभूतस्स अत्थि निज्जरालाभेत्ति जाणणापरिण्णाए जाणिऊण पच्छा सत्तधारणाए मलं अवद्धंसेति- ध्वंसेति तमिति, मलं अष्ट- ||११७||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||११८||

प्रकारं शोधयतीत्यर्थः, 'स्रंसुध्वंसु अवस्रंसने' लाभान्तरे, एत्थं मंडितचोरेण दिट्ठंतो- बेन्नायडे नगरे मंडिओ नाम तुण्णाओ परदव्वहरणपसत्तो आसी, सो य दुट्ठरोगमिति जणे पगासंतो जाणुसु दोसु णिच्चमेव अद्दपलेवालित्तेण रायमग्गे तुण्णागसिप्पं उवजीवति, चंकमंतोविय दंडधरिएण पादेण कथंचि किलिस्संतो चंकमति, रत्तिं च खाणिऊण दव्वजातं घेत्तूण णगरसन्निगिट्ठे ठइआणेगदेसे भूमिघरं तत्थ णिक्खिवति, तत्थ य से भगिणी कण्णगा चिट्ठति, तस्स भूमिघरस्स मज्झे कूवो, जं च सो चोरो दव्वेण य लोभेउं सहायं दव्ववोढारं आणेति तं सा से भगिणी अगडसमिवे पुव्वणत्थासणे निवेसितुं पायसोयलक्खेणं पादे गिण्हेऊणं तंमि कूवे परिक्खिवति, तत्थ य मूलदेवो रातो, सो तत्थेव विज्जति, एवं कालो वच्चति णगरं मुसंतस्स, चोरगहा य तं ण सक्केंति गिण्हिउं, ततो णगरे उवरवो जातो, तत्थ य मूलदेवो राया, सो कथं राया संवुत्तो ?, उज्जेणीए नयरीए सव्वगणियाणं पधाणा देवदत्ता णाम गणिया, ताए सद्धिं अचलो नाम वाणियदारओ विभवसंपन्नो मूलदेवो य सेवंति, दत्ताए मूलदेवो इट्ठो, गणियामाऊए अयले, सा भणति- पुत्ति ! किं एतेण पीतिकरणंति ?, देवदत्ताए भणति-अम्मो ! एस पंडिओ, तीए भणति-किं एस अब्भहियं विण्णाणं जाणति?, अयलोवि भावणीर कसा (लक्खितो) पंडितो वा, तीए भण्णति-अथ्थेते, वच्च अयलं भण-देवदत्ताए उच्छुं हाइउं सद्धा, तीए गंतूण भणितो, तेण चिंतियं-कतो पुनाइं अहं देवदत्ताए पणतेत्ति, तेण सगडं भरेऊण उच्छुलट्ठीण उवणीतं, ताए भण्णति-किं अहं हत्थिणी ?, तीए भण्णति-वच्च, मूलदेवं भण-देवदत्ताए उच्छुं खाइउं अभिलासत्ति, तीए गंतुण से कथितं, तेण कइवि उच्छुलट्ठी उच्छेदेत्तुं कंदादिया काऊण चाउज्जातादिसु वासिताउ काउं पेसियाओ, तीए भण्णति- पेच्छ विण्णाणंति, सा तुण्हिका ठिता, मूलदेवस्स पदोसमावण्णा, अयलं भणति- अहं तहा करेमि जहा तुमं मूलदेवं गेण्हसित्ती, तेण अट्ठसयं दिणाराण तीए

मंडिकचौर- दृष्टान्तः ||११८||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||११९||

मंडिकचौर-दृष्टान्तः

भाडिणिमित्तं दिन्नं, ताए गंतुं देवदत्ताए भण्णति— अज्ज अयलो तुमं समं वसहितित्ति, इमे दिणारा दत्ता, अवरण्हवेलाए आगन्तुं भणति— अज्ज अयलस्स तुरियं कज्जं जायं, तेण गामं गतोत्ति, देवदत्ताए मूलदेवस्स पेसितं, आगतो मूलदेवो, ताए समाणं अच्छति, गणियामाऊए अयलो संवाहितो, अण्णातो पविट्ठो बहुपुरिससमग्गो, वेढियं तं गब्भगिहं, मूलदेवो य अइसंभमेणं सयणीयस्स हेट्ठा णिलुक्को, तेण अलक्खितो, देवदत्ताएवि दासचेडीओ संदिट्ठाओ अयलस्स सरीरमब्भंगादि घेत्तूणुवट्ठितातो, सोवि तंमि चेव सयणिए ठियानिसन्नो भणइ—एत्थ चेव सयणीए ठियं अब्भंगेह, ताओ भणंति—विणासेज्जति सयणीयं, सो भणति- एत्तो उक्किट्ठतरं दाहामि, मया एवं सुविणो दिट्ठो जहा सयणी-अब्भंगणउव्वलणण्हाणादि कातव्वं,तो तहा कयं,ताहे णिण्हाणगोल्लो मूलदेवो,अयलेण वालेसु यकसाय (पगहाय) कड्ढितो,संलत्तो य अणेण-वच्चसु मुक्कोसि, इहरहा ते अज्ज अहं जीवितस्स विवसामि, जति मया जारिसो होज्जाहि तो एवं मुच्चिज्जाहि, ततो मूलदेवो अवमाणितो लज्जाते णिग्गतो उज्जेणीओ पत्थयणविरहितो, बेण्णायडं जतो पत्थितो, एगो य से पुरिसो मिलितो, मूलदेवेण पुच्छितो- कहिं जासि ?, बिन्नायडंति, मूलदेवेण भण्णति-दोवि सम्मं वच्चामोत्ति, तेण संलत्तं—एवं भवतुत्ति, दोवि पट्ठिता, अंतरा य अडवी, तस्स पुरिसस्स संबलं अत्थि, मूलदेवो चिंतेति—एसो मम संबलेण संविभागं करेहित्ति, एण्हि सुए परे वा एताए आसाए वच्चति,ण से किं(चि) देति,ततो ततियदिवसे छिन्ना अडवी, मूलदेवेण पुच्छितो-णत्थि एत्थ अब्भासे गामो?, तेण भण्णइ—एस णाइदूरे पंथस्स गामो, मूलदेवेण भण्णति- तुमं कत्थ वससि ?, अमुगत्थ गामे, मूलदेवेण भणिओ- तो क्खाइ अहं इमं गामं वच्चामि, तेण से पंथो उवदिट्ठो, गतो तं गामं मूलदेवो, तत्थ णेण भिक्खं हिंडंतेण कुम्मासा लद्धा, पवण्णो य ||११९||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता ||१२०||

मंडिकचौर-दृष्टान्तः

कालो वट्टति, सो गामातो णिग्गच्छाति,साधू य मासखमणपारणनिमित्तं(आगतं) पासति, तेण य संवेगमावण्णेण भिक्खं पराए भत्ती-
ए तेहिं कुम्मासेहिं सो साधू पडिलाहितो,भणियं च णेण-'धण्णाणं खु नराणं कुम्मासा होज्ज मासगस्स पारणए',अविय देवताए अहासान्निहि-
याए भण्णति-पुत्त ! एतीए गाहाए पच्छिमद्धेणं जं मग्गसि तं देमि, 'गणियं च देवदत्तं दंतिसहस्सं व रज्जं च' देवयाए भण्णति-
अचिरा से भविस्सतित्ति, ततो गतो मूलदेवो बिन्नायडं, तत्थ खत्तं खणंतो गहितो, वज्झो णीणेति, तत्थ य अपुत्तो राया मतो,
आसो अधियासितो, मूलदेवसगासमागतो, पट्टदावणं०, रज्जे अभिसित्तो, राया जातो, स पुरिसो सद्दावितो जेण सह उज्जेणीए
आगतो, सो णेण भणितो—तुब्भंतणियाए आसाए आगतो अहं, इतराऽहं अंतरा चेव विवज्जंतो, तेण तुज्झ एसऽमुय गामो दत्तो,
मा य मम सगासं एज्जसुत्ति, पच्छा उज्जेणीएण रण्णा सद्धिं पीतिं संजोएति, दाणमाणेण संपूरियं च काउं देवदत्ता णेण मग्गिय-
त्ति, तेण पच्चुवकारसंधिएण दिन्ना, मूलदेवेण अंतेउरे छूढा, ताए समं भोगे भुंजति, अण्णया य अयलो पोतवहणेण तत्थ
आगतो, सुंके विज्जंते भंडे, जाइं पोते दव्वणूमणाणि ठाणाणि ताणि जाणमाणेण मूलदेवेणं सोऽवि गिण्हावितो, तुमे दव्वं
णूमीज्जंति, पुरिसेहिं बंधिऊण रायसगासमुवणीतो, मूलदेवेण भण्णति–तुमं ममं जाणेसि ?, सो भणति—तुमं राया !, को तुमं
ण याणाति ?, तेण भण्णति- अहं मूलदेवो, सक्कारेउं विसज्जितो, एवं मूलदेवो राया जातो, ताहे सो अण्णं णगरारक्खितं ठवेति,
सोऽवि ण सक्केति चोरं गिण्हिउं, ताहे मूलदेवो सयं णीलकंबलं पाउणिऊण रत्तिं णिग्गतो, अणज्जंतो एगाए सभाए निवण्णो
अच्छाति जाव सो मंडितचोरो आगंतुं भणति–को एत्थ अच्छाति ?, मूलदेवेण भण्णाति–अहं कप्पडितो, तेण भण्णति--एह मणुस्सं
ते करेमि, मूलदेवो उट्ठितो, एगंमि ईसरघरे खत्तं खयं, सुबहुं दव्वजातं णीणेऊण मूलदेवस्स उवरिं चडावितं, पट्ठिया णगरबा-

||१२०||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

हिरियं, जातो मूलदेवो पुरतो, पच्छतो चोरो, आसिणा कड्ढिएण पड्ढितो एति, संपत्ता भूमिघरं, चोरो तं दव्वं निहणिउमारद्धो, भणिता यऽणेण भगिणी–एतस्स पाहुणस्स पादे सोएहि, ताहे कूवतडसंनिविट्ठे आसणे उववेसितो, ताए पायसोयलक्खेण गहितो, जाव अतीव अतीव सुकुमारा पादा, ताए णायं–जहेस कोति भूतपुव्वो विहलितगो, ताए अणुकंपा जाता, ताए पाद-तले सण्णितो-नस्सत्ति, मा मारेज्जिहिसि, पच्छा सो पलातो, ताए बोलो कतो-णट्ठोत्ति, सो असिं कड्ढिऊण मग्गिउं लग्गो, मूल-देवो रायपहे अतिसण्णिकिट्ठं णाऊण चच्चरि सिवंतरितो ठितो, चोरो तं सिवलिंगं एस पुरिसोत्तिकाउं कुंकुगिणेण आसिणा दुहा-काऊण पभाताए रयणीए ततो निग्गंतूण गतो वीहिं, अंतरावणे तुण्णगत्तं करेति, राइणा पुरिसेहिं सद्दावितो, तेण चिंतितं—जहा सो पुरिसो णूणं ण मारितो, अवस्सं स एत्थं राया भविस्सतित्ति, तेहिं पुरिसेहिं आणितो, राइणा अब्भुट्ठाणेण संपूइतो, आसणे णिवेसावितो, सुबहुं च पियं आभासिउं लग्गो, मम भगिणीं देहित्ति, तेण दिन्ना, विवाहिता य, रायणा भोगा य से संपदत्ता, कइसुवि दिवसेसु गतेसु राइणा मंडितो भणितो-दव्वेण कज्जंति, तेण सुबहुं दव्वजातं दत्तं,अण्णया रायणा संपूइतो.अन्नया पुणो मग्गितो, पुणो दिण्णो, तस्स चोरस्स अतीव सक्कारसम्माणं पउंजति, एतेण पगारेण सव्वं दव्वं दवावितो, भगिणी य से पुच्छिता, ताए भण्णति–एत्तियं वित्तं, ततो पुव्वावेदितलक्खणाणुसारेण दव्वं दवावेऊण मंडितो सूलाए आरोवितो, एस दिट्ठंतो, जहा मंडितो तेण ताव पूइतो जाव तत्तो लाभगो आसि, एवं सरीरमादि ताव आहारादीविधिहित्ति घेप्पति जाव निज्जरालाभो, सम्मत्ते पच्छा परिवज्जति, स्यादेतत्—कोऽसौ परिज्ञाय मलं अवध्वंसयेदिति ?, उच्यते, णणु छंदणिरोधो परिण्णा इत्यतोऽपदिश्यते छंदो आहारे जीविते शरीरे अन्नेसु य बाहिरब्भंतरेसु, एतस्स छन्दस्स निरोधेण उवेदि मोक्खं,

छन्दो-निरोधः ||१२१||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता. ||१२२||

पश्चाद्विवेकाभावः

को दिट्ठंतो ?, उच्यते, 'आसे जधा सिक्खितवम्मधारी' अश्नाति अश्नुते वा अध्वानमिति अश्वः, येन प्रकारेण यथा, शिक्षितवान्, व्रियतेऽनेनेति वारयते वा वम्मं तं वम्मं धारयतीति वम्मधारी, दिट्ठंतो- एगेण राइणा दोण्हं कुलपुत्ताणं दो अस्सा दिण्णा, तत्थेगो जहिच्छितावसधं च जहाकालोवगेण इट्ठेण जवसजोग्गासणेण संरक्खमाणो चंचुच्चितलालितधाइयजइणवेगादीणि सिक्खाविति, बितिओ को एयस्स इट्ठ जवसजोग्गासणं दाहितित्ति घरट्टे वाहेऊण ततो चेव जवसं जोगासणं देति, तुसे खारेति, सेसं अप्पणा भुंजति, संगामकाले उवट्ठिते रण्णा वुत्ता—तेसु चेव आसेसु आरूढा संगामं वा पविसह, तत्थ जो सो पुव्ववण्णितो आसो सो सारथिमणुअत्तिमाणो संगामपारतो जातो, इयरो य असब्भावभावणाभावितत्वात् गोधूमजंतज्जुत्त इव तत्थेव भमिउमाढत्तो, तं च परा उवलक्खेउं हतसारथिं काउं गृहीतवंतः, एत्थ पसत्थेण उवमा, आसे जहा सिक्खितवम्मधारी, स्यान्मतं-केवचिरं सिक्खावेतव्वा ?; उच्यते, ण हि संगामंसि खित्तो जह सिक्खविज्जा, णिक्खिउं ण पुण सिक्खिज्जात्ति, ण एवं इह, दुविहंपि सिक्खं सिक्खमाणो 'पुव्वाणि वासाणि चरप्पमत्तो' पूरयंतीति पूर्वं, वर्षंतीति वर्षं, ताणि पुव्वाणि वासाणी, का भावना ?, पुव्वाउसो जया मणुया तदा पुव्वाणि, जदा वरिसायुसो तया वरिसाणि, चरेदित्यनुमतार्थं, अप्रमाद एव इहाध्ययने वर्ण्यते, तेनाप्रमत्तः मद्यादिभिः, तस्मादेतदप्रमादात् मुनिरिति, साधुरेव जणो२, खिप्पामिति एगेण भवेण उवेति-गच्छति मोक्खंसिद्धिमिति। अत्राह चोदकः- सक्कते मुहुत्तं दिवसं वा अप्पामादो काउं, जं पुण भणति—पुव्वाणि वासाणि चरप्पमत्तो, एवतियं कालं दुक्खं अप्पमादो कज्जति, तेण पच्छिमे काले अप्पमादं करेस्सामि, उच्यते, ' सपुव्वमेवा ण लभेज्ज पच्छा, ' वृत्तं (१२३सू २२४) स इति निर्देशे, तस्स पुव्वंकालपमातिणो, एवमवधारणे, नैवासौ, न लभते, समाधिमिति वर्तते, आराधणं ||१२२||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ४ असंस्कृता.

||१२३||

च, अहवा एव उपमाने, एवमसौ पूर्वकालप्रमादी अकतपरक्कमो ण लभे पच्छिमे काले समाधिमिति, उक्तञ्च- 'पुव्वमकारितजोगो पुरिसो मरणे उवठिते संते। ण चइति व सहितुं जे अंगेहिं परीसहणिवादे ॥ १ ॥ 'एसोवमा सासतवातियाणं' युज्जत इति वाक्यशेषः, एष इति प्रत्यक्षीकरणे, उपमीयते अनयेति उपमा, शश्वद्भवतीति शाश्वतं तेषां एषा उपमा युज्जते, यथा-पच्छा धम्मं करेस्सामी, के य सासयवादिया ?, उच्यते, ये निरुव्वक्कमायुणो, ण तु जेसिं फेणबुब्बुयभंगुराणि जीविताणि, अथवा सासयवादी णिण्णअप्पमत्तो कालो मरतो जेसिं एसा दिट्ठी, जो पुव्वमेव अकयजोगो सो 'विसीयइ सिढिले आउयम्मि' विसेसेण सीदाति सिढिलं सोवक्कमं बहुअपायं, कालं काले कालेण वा उवणीतः कालोवणीतः, मरणकालमित्यर्थः, 'शरीरस्य भेदो'त्ति शीर्यत इति शरीरं शरीरस्य शरीराद्वा भेदः, अथवा जीवो वा सरीराओ सरीरं वा जीवाओ भेदो-भिद्यत इति भेदः, एत्थ दिट्ठंतो-एक्केण राइणा. मेच्छाणं आगमणं जाणिऊणं विसए उग्घोसावितं, जहा पुरिसा (ण्णाणि) णि दुग्गाणि य समस्सीयउ, मा णे मेच्छेहिं विणासिज्जिहिथ, तत्थ केइ अवहाय वयणसमं चेव दुग्गमस्सिया, अण्णे पुण सयणासणवसहधण्णाइसु गिद्धा असद्दहंता ण खिप्पं दुग्गाणि समस्सिया, मेच्छा य उवगया, तत्थ जे दुग्गाणि न समस्सिया ते तु सयणभोगोवभोगादिगिद्धा रायवयणं असद्दहंता, ते मेच्छेहिं वेढिया विसीदंति, पुत्तदारविभवभेदे वट्टंते, एवमकृतपरिकर्मणि आयोज्यं। किं—चान्यत्- स एवमकृतपरिकर्म्मा 'खिप्पं ण सक्केति' वृत्तं (१२ सू० २२४) क्षिप्रमहीनकालं, विविच्यते येन स विवेगः, आहारोपकरणादिषु सक्तः पच्छिमे काले खिप्पं ण सक्केति, अथवा सव्वस्सामण्णा एतप्पमादप्पमादाविविकाउं गिहत्थाविहु परं परारित्ति पव्वइस्सामो सोऽवि जरापत्तो मरणकाले वा खिप्पं ण सक्केति विवेगमेतुं पुत्रकलत्रादिसक्तः, जरादि-

वृद्धत्वे दीक्षाऽऽशावैफल्यं अविवेके ब्राह्मणी

||१२३||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७|| दीप अनुक्रम [११६-१२८]

||१२४||

आत्म-रक्षायां वधूदाहरणं

परीसहासहिष्णुः, तस्मात् ज्ञात्वा सम्यगुत्थानेन समुत्थाय, अन्यान्यपि मिथ्योत्थानानि भवंति चोरादिक्रियासु कुप्रवचनेषु इहापि च निदानशल्योवहतानि, इदं तु परलोकाशंसां पति प्रहाणत्तण 'पयहाहि कामे' प्रकर्षेण जहाहि कामा इत्थि-विसया सेसेंदियभोगा, कामग्रहणेण भोगावि भण्णंति, खिप्पं ण सकेति विवेगमेतुंति एत्थ उदाहरणं- एगो मरुओ परदेसं गंतूण साहापारओ होऊण विसयमागतो, तस्सण्णेण मरुएण खद्धपलालिओत्तिकाउं दारिका दत्ता, सो य लोए दक्खिणातो लब्भति, परविभवे वद्धति, तेण तीसे भारियाते सुबहुतं अलंकारं कारियं, सा णिच्चमंडिता अच्छति, तेण भण्णति- एस पच्चंतगामो तो तुमं एताणि आभरणगाणि तिहिपव्वणीसु आविंधाहि, कहिंवि चोरा उवागच्छेज्जा तो सुहं गोविज्जंति, सा भणति- अहं ताए वेलाए सिग्घमेव अवणेस्संति, अण्णया चोरा तत्थ पडिता, ता तमेव य णिच्चमंडितागिहमणुपविट्ठा, सा तेहिं सालंकिता गहिता, सा य पणितभोयणत्वात् मंसोपचितपाणिपादा ण सक्केवि कडगादीणि अवणेउं, तओ चोरेहिं तीसे हत्थे छित्तूण अवणीता, गिण्हिउं च अवकंता, एवं पुव्वं अकयपरिकम्मा पत्ते काले ण सकेति विवेगमेतुं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे, प्रजहाय कामान् किं कर्तव्यं ?, उच्यते, समेत्यैव लोकं, अहवा जेण कामा चत्ता भवंति तेण समिओ भवति, तं पुण समिच्च लोगं, सम्यक् एत्य समेत्य, ज्ञात्वेत्यर्थः, पृथिवीकायादिलोकं, समभावो समता 'जह मम ण पियं दुक्खं' इत्यतः प्राणिनां दुक्खं न कर्तव्यं, महंतं एसतीति महेसि, मोक्षं इच्छतीत्यर्थः, आत्मानं रक्षतीत्यात्मरक्षः, चरेदित्यनुमतार्थे, अत्रोदा-हरणं- एगा वणियमहिला पवासितपतिया सरीरसुस्सूसापरा दासभतकगम्मकरे निजणियोगेसु ण णियोजयति, ण य तेसिं कालोववन्नं जहिट्ठं आहारं भतिं वा देति, ते सव्वे णट्ठा, कम्मंतपरीहाणीए विभवपरिहाणी, आगतो वाणियओ, तहाविधं पस्सिऊण ||१२४||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

स्पर्शजयः तुच्छ-जुगुप्सा

पच्छा सा तेण निच्छूढा, अन्नं तु सुपुक्खलेण सुंकेण वरेति, लद्धा यऽणेण, तेण तीसे नियगा भण्णंति- जति अप्पाणं रक्खइ तो परिणेमित्ति, तंचेवं दुग्गतकण्णाए सोतुं णियगा भणति— रक्खीहं अप्पगंति, सा तेण विवाहिता, गतो वाणिज्जेणं, सावि दासकभयकम्मगराण तं संदेसं दाउं तेसिं पुव्वण्हिकाथि काले भोयणं देति, महुराहिं च वायाहिं वउहेति, भतिं वा तेसिं अकालपरिहीणं देति, ण य सरीरसुस्सूसापरा, एवमप्पाणं रक्खंतीए भत्ता उवागतो, सो एवंविहं पस्सिऊण तुट्ठो, तेण सव्वसामिणी कया, एवामिहापि पसत्थापसत्थे समोतारेयव्वं, कथमप्रमत्तमात्मानं रक्षेत्?, उच्यते, क्षणलवमुहूर्तमप्रमादयन्, अप्रमत्तस्य हि सतो यद्यपि 'मुहुं मुहुं मोहगुणे जयंतं' वृत्तं (१२५ सू० २२५) मुहुराम्रेडिते पुनः पुनर्मुहुर्ते मुहुंमुहुं, मोहगुणाः शब्दादयः जतंतन्ति, अणेगा इति अणेगलक्षणा, इट्ठा ये रोचयति रोचते रूवं 'समण'मिति समणाणं तरंतं कम्मं, फासा फुसंति-स्पृशंति, असमंजसा णाम अननुकूला, अनभिप्रेता इत्यर्थः, अथवा शीतोष्णदंशमशकादयः, ण तेसु भिक्खू मणसा पदुस्से, यदा से असमंजसाः स्पृशंति जहा सणो(हो), सेसावि विसया, एतेसिं पुणो विसयाणं सव्वेसिं दुरधियासतरा फासा, जतो वदेस्सते 'मंदा य फासा बहुलोभणिज्जा' वृत्तं (१२६ सू० २२६) मंदा णाम अप्पा, अथवा मंदंतीति मंदाः स्त्रियः, मंदाणं फासा २, मंदबुद्धित्वात्, मंदा मंदा य फासा मंदसोक्खा बहू फासा, पायाइन्नक्खालाश्च मंदाः, पठ्यते च 'मंदाउ तहा हियस्स बहुलोभणेज्जा' मंदाः स्त्रियस्ते हि बहूनां कामिनां लोभं कुर्वंति, विभ्रमेंगिताकारादिभिः प्रकारैर्लोभं कुर्वंति, तेन प्रकारेण तथा, तहप्पगारा- तहावत्था, अंते दुःखदा इत्यतः तासु मणंपि न कुज्जा, किं पुण आसेवणं?, एग्गगहणे तज्जातीयगहणंति, सेसेवि वयातियारे ण कुज्जा, उक्ता मूलगुणरक्खा, इमं तु सम्मद्दंसणरक्खत्थं उवदिस्सति 'जे संखता' वृत्तं, (१२७ सू० २२७) ॥१२५॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||११५-१२७||

दीप अनुक्रम [११६-१२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ॥१२६॥

मरणे निक्षेपा भेदाश्च

जे इति निर्देशे, संस्कृता नाम संस्कृतवचना सर्वज्ञवचनदत्तदोषाः, अथवा संस्कृताभिधानरुचयः, तुच्छा णाम आसिक्खिता इति, प्रवदनशीलाः प्रवादिनः, ते पेज्जा प्रेम्णो भावः पेज्जं, दोषणं दोषः, अनुमता अनुसृता, परज्झा परवसा रागद्दोसवसगा अजितिंदिया, अतो 'एते अधम्मोत्ति दुगुंछमाणा' एते इति ये ते रागद्दोसपरज्झा अधम्मा य ते, न मोक्षाय, अथवा जो एतेसिं सह संसर्गः तद्दर्शनाभिरुचिर्वा एतं अधम्मोत्ति दुगुंछमाणो, उक्तं हि- 'शंकाकांक्षाजुगुप्सा' 'कंखे गुणे' णाणदंसणचरित्तगुणे, केच्चिरं कुच्छितव्वं ?, उच्यते, 'जाव सरीरभेदो' तिबेमि, भिद्यते इति भेदः जीवो वा सरीरातो सरीरं वा जीवातो। तिबेमि णयाः पूर्ववत्। **असंखतं सम्मत्तं। इइ असंखयाहिहाणचउत्थज्झयणस्स चुण्णी समत्ता॥**

एवं अप्पमत्तेण जाव मरणंता ताव कुच्छितव्वंति णाम, मरणान्तमितिकृत्वा मरणविधिरभिधातव्येत्यनेनाभिसम्बन्धेनाध्ययनमायातं, तस्स चत्तारि अणुयोगदाराणि, सव्वं परूवेऊण णामणिप्फन्नो निक्खेवो अकाममरणेज्जं, ण कामं अकामं, तत्थेगं कामं निक्खितव्वं 'कामाणं तु णिक्खेवो' गाहा (२०८—२२९) कामा चउव्विहा- णामादिकामा 'पुव्वुद्दिट्ठि' त्ति जहा सामन्नपुव्वए, णवरं एत्थ अभिप्पेतकामेहिं अधिकारो, अभिप्पेतं णाम इच्छाकामो, अकामो सकामो वा जो मरणं मरति तं मरणं छव्विहं— णाममरणं ठवणा० दव्व० खेत्त० काल० भावमरणं, णामठवणातो गतातो, 'दव्वमरणं कुसुम्भादिएसु' गाथा (२०९—२२०) दव्वमरणं जहा— मतं कुसम्भगमंरजगं, मृतमन्नमव्यंजनं, एवमादि, खेत्तमरणं जो जंमि खेत्ते मरति जंमि वा खेत्ते मरणं वन्निज्जति, कालमरणं वा (जो जंमि) काले मरति जंमि वा काले मरणं वन्निज्जति, भावमरणं वाऽऽयुखयो, तं भावमरणं दुविधं-ओहमरणं तब्भवमरणं च, ओघमरणं ओघः संक्षेपः ॥१२६॥

अध्ययनं -४- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -५- "अकाममरणीय" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ||१२७||

मरणे निक्षेपा भेदाश्च

पिंड इत्यनर्थान्तरं, जहा सव्वजीवाणंवि य णं आयुक्खए मरणंति, तब्भवमरणं जो जंमि भवग्गहणे मरति णेरइयभवग्गहणादि, एत्थ पुण मणुस्सभवग्गहणेण अधिकारो ।। तस्स पुण एयातो दो दारगाथाओ, तंजहा 'मरणंमी(प)विभत्ती' गाहा(२१०-२३०) 'मरणंमिवि एक्कमेक्के' गाहा(२११-२३०) मरणविभत्तिपरूवणा, अणुभावो, पदेसग्गं३ कइ मरतित्ति, कतिखुत्तो वा एक्कं मरंति५, एक्केक्के मरणे कतिभागो भवति सव्वजीवाणं६,अणुसमयं समयं७संतरं वा८एक्केक्कं वा केच्चिरं कालं मरति९,एवमेदाणि णव दाराणि, तत्थ पढमं दारं मरणविभत्तीपरूवणात्ति, एयाणि तीहिं गाहाहिं उवसंगहिताणि भवंति- तंजहा 'आवीइ' (२१२।२३०) 'छउमत्थ' (२१३-२३०)'सत्तरस'(२१४-२३१)आवीचियमरणं अवधिमरणं आदियंतियमरणं वलायमरणं वसट्टमरणं५ अंतोसल्लमरणं तब्भवमरणं बालमरणं पंडितमरणं बालपंडितमरणं १०छउमत्थमरणं केवलिमरणं वेहाणसमरणं गद्धपट्ठमरणं भत्तपरिन्ना१५ इंगिणी पाउवगमणत्ति, तथा आवीचीमरणगाहा-'अणुसमय णिरंतरं' गाहा (२१५-२३१)आवीचीनाम निरंतरमित्यर्थः, उववन्नमत्त एव जीवो अणुभावपरिसमाप्तेः निरंतरं समये समये मरति, तं च पंचविधं-दव्वावीचियमरणं खेत्तावी० कालावी० भवावी० भावावीचियमरणं, दव्वावीचियमरणं चउव्विहं. तं०-णेरइयदव्वावीचियमरणं जाव देवदव्वाविचीयमरणं, जं णेरइया णेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं णेरइयाउअत्ताए गहिताइं ताइं दव्वाइं आवीचि अणुसमयं णिरंतरं मरतीतिकट्टु णेरइयदव्वावीचीमरणं, एवं जाव देवाणवि। खेत्तावीचियमरणं चउव्विहं- तंजहा- नेरयइखेत्तावीचियमरणं०,जे णं नेरइया नेरइयखेत्ते वट्टमाणा जाइं दव्वाइं णेरइयाउयत्ताए गहिताइं ||१२७|| सेसं जहा दव्वावीचियमरणे, कालेवि चउव्विहो, नवरं जं नेरइयकाले वट्टमाणो जाइं दव्वाइं सेसं तहेव, एवं भावआवीचिमरणेवि, णवरं जण्णं णेरइयभावे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं सेसं तहेव । इदाणिं ओहिमरणं, (२१५॥-२३२) अवधिर्मर्यादायां, अवधिनाम यानि

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

द्रव्याणि साम्प्रतं आयुष्कत्वेन गृहितानि पुनरायुष्कत्वेन गृहीत्वा मरिष्यति, इत्यतो अवधिमरणं, तंपि पंचविधं, तं०-दव्वो०खेत्तो० कालो०भवोधि०भावोहिमरणे, दव्वोधिमरणे चउव्विधे-णेरइया णेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं संपइं सरंति, जण्णं णेरइया ताइं दव्वाइं अणागते काले पुणोवि मरिस्संति नेरइए, एवं सेसावि, खेत्तोवधिमरणं चउव्विहं एमेव, णवरं जण्णं णेरइया णेरइयखेत्ते वट्टमाणा एवं णेरइयकाले वट्टमाणा णेरइयभवे णेरइयभावे वट्टमाणा. ओहिमरणं गतं !! इदाणिं आदियंतियं मरणं (२३६-२३१) आत्यंतिकं अवधिमरणविपर्यासाद्धि आदियंतियमरणं भवति, तंजहा- यानि द्रव्याणि सांप्रतं मरति, मुंचतीत्यर्थः, न ह्यसौ पुनस्तानि मरिष्यति, तंपि पंचविहं-णेरइयदव्वातियंतियमरणं०, जे णेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं संपयं मरंति ताइं दव्वाइं अणागते कालेण पुणो ण मरिस्संति तं णेरइयदव्वातियंतियमरणं भवति, एवं सेसाणवि, एवं खेत्तेवि कालेवि भवेऽवि भावेवि, आतियंतियमरणं गतं ॥ इदाणिं वलायमरणं- 'संजमजोगाविसन्ना मरंति जे तं वलायमरणं, जेसिं संजमजोगो अत्थि ते मरणमब्भुवगच्छंति, ण सव्वथा संजमभुज्झंति, से तं वलायमरणं, अथवा वलंता क्षुधापरीसहेहिं मरंति, ण तु उवसग्गमरणंति तं वलायमरणं ॥ इदाणिं वसट्टमरणं- 'इंदियाविसतवसगता' गाहा (२१७-२३२) जे इंदियविसयवसट्टा मरंति तं वसट्टमरणं, तद्यथा- शलभो रूववग्गो चक्षुरिंद्रियवशार्त्तो म्रियंते, एवं शेषैरपींद्रियैः (शेषाः) । अंतोसल्लमरणं 'लज्जाए गारवेण' गाहा (२१८-२३२) 'गारव' (२१९-२३२) एयं ससल्ल (२२०-२३३) गाहातयं सिद्धं, एवं अंतोसल्लमरणं, इदाणिं तब्भवमरणं भवति, तं केषां भवति केषां न भवतीत्युच्यते- 'मोत्तूण कम्मभूमय' गाथा (२२१-२३३) कंठ्या, केसिंचित्ति मनुष्याणां तिरिक्खजोणियाणं च, केसिंचि, ण सव्वेसामेव, गतं तब्भवमरणं । इदाणिं बालमरणं, असंजममरणमित्यर्थः । पंडिताण मरणं पंडितमरणं, विरतानामित्यर्थः, मिस्सा णाम बालपं- ||१२८||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

मरणे निक्षेपा भेदाश्च

डिताः, संयतासंयता इत्यर्थः, तस्स मरणं बालपंडितमरणं, छउमत्थमरणं छउमत्थसंयताण मरणं जाव मणपज्जवणाणीणं, केवलिणं मरणं केवलिमरणं ॥ गेद्धपट्ठं णाम मृतशरीरमनुप्रविश्य गृद्धद्वाराऽऽत्मानं भक्षयति, वेहाणसं नाम उब्बंधणं, आदिग्गहणेणं उस्सासणिरोधा, एते उण गिद्धपुट्ठवेहाणसमरणा कारजाते अणुण्णाता, 'भत्तपरिण्णा इंगिणि' गाथा (२२५-२३५) भत्तपच्चक्खाणं णाम केवलमेव भत्तं पच्चक्खातं, ण तु चंक्रमणादिक्रिया, पाणं वा ण णिरुंभति, इंगत इति इंगिणी, चलतीत्यर्थः, न चाहारयति चतुर्विधमपि,पायव इव (उवगमणं) पाओवगमनं, हत्थाइहिं छिन्नो दुमो व न चलति,मरणविभत्तिपरूवणात्ति पढमं दारं गतं॥ इदाणिं अणुभागात्ति, तत्थ गाहा-'सोवक्कमो य निरुवक्कमो य' गाथा (२२६-२३७) दुविहो मरणाणुभागो भवति, तंजहा-सोवक्कमो निरुवक्कमो य,अणुभागोत्ति बितियं दारं गतं॥ इदाणिं पदेसग्गा, अणंताणंता आयुगकम्मपोग्गला जेहिं एगमेगो जीवपदेसो वेढियपरिवेढितो,पदेसग्गात्ति तइयं दारं गतं ॥ इदाणिं कति मरति एगसमएणंति-'दोन्नि व तिन्नि य' (२२७—२२९ । २३७) तत्थावीयीयमरणं ताव णियमा मरंति सव्वे, तब्वज्जा सेसेसु आदिअंतिएसु सिया मरंति, जत्थ पुण ओही तत्थ आइयंतियं णत्थि, जत्थ वेहाणसं तत्थ गद्धपट्ठं णत्थि, एवं बालपंडितमिस्साणिवि परोप्परविरुद्धाणि, छउमत्थकेवलिमरणा य विरुद्धा, सेसाणि बुद्धया पेक्षाणि, कइ मरंति एगसमएणंति चउत्थं दारं गतं। इदाणिं कतिखुत्तो एकेक्के मरंति,एत्थ अप्पसत्थाण संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा, संखेज्जाणि ताव पंचेंदियाणं देसविरतदंसणसावगस्स, सेसाणं पुढविआउतेउवाउबेंदियतेंदियचउरिंदियाइएसु असंखेज्जाणि, वणस्सइकाइयाणं अणंताइं अप्पसत्थाइं, पसत्थाइं सत्त अट्ठ वा, अहवा केवलिमरणं एगं, कइखुत्तो एक्केक्कं मरइत्ति गयं। इदाणिं कतिभागो एक्केक्के मरणं मरइत्ति, तत्थ पढमे मरणे अणंतभागूणसव्वजीवाण मरणं, ॥१२९॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ||१३०||

जिनोक्तता

सेसेसु पुण मरणेसु अणंतभागो मरइ, तत्थ गाहा-'मरणे' (२३१-२३९) बुद्धया प्रेक्ष्यं। इदाणिं अणुसमयंति, पढमं जाव आयुगं धरेति, सेसाणं एक्कसमयं जहिं मरति। इदाणिं अंतरं- पढमचरिमाणं णत्थि अंतरं, सेसाण जच्चिरं कालं अंतरं होति। इदाणिं केवइयात्ति केवतियं कालं भवति, बालमरणाणि अणादीयाणि वा अपज्जवसिताणि, अणादियाणि वा सपज्जवसिताणि, पंडितमरणाणि पुण सातियाणि सपज्जवसियाणि, 'सव्वे दारा एते' गाथा (२३२-२४०) कंठ्या। 'एत्थं पुण अधिगारो' गाथा (२३५-२४१) एत्थ अहिगारो मणुस्समरणेणं, (तं) दुविधं- सकामं अकामं च, मोत्तुं अकाममरणं सकाममरणेण मरियव्वं। गतो णामनिप्फण्णो, सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं, तं इमं-'अण्णवं' सिलोगो (१२८सू० २४१) अर्णवो मन्यते मन्यंति वा तमिति महान् महंति वा तमिति, महांश्चासौ ओघश्च महौघः, तत्र द्रव्यमहार्णवः समुद्रो भावमहार्णवो भवः, महौघो नाम अनोरपारो, अगाधं अप्रतिष्ठानमित्यर्थः, तस्मिन् अर्णवे महौघे बहुसु पवादिसु एगो तरति दुत्तरं, एगो नाम रागदोसविरहितो, अहवा कम्ममलावगमना यदा शुद्धमेवगं जीवदव्वं भवति तदा तरति, दुक्खं उत्तरिज्जतीति दुरुत्तरं, कर्म्मगुरुत्वात् संसारिभिः अपरिमाण्यात्, अनुमानतश्च यस्तु तरति तीर्णो वा तत्थेगे महापण्णे, वर्त्तमानकालग्रहणं तरन्नेवासौ धम्मदेसणं करोति, ये तु निष्ठोच्चारणं कुर्वते ते अज्ञानोघतीर्थादुत्तरं(त्तीर्णाः)तत्र तरन्नपि सर्व एव धर्मदेसणं करेति, जतो विरुद्धं धीयमानं, तत्थेगे महापण्णा, तस्मिन्निति संसारार्णवे व्यवस्थितः, एक इति स एव रागद्वेषरहितः, न अन्नपाणादिहेतुं, अथवा संसारार्णवं तमवाप्यापि कश्चित् एव धर्मं देशयति, तद्यथा- तीर्थकरः, अपरे हि केवलमवाप्यापि नैव धर्मं देशयंति, तद्यथा- प्रत्येकबुद्धा, तित्थकरो णियमा धम्मं देसेति, सेसा साधु भयणीया, स एकः महती प्रज्ञा यस्य स भवति महाप्रज्ञः, 'इदं पट्ठमुदाहरे' स्पष्टं नामासंदिग्धं उदाहृतवा- ||१३०||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०|| दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ॥१२१॥

सकामा-काम-विभागः तत्स्वा-मिनः

न् , पठ्यते च 'इदं पण्हमुदाहरे' पृच्छंति तमिति प्रश्नः, किमुदाहेर?, 'संतिमे खलु दुवे ठाणा'सिलोगो (१२९सू० २४१) संति विद्यंते, दुवे इति संख्या, तिष्ठंति यत्र तत् स्थानं, आख्याताः प्रथिता, मृत्युर्मरणं अमनमंतः मरणांते भवा मारणान्तिकाः, तद्यथा-अकाममरणं चेव सकाममरणं तथा, अकामस्स मरणं अकाममरणं,सकामस्स मरणं सकाममरणं, एतं दुविहंपि मरणं कस्स भवति ?, उच्यते 'बालाणं अकामं तु' सिलोगो (१३०सू० २४२) द्वाभ्यामाकलितो बालो, रागद्वेषाकुलित इत्यर्थः, ते हि बाला अकामा मरंति, न उस्सवभूतं मरणं मन्नंति, तत्थ असकृत्-अनेकशः, पापाड्डीनः पंडितः, पंडा वा बुद्धिः तया इतः-अनुगतः पंडितः तेसिं पंडितानां सकाममरणं, तं तु सति-उक्कोसेण एक्कसिं भवति, तं केवलिनः, असौ हि तं मरणं नेत्येव इत्यतः सकाममरणं, कामं जीविते मरणे वाऽप्रतिबद्धाः अकेवलिनोऽपि, तहावि दीहं संजमजीवितमपि नेच्छंति, किमु भवग्गहणजीवितं ?, एतेसिं अकामसकाममरणानां किमंग पढमं भाणितव्वंति ?, उच्यते, 'तत्थिमं पढमं ठाणं' सिलोगो (१३१ सू० २४२) तस्मिन्निति-तस्मिन् मरणविभागे इममिति-प्रत्यक्षं हृदि व्यवस्थाप्य भणति- पढममिति, यतो द्वितीयाद्यत् प्रथमं तत्, स्थाप्यत इति स्थानं, महंतं वीरियं जस्स सो महावीरो तेण महावीरेण, देसियं परूवितं अक्खातमिति, काम्यत इति कामः, गृध्यते स्म गृद्धः,यथा येन प्रकारेण बालो भवति, संति अत्यर्थं अतिरुद्राणि कर्माणि कुव्वति-कुर्वति ॥ 'जे गिद्धे कामभोगेहिं' सिलोगो (१३२ सू० २४२) जे इति अणिद्दिट्ठस्स उद्देशे, गृध्यते स्म गृद्धः,काम्यन्त इति कामाः,भुज्जंत इति भोगाः,कामा इति विसयाः,भोगाः सेसिंदियविसया,कामा य भोगा य कामभोगाः तेसु ॥१२१॥ कामभोगेसु,एगो एको नाम बालः,अथवा एकं मरणमवाप्य सुहृद्धनधान्यान्यवहाय कूडाय गच्छति, कूडं नाम एव (यंत्रं) यत्र ते पाशाःकर्मण्यव्बोध्य(भिर्बाध्यं)ते,तत्र कूडबद्ध एव मृगःनरकपालव्याधैर्हन्यमानो दुःखमुत्तरति,अथवा कूडं दुविहं-दव्वकूडं च भावकूडं च,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ॥१३२॥

बालप्रवृत्तिः

दव्वकूडं यत्र मृगादयो बध्यन्ते, भावकूडं विषयापातो, तानासेवतेत्यर्थः, स च कामभोगातिप्रसक्तः यदि परेणोच्यते (तदा वक्ति-न मया दृष्टः परो नरकादिः लोको-भवो, विषयरतिस्तु दृश्यते, पश्यति) येन तच्चक्षुः तेण देट्ठा चक्षुदिट्ठा, इमा इति प्रत्यक्षीकरणे, येयमिष्टविषयप्रीतिप्रादुर्भावात्मिका रतिः, अप्येवं 'हत्थागता इमे कामा' (१३३ सू० २४३) हसंति येनावृत्य मुखं घ्नंति हंति वा हस्ताः, कश्चित्तु जातिमरणादिभिरुपपादितपरलोकसद्भावः ब्रूते- कामं परलोकोऽस्ति, तथापि हस्तागताः- हस्तप्राप्ता, न दूरस्था इत्यर्थः, कालेन भवाःकालिकाः, इमे हि आप्ता प्रत्युत्पन्नाः साम्प्रतमेव भुंजंति, दिव्यास्तु कालान्तरेण भविष्यंति वा नवा, न हि कश्चित् मुग्धोऽपि ओदनं बद्धेलनकं मुक्त्वा कालिकस्योदनस्यारंभं करोति, अवरस्तु संदिग्धपरलोक आह-को जाणाति परे लोको, जानातीत्याशंकायां, को जानातीति तत्त्वतः, तेण परलोको अत्थि वा णत्थि वा, इत्येवमस्मिन् संदिग्धेऽर्थे णणु ' जणेण सद्धिं होक्खामि ' सिलोगो (१३४सू० २४४) जायत इति जनः तेन सह परत्र भविष्यामि, एवं बाले पगब्भति, प्रगल्भति णाम धृष्टो भवति, करिष्यमाणकुर्वत्कृतेषु च प्रगल्भीभूतो कामभोगाणुरागेण कामणुरागेण केसं संपडिवज्जति इह परत्र च ॥ ' ततो से दंड-मारभति ' सिलोगो (१३५सू० २४४) प्रगल्भभावात् असाविति स बालः, दंड्यतेऽनेनेति दण्डः, समित्येकीभावे, एकीभावेन आर-भति समारभति 'तसेसु थावरेसु य' त्रसी उद्वेजने, त्रसंतीति त्रसाः, ष्ठा गतिनिवृत्तौ, तिष्ठंतीति स्थावराः 'अट्ठाए अणट्ठाए य' इयर्त्ति तेन इच्छंति वा तमिति अर्थः, अट्ठाय नाम यदात्मनः परस्य वोपयुज्जते, तद्विपरीतमनर्थाय, केवलमेवमेव हंति न तदुपभोगं करोति, अत्रोदाहरणं-जहा एगो पसुवालो प्रतिदिनं प्रतिदिनं मध्याह्नगते रवौ अजासु महान्यग्रोधतरुसमाश्रितासु तत्थुत्ताणओ निवन्नो वेणुविदलेन अजोद्गीर्णकोलास्थिभिः तस्य वटस्य पत्राणि छिद्रीकुर्वन् तिष्ठति, एवं स वटपादपः प्रायसः छिद्रपत्रीकृतः, ॥१३२॥

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाममरणे ॥१३३॥

अनर्थे पशुपालः

अण्णदा य तत्थेगो राइयपुत्तो दाइयधाडितो तं छायं समस्सितो, पेच्छते य तस्स वडपादवस्स सव्वाणि पत्ताणि छिद्दिताणि, तेण सो पसुपालतो पुच्छितो- केणेताणि पत्ताणि छिद्दीकताणि ?, तेण भण्णति- मया एतानि कीडापूर्वं छिद्रितानि, तेण सो बहुणा दव्वजातेणं विलोभेउं भण्णति-सक्केसि जस्स अहं भणामि तस्स अच्छीणि छिदेउं?, तेण भण्णति-वुड्ढब्भासत्थो होउ तो सक्केमि, तेण णगरं णीतो, रायमग्गसंनिकिट्ठे घरे ठवितो, तस्स य रायपुत्तस्स राया स तेण मग्गेण अस्सवाहणियाए णेज्जति, तेण भण्णति- एयस्स अच्छीणि फोडेहि, तेण गोलियधणुयएण तस्सऽहिगच्छमाणस्स दोवि अच्छीणि फोडिताणि,पच्छा सो रायपुत्तो(राया) जातो, तेण पशुपालो भण्णति- ब्रूहि वरं, किं ते प्रयच्छामि?, तेण भण्णति- मज्झ तमेव गामं देहि, तेण से दिन्नो, पच्छा तेण तम्मि पच्चंतगामे उच्छु रोवियं तुंबीओ य, निष्पन्नेसु तुम्बाणि गुले सिद्धित्तु तं गुडतुम्बयं भुक्त्वा भुक्त्वा गायते स्म 'अट्ठमट्टंपि सिक्खेज्जा, सिक्खियं न निरत्थयं। अट्ठमट्टप्पसाएण, भुंजए गुडतुंबयं ॥ १ ॥ तेण ताणि वटपत्राणि अणट्ठाए छिद्रितानि, अच्छीणि तु अट्ठाय, भूतग्गामं चोद्दसविहं-- सुहुमा पज्जत्तयापज्जत्तया बादरा पज्जत्तयापज्जत्तया बेंदिया पज्जत्तयापज्जत्तया तेइंदिया पज्जत्तयापज्जत्तया चउरिंदिया पज्जत्तयापज्जत्तया असन्निपंचेंदिया पज्जत्तयापज्जत्तया सन्निपंचेंदिया पज्जत्तयापज्जत्तया एवं चोद्दसविहंपि विविधं अनेकप्रकारैः हिंसइ, एवं सो एहा (५) 'हिंसे बाले मुसावादी' सिलोगो (१३६ सू० २४५) जहा से अट्ठाणट्ठाए हिंसति तथा मुसावाते अट्ठाणट्ठाए कूडसक्खिमाति करेति, मीयतेऽसौ मीयते वाऽनयेति माया, प्रीतिशून्य इति पिशुनः, शठ्यते शठयतीति वा शठः, शठो नाम अन्यथा संतमात्मानमन्यथा दर्शयति, मौ(मं)डिकचौरवत्, भुंजमाणे सुरं मंसं मन्यते स भक्षयिता येनोपभुक्तेन बलवन्तमात्मानमिति मांसं, एतदेव श्रेयो मन्यन्ते, परलोकसुखान्यपि तावन्न प्रार्थयति, ॥१३३॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाममरणे ||१३४||

अलस-कृत पापानां मलः

किमु मोक्षमिति, स एवं भोगेऽवितृप्तात्मा 'कायसा वयसा मत्ते' सिलोगो (१३७ सू० २४५)अहो मम सरीरबलं वीरियबलं वा, तथा बुद्धिर्मनो वाग्वा शोभितेति मत्या मत्तं, वित्तं नाम धणं विभवो वा तेण वा मत्तः, गृद्धश्च स्त्रीषु, 'दुहतो मलं संचिणाति' द्विधा-दुहओ मृद्नाति तमिति मलं, स्वयं कुर्वन् परैश्च कारयन्, अथवा अंतःकरणेन बाह्येन वा, तत्रान्तःकरणं नाम मनः बाह्यं वाचिकं, अथवा रागेण द्वेषेण च, अहवा पुन्नं पावं च, अहवा इहलोयबंधणं पेज्जं च, सम्मं चिणाति संचिणाति, शंसति व तेनेति शिशुः बाल इत्यतः, नास्य अगमं किंचिन्नागः, शिशुरेव नागः२ गंडूपद इत्यर्थः, मृद्यंति तामिति मृत्तिका, स हि शिशुनागः मृदं भुक्त्वा अंतो मलं संचिणति बहिश्चार्द्रभावत्वाद् देहस्य, स हि पांशूत्करेषु सर्पमाणः सर्वो रजसा विकार्यते, ततो घर्मरश्मिकिरणैरापीतस्नेहः ताभिरेव बहिरंतश्च प्रतप्ताभिर्मृद्भिः, शीतयोनिर्निर्दह्यमानो विभाव्यमाप्नोति, एष दृष्टांतः, उपनयस्तु एवमसावपि बाण(लः)स्वेऽपि सुसंचितमलः इहैव मारणांतिकै रोगैरभिभूयते, कथं तत्र भविष्यामः?, न हि पापकर्माणः सुखमृत्यवो भवंति, ते हि तैः पापकर्मभिः प्रत्युद्गतैरिहैव शुष्यंति ॥ 'ततो पुट्ठो आतंकेहिं' सिलोगो (१३६ सू० २४५) ततःतस्मादिति प्राक्पापकर्मोदयात् स्पृष्टवान् स्पृष्टः, तैस्तैर्दुःखप्रकारैरात्मानं तंकयतीत्यातंकः, तथाप्यंतकाले सर्वग्लानवान् ग्लानः समंतात्तप्पत इति परितप्यति, बहिरंतश्चेत्यर्थः, एवं 'पभीतो परलोकस्स' भृशं भीतः प्रभीतः, परलोकभयं नाम नारकादिष्वनिष्टवेदनोदयः, 'कम्माणुप्पेही' ताणि विहिंसादीनि दुश्चरितानि कर्माण्यनुप्रेक्षमाणः अनुचिंतयन् इत्यर्थः, अप्पा आत्मनिर्देशः, यद्यप्यसद्ग्रहात् विषयभयाद्वा प्राक् परलोकं न गणितवान् परलोके भयंति च, तथाऽप्यंतकाले सर्वस्यासन्नभयस्य(स्यात्) उत्पद्यते परलोकभयं वा, तथापि भूयिष्ठेषु नरकदुःखेषु भयमुत्पद्यते, तद्यथा— 'सुता मे णरए ठाणा' सिलोगो ||१३४||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०|| दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ||१३५||

पापा-नामपि परलोक नरकभयं

(१३९ सू० २४६) दीर्यंते पापकम्र्माण इति नरकाः, तिष्ठंति तस्मिन्निति स्थानं, तत्र रौरवमहारौरवलोलुगक्खदुक्खडादीनि अथवा कुंती वेयरणी य वा, शीलयतीति शीलं, अशोभनशीला इत्यर्थः, अथवा शुभं शीलं येषां नास्ति तेऽशीलाः, तुर्विशेषणे, किं विशेषयति?- निरयगतिगमणं, अशीलानां तु जा गति **'बालाणं कूरकम्माणं'** कृंतन्तीति क्रूराः पापा इत्यर्थः, हिंसाकर्म्मप्रवृत्ताः क्रूरकर्माणः, पगाढा णाम णिरंतराः, तीव्राः उक्कडा, जत्थेति यत्र, वेद्यंत इति वेदनाः शीता उष्णा च, अथवा शारीरमानसाः, **'तत्थोववातियं ठाणं'** सिलोगो (१४० सू० २४७) तत्थेति नरकेषु, उपेत्य तस्मिन् प्रपततीति प्रपातः, उपपातात्संजातमौपपातिकं, न तत्र गर्भव्युत्क्रांतिरस्ति येन गर्भकालान्तरितं तन्नरकदुःखं स्यात्, ते हि उत्पन्नमात्रा एव नरकवेदनाभिरभिभूयन्ते, यथा—येन प्रकारेण 'मे' इति मया 'त' मिति तं नरकदुःखं अणुस्सुतं परलोकभीरुभिः साधुभिराख्यायमानं अनुश्रुतं, अथवा बालादयोऽपि सम्प्रतिपद्यन्ते यथा पापकम्र्माणो नरकोपगा भवंति, ते य **'आधाकम्मेहिं गच्छन्ति'** आधाय कर्माणि आधाकम्र्माणि अतः तेहिं आधाकम्मेहिं यथाकर्मभिः, आधाकम्मेहिं तीव्रैस्तीव्रवेदनेषु चिरस्थितीयेषु च, एवंविधमध्यमामध्यमेष्वपि, स एवं परितप्पति, को दृष्टान्तः?- **'जहा सागडिओ जाणं'** सिलोगो (१४१ सू० २४१) येन प्रकारेण यथा, शक्यते धनं धान्यादि वोढुं शकटं,शकटेन चरति शाकटिकः, जानन्निति जानानः, सम्ममिति पर्व्वतगर्त्तारहितं, हिच्चा नाम हित्वा,महंतीति महान्,पथ्यतेऽनेनेति पथः, महांश्चासौ पथश्च२ राजवर्त्तिनीति शकटपथो वा, **विसमं मग्गमोगाढा** अयाणओ थाणुबहुले पत्थरखाणुबहुले वा आरूढः प्रपन्न इत्यर्थः, अहवा उगाढे उत्तिन्नो वा, अश्नुत इत्यक्षः अक्षस्य भंगे शोचत इति शोचयति-जतिऽहं खु एएण पहेण ण गच्छंतो ण मे सगडभंगो दव्वविणासो वा होंतो,एवं सोयति, दिट्ठं- ||१३५||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०|| दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ॥१३६॥

सपुण्य-मरणं

तस्स उवसंहारो इमो- 'एवं धम्मवियो०' सिलोगो (१४२ सू० २४१) एवं- अनेन प्रकारेण, धारेति संसारातो पडमाणं धम्मो, सो दसविधो समणधम्मो, विविधैः प्रकारैः उत्क्राम्य, अधम्मं-धम्मपडिवक्खो अधम्मो, सो य हिंसे बाले मुसावादी, तं पडिवज्जिया, बालो मच्चुमुहं पत्तो मरणं मृत्यु,खद्यते तत् खतंते वा तं इति मुखं,मृत्योर्मुखं२,प्राप्तवान् प्राप्तः, स यदा मृत्योर्मुखं प्राप्तः 'अक्खभग्गे व सोयति' एवं-सोऽवि एवं मरणसंनिधौ वेदनादिभिः स्वकर्मभिरात्मानमनुशोचमानः ॥ 'ततो से मरणंतंमि' सिलोगो (१४३ सू० २४८) तत इति तस्मात्,मरणमेवांतः मरणांतः, बाल उक्तः,समंता त्रसति संत्रसति, बिभ्यते येन तद्भयं, कतरस्मात्?, परलोकभयात्, मारिऊण अकामं तु- मरमाणे अकामत एव प्राप्ते, आतिक्रांतकालग्रहणं क्रियते, कश्चिदिह भूयिष्ठपापकर्मा नैव परितप्यते, सतु मरिऊणं अकामं तं नरकं प्राप्य परितप्यतीति वाक्यशेषः, भृशं तप्यति परितप्यते, धुत्ते वा कलिणाऽनुजितोऽनुशोचति, 'एयं अकाममरणं' सिलोगो (१४४ सू० २४८) एतोऽस्मात्, शेषं कंठ्यं, 'मरणंपि सपुन्नाणं' सिलोगो (१४५ सू० २४८) म्रियते येन तन्मरणं,पुणातीति पुण्यं, सह पुण्येन सपुण्यं, अपिरनुज्ञायां, मरणमपि तेषां जीवितवद्भवति, न हि ते तस्मात् उद्विजंते, उक्तं हि—'पूर्वप्रेषितपरिजनमुपवनमिव सर्वकामगुणभोज्जं। सुखमभिगच्छति पुरुषः परलोकसु(कं) संचितैः पुण्यैः ॥ १ ॥ 'जहा मेतमणुस्सुतं' ति यथा मया तदेतदनुश्रुतं आचार्यपारंपर्यात्, स्यादेतत्--कैराख्यातं ?, उच्यते, 'सुप्पसन्नेहिं अक्खातं' सुष्ठु प्रसन्नाः सुप्रसन्ना वीतरागा इत्यर्थः, अजातदकागमा द्वादश ह्रदा इव सुप्रसन्नाः, ततोऽनंतरागतमर्थं गणधराः सूत्रीकुर्वंतः एवमाहुः, सुप्पसन्नेहिं अक्खातं, पठ्यते वा 'विप्पसन्नमणाघातं' विविधैः प्रकारैः प्रसन्नाः, का भावना ?, न हि ते म्रियमाणा व्याकुलचेतसो भवंति, अत्यर्थं घातः आघातः न त्वाघातः अनाघातः, नासौ तस्य विधि- ॥१३६॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ॥१३७॥

सपुण्य-मरणं

वत्संलिखितात्मनः प्राणातिपातो गम्यते इत्यतो अनाघातं, इदं केषां ?, उच्यते–'संजताणं वुसीमतो' वशे येषामिन्द्रियाणि ते भवति वुसीमं, वसंति वा साधुगुणेहिं वुसीमंतः, अथवा वुसीमंतः ते संविग्गा, तेसिं वुसीमतां संविग्गाणं वा स्यादिति, अन्येऽपि गेरुयलिंगमादिणो अणसणेण मरंति तत्प्रतिषेधार्थं भण्णति-'ण इमं सव्वेसिं भिक्खूणं' सिलोगो (१४६ सू० २४९) ण इति प्रतिषेधे, इममिति प्रत्यक्षभावे, सर्वेषां तावत् भिक्खुणं न भवति, शाक्यपरिव्राजकादीनां न भवति, भावभिक्खूणं तु भवति, अगारमस्यास्तीति अगारी, अगरिणामपि सर्वेषां न भवति, ये हि लिंगमभ्युपेत्य संलेखनाजोषितात्मानः तेषां पंडितमरणं, न शेषाणां दृष्टीनां, स्यादेतत्-किं सर्वेषां तदस्तीति निगद्यते 'नानासीला य गारत्था' नानार्थांतरत्वेन शीलयंति तादिति शीलं-स्वभावः, अगारे तिष्ठंतीत्यागारत्था, ते हि नानाशीला, नानारुचयो- नानाच्छंदा भवंति, ये तावत् मिथ्यादृष्टयः ते क्वचित् मोक्षं नैवेच्छंति, यथा मरुकाः, कुप्रवचनभिक्षवोऽपि केचिदभ्युदयावेव यथा तापसाः पांडुरागाश्च, येऽपि मोक्षायोत्थिता तेऽपि तमन्यथा पश्यंति, केचिदारंभात् केचिद्देसादिभ्यः सारंभादित्यतो णाणाशीला य गारत्था, लोकोत्तरघरत्था हि ण सव्वे सीलधणा न स्व(च वव)सिता मरंति, तथैव लोकोत्तरभिक्षवोऽपि ण सव्वे अणिदाणकरा णिस्सल्ला वा, ण वा सव्वे आसंसापयोगानिरुपहततपसो भवंति इत्यतो विसमसीला य भिक्षुणो। किंचान्यत्-'संति एगेहिं भिक्खूहिं' सिलोगो (१४७ सू० २४९) संतीति विद्यंते, एके नाम प्रवचनभिक्षवः, न चरकादयः, ते अगारत्था संजमुत्तरा, कतरेति ?, श्रावकाः, ते हि ज्ञानपूर्वकं परिमितमेवारंभंते सघृणा, सातुरा न स्युः, इत्यतः संति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था संजमुत्तरा, उक्तंच- 'देसेक्कदेसविरता समणाणं सावगा सुविहियाणं । जेसिं परपासंडा सयमवि कलं न अग्घंति ॥ १ ॥ स्यादेतत्-श्रावकसाध्वोः किमंतरं ?, उच्यते, गारत्थेहि य सव्वेहिं साहुसावएहिं परतित्थिएहि य साधवः संजमुत्तरा, आहरणं- ॥१३७॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०|| दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रावक सद्गतिः

एगो सावगो साधुं पुच्छति- सावगाणं साधूण य किमंतरंति ?, साधुणा भण्णति· सरिसवमंदरंतरं, ततो सो आउलीभूतो पुच्छति कुलिंगीण सावगाण य किमंतरंति ?, तेण भण्णति–तदेव सरिसवमंदरंतरं, स आसासितो। अत्राह-ननु कुलिंगिनोऽपि तल्लिंगमाश्रित्य धर्मार्थं घोराणि तपांस्याचरन्ति, तेभ्यः कथं श्रावको गुणविशिष्टः?, ण ताणि लिंगाणि भयात् त्राणाय इत्यतोऽपदिश्यते– 'चीराइणं' सिलोगो (१४८-२५०) चिर्त्तति तदिति चीरं-वल्कलं, अजति तेनेत्यजिनं चर्मेत्यर्थः, णियणं णाम नग्गा एव, यथा मृगचारिका उद्दण्डकाः आजीवकाश्च, जोयत इति जडाः, संघातीत्यत इति संघाटी, मुंडी आशिखः, एताणिवि ण ताणाए, ण य ताणि यावत् उद्दिष्टानि, अपिरनुज्ञायां, अन्यान्यपि यादृशानि, परिगमनं पर्यायः, गिहत्थपरिआगतो अन्नो परियाओ दुस्सीलाणं परियागता। आह– ननु तेऽपि धर्मार्थमेव पाकादिनिवृत्ता भिक्षाहारा एव, उच्यन्ते— 'पिंडोलएवि दुस्सीलो' ||१४९-२५०|| सिलोगो, पिंडेसु दीयमाणेसु ओलेंति पिंडोलगाः,नयन्ते तस्मिन् पापकर्मा स्वकर्मभिरिति नारकाः, अत्रोदाहरणं— रायगिहे नगरे एक्को पिंडलओ णेउज्जाउज्जाणियाविणिग्गतो भिक्खं हिंडति, ण य किणवि किंचिद्दिन्नं, सो तेसिं वेभारगिरिपव्वतकडगसन्निविट्ठाण पव्वतोवरिं चडिऊण महतिमहालयं सिलं चालेति, एतेसिं उवरिं पाडेमित्ति रोद्दज्झाई विच्छुट्टिऊण तओ सिलाओ पडितो णिविट्ठो सिलातले, संचुण्णितसव्वकायो य मरिऊण अप्पइट्ठाणे णरए उववण्णो, एवं पिंडोलओ दुस्सीले णरगातो ण मुच्चति 'भिक्खाए वे' ति अकु भक्षणे, भिक्षामाकुरिति भिक्षाकः, धर्मार्थं कामान् गृह्णातीति गृही, व्रियत इति व्रतं शोभनं व्रतं यस्य स भवति सुव्रतः, क्रमति गच्छति, दिव्यति तस्मिन्निति दिवं, सुव्रते कमते दिवं, सुव्वतो दुविधो·आगारी अनगारी च, किमनयोः फलमिति ?, गृहिसुव्रतस्य तावत् 'अगारि सामाइयंगाणि' ||१३८||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

॥१३९॥

श्रावक सद्गतिः

॥१५०-२५०॥ सिलोगो, अगारमस्यास्तीति अगारी, अगारसामाइयस्स वा अंगाणि आगारिसामाईयंगाणि, समय एव सामाइयं, अङ्ग्यतेऽनेनेति अंगं, तस्स अंगाणि बारसविधो सावगधम्मो, तान्यगारसामाइयंगाणि, अगारिसामाइयस्स वा अंगाणि, 'सड्ढी काएण फासए' श्रद्धा अस्यास्तीति श्रद्धी स चैवं धम्मंमि मोक्खे वा, 'काएणं' ति कायो-सरीरं तेण फासए, ते न केवलं काएण, मणसा वायाएवि, सव्वदुक्करं काएण, 'पोसहं' इत्येतत् प्रोसहग्रहणात्। किंचान्यत्— पोसहं उभयतो पक्खं, पतत्यनेनेति पक्षः, एकैकस्य द्वौ द्वौ, कृष्णशुक्लौ भवतः, रातीति रातिः, एगंपि राइं ण हवेज्जा, चतुर्विधस्यापि पौषधस्य येन केनचित् समस्तेन व्यस्तेन वा पौषणगुणेण अवञ्झं दिवसं कुज्जा, रातादिगहणेणं जइ दिवसतो ण सक्केति वातुलत्तणेण अ(पु)ड्डत्तत्तणेण वा, तहावि देसावगासियं, असति य तस्सेसं वा पच्चक्खाति, अथवा बंधानुलोम्यात् रात्रादेरेकतरग्रहणेऽपीतरस्य ग्रहणात् वेदितव्यं भवति। 'एवं सिक्खासमावन्नो' ॥१५१-२५१॥ सिलोगो, एवम्-अनेन प्रकारेण, शिष्यतेऽनेनेति शिक्षा, सम्यगापन्नो, गिहेसु वासो गिहवासो, शोभनान्यस्य(व्रतानि) सुव्वए य, 'छव्वाओ' छादयति छादयंति वा दमिति छिद्यते वाऽसौ छवि, पुज्जए एभिः शरीराणीति पव्वाणि इत्यर्थः, जाणुकोप्परादयः, कोऽभिप्रायः?, नासावन्यतमे च सपर्वशरीरे आगारी मुच्यते, किन्तु नासावनन्तरभविकं छविपर्वमासादयति, स हि पर्वसरीरं मुक्त्वा 'गच्छे जक्खसलोगयं' जयन्ति यान्ति वाऽक्षयमिति यक्षाः, तेषां सलोकतां समानलोकतां गतमित्यर्थः, तओ चुओ पुणो छविपव्वसरीरमासादेऊण चारित्रवान् भूत्वा सिद्ध्यति, उक्तं अगारिसामाइयंगाण फलं, एतदपि पच्छिमसंलेहणाजूसणजूसितस्स सकाममरणमेव, अणगारसकाममरणफलप्रसिद्धये इदमुच्यते— 'अह जे संवुडे भिक्खू' ॥ १५२ ॥ सिलोगो, पुव्वं प्रेक्षताऽपेक्षो अथशब्दः, संवृत्तः 'दोण्हमे- ॥१३९॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०||

दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ५ अकाम-मरणे ||१४०||

अनगार सकाम-मरणं

गयरे सिया' अयं चान्यः अयं चान्यः अयमन्ययोरन्यतरः, कतरंसि जंसि सो अन्नतरो भवति, ननु 'सव्वदुक्खप्पहीणे वा' सव्वाणि दुक्खाणि— सारीरमाणसाणि, महती ऋद्धिरस्य स भवति महड्ढी, यः स्यादुदितः स कतरे उववज्जइ?, विमाणेसु, उच्यते—'उत्तराइं' ||१५३-२५२|| सिलोगो, उत्तराणि नाम सव्वोवरिमाणि जाणि, ताणि हि सव्वविमाणुत्तराणि, तेसिं तु अण्णाइं अणु(उ)त्तराइं णत्थि, इत्यतः अणुत्तराइं, विमोहाइं विमोहानीति निस्तमांसीत्यर्थः, तमो हि बाह्यमाभ्यन्तरं च, बाह्यं तावदन्येष्वपि देवलोकेषु तमो नास्ति, किं पुनरनुत्तरविमानेषु?, अभ्यंतरतममधिकृत्यापदिश्यते— सर्वे एव हि सम्यग्दृष्टयः, अथवा मोहयंति पुरुषं मोहसंज्ञातः स्त्रियः, ताः तत्र न, सातं, द्योतते तेनेति द्युतिः द्युतिस्तेषां विद्यत इति द्युतिमंतानि, अणुपुव्वसो नाम जारिसया सोहम्मईसाणेसु ङ्कितीओ एत्तो अणंतगुणविसिट्ठा अणुत्तरेषु, ताणि पुण विजयादीणि पंच, समाइण्णाइ जक्खेहिं, सर्वतः कामतस्तं वा आकीर्णानि समाकीर्णानि, अथवा सम्यगाकीर्णानि प्रतिभागशः तानि, सन्निकृष्टविप्रकृष्टरि(नी)त्यर्थः, आवसंति तेष्वपि आवासानि, अश्नुते लोकेष्विति यशः, यश एषामस्तीति यशांसीति, न तेषु मनुष्यता कस्यचिदस्ति येन यशोभागिनस्ते न स्युरिति, येऽपि तत्र नोत्पद्यंते तेऽपि कल्पोपगेषूपपद्यमाना, तेऽपि तत्र यान्युत्तराणि तेषूपपद्यंते, उक्ता विमानगुणाः। अथैषां के गुणास्तत्रोपपन्नानां?, उच्यते-'दीहाउया' ||१५४|| सिलोगो, दीर्यत इति दीर्घः एति याति वा तस्मिन् इत्यायुरित्यनेनेति, ऋद्धिः सम्यक् ऋद्ध्यन्ते समृद्धाः सर्वसंपदुपपेताः, कामतः रूपाणि कुर्वन्तीति रूपाः कामरूपाः, स्याद्-अनुत्तरा न विकुर्वन्ति, ननु तेषां तदेवेष्टं रूपं येन सत्यां शक्तौ प्रयोजनाभावाच्च नान्यद्विकुर्वन्ति, 'अहुणोववन्नसंकासा' अभिनवोपपन्नस्य देहस्य सर्वस्यैवाभ्यधिका द्युतिर्भवति अनुत्तरेष्वपि, अनुत्तरास्तु आयुःपरिसमाप्तेः अहुणोववन्नसंकासा एव भवंति, स्यात्-तेषामभिनवोपपन्नानां कीदृग् प्रभा?, ||१४०||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०|| दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

उच्यते- ‘भुज्जोअच्चिमालिप्पभा’ भूयो विशेषणे, अर्चते अर्चिः अर्च्चयन्ति वा तमिति अर्चिः अर्चीश्चास्यास्तीति अर्चिष्माली स चादित्यः, भूयोग्रहणादादित्यादप्यधिक एव। ‘ताणि ठाणाइं गच्छन्ति’ ॥१५५-२५२॥ सिलोगो,‘ताणी’ ति जाणि ताणि उद्दिट्ठाणि, तिष्ठन्तीति ठाणाणि, गच्छन्ति व्रजन्ति, सिक्खित्ता ज्ञात्वा, करेत्ता य, संजमो सत्तरसविहो, स तु को तत्र गच्छति ?, उच्यते, ‘भिक्खाए वा गिहत्थे वा’ अकु भक्षणे भिक्षां आकुः भिक्खाए, गिहत्थो भणितो, किं सर्व एव भिक्खागो गिहत्थो वा ?, नेति, ‘जे संति परिनिव्वुडा’ जे इति अणिद्दिट्ठस्स उद्देसे, शमनं शान्तिः उपशम इत्यर्थः,सर्वतो निर्वृतः परिनिर्वृतः, शान्तिपरिणिव्वुडे य, अक्रोधवानित्यर्थः, ‘तेसिं सोच्चा’॥१५६-२५३॥ सिलोगो, तेसिं-ते पुव्वुद्दिट्ठाणं अगारीणं अणगारीणं च सोभणा पुज्जा सुपुज्जा सतां वा पुज्जा सपुज्जा, संजमतवे से चिट्ठंति जेसिं इंदियाणि वसंति वा जेसु गुणा गुणेसु वा जे वसंति ते वुसिमन्तः,‘ण संतसंति मरणंते’ ण इति पडिसेधे, समस्तं त्रसति२, मरणमेव अंतो मरणंतो मरणे वा वसंतः मरणान्तः,आवीचिकमरणं वाऽधीकृतं तदेव मरति इदमन्यत् अन्त्यमरणं येन भवः छिद्यते, ते हि कृतपुण्यत्वात् ण संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुता,उक्तं सकाममरणं। इदानीमनयोः सकामाकाममरणयोः कतरेण मरितव्यमिति?,उच्यते-‘तुलिया विसेसमादाय’॥१५७-२५३॥सिलोगो, तोलयित्वा तुलया यत्र गुणैर्विशिष्यते बुद्ध्या आदाय-गृहीत्वा तेनैव मर्तव्यं, तदेव आदेयमिति, अहवा अयं विसेसो-बालमरणमणिच्छतो भवति, इयं तु सकामस्स, अथवाऽयं विसेसो- दयाधम्मो खंतीति, एवं विसेसमादाय बुद्ध्या, ‘विप्पसीइज्ज मेधावी’ विविधं पसीएज्जा मेराया धावतीति मेधावी, तथाभूतेन अप्पणा-तेन प्रकारेण भूतस्तथाभूतः, रागद्वेषवशगो ह्यात्मा अन्यथा भवति, मद्यपानां विस्र(चित्त वत्,) तदभावे तु आत्मभूत एव, अथवा यथैव पूर्वमव्याकुलमनास्तथा मरणकालेऽपि तथाभूत एव महत्तरं तुलयि-

॥१४१॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१२८-१६०|| दीप अनुक्रम [१२९-१६०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ६ क्षुल्लक-निर्ग्रंथीयं ॥१४२॥

देहभेदाकांक्षा

त्वा महंतस्सकाममरणात्ति(न्तं)प्रपन्नः। 'तओ काले अभिप्पेए'॥१५८-२५४॥ सिलोगो,तत इति क्रमः,अभिप्रेतं यदाऽस्य तन्मरणं रुचितं भवति, कोऽर्थः ?, यदाऽस्य योगा नोत्सर्प्पन्ति तस्मिन् काले, अभिमुखं प्रीतिवानित्यर्थः, अभिप्रेत एवासौ तस्य मरणकालः, योगहानिनिमित्ता, संलेखनादिभिः उपक्रमविशेषैः उपक्रम्यात्मानं, श्रद्धा अस्यास्तीति श्राद्धी, रलयोरेकत्वे तादृशः, यथा वाऽभ्युपगच्छतो,धर्म्मः संलेखना वा,तथा अंतकालेऽपि,उक्तांहि 'जाए सद्धाए णिक्खंतो, तमेव अणुपालेज्ज' तत्र चास्योत्कृष्टात्मनः यदि नाम तेषां उपसर्गा उत्पद्यन्ते क्षुधादयो वा आत्मसमुत्थाः ततस्तेषूपपन्नेषु 'विणएज्ज लोमहरिसं' विनयो नाम विनाशः, यथा विनीता गौरिति, लुनाति लूयंते वा तानि लीयंते वा तेषु यूका इति लोमानि लोम्नां हर्षः२,सतु भयाद्भवति, अनुलोमैर्वा उपसर्गैर्हर्षाद् भवति तं विनयित्वा, उभयथापि, न केवलं 'भेदं देहस्स कंखए' भिद्यत इति भेदः, अष्टविधकर्म्मशरीरभेदं कांक्षिति, नतूदारिकस्य। 'अथ कालंमि संपत्ते'॥१५९-२५४॥अथेत्यानन्तर्ये संलिखितात्मा मरणमपेक्ष्यते, सुट्ठु अक्खातं२ आदावेव तस्स मरणाभिधानमाख्यातं सुअक्खातं, सम्यक् आहितो समाहितो सुतक्खातसमाहितो, केचित्पठन्ति-'आघायाए समुच्छयं अत्यर्थं घातः आघातः, आघातसमुच्छ्रयो णाम सरीरं, तद् बाह्यमाभ्यन्तरं वा बाह्यमौदारिकं,तं संलिहिउं तेन च संलिहितेन द्रव्यतः भावतः अब्भिंतरं कम्मगसरीरं घातितं भवति अतो आघाताय समुच्छयंति, सकाममरणं मरति तिण्हमन्नयरं मुणी, तंजहा भत्तपच्चक्खाणं इंगिणी वा पाओवगमणं वा,मनुते मन्यन्ते वा जगति त्रिकालावस्थान् भावान् मुनिरिति॥अकाममरणाध्ययनं सम्मत्तम्५॥ ॥१४२॥

इदाणिं खुल्लयनियंठिज्जं, तस्स चत्तारि अणुओगदारा उवक्कमादि परूवेऊण जाव नामनिप्फन्नो णिक्खेवो क्षुल्लगनियंठिज्जंति, खुल्लयंति आवेक्खितं पदं महंतं अवेक्ख भवति, तं पुण महानियंठिज्जे, तहा खुल्लयं निक्खियव्वं, नियंठो निक्खिवियव्वो,

अध्ययनं -५- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -६- "क्षुल्लकनिर्ग्रन्थिय" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

खुल्लगस्स पढमं णिक्खेवो, तं महंतं पडुच्च संभवतित्ति महंतमेव परूवेयव्वं, तं महंतं अट्ठविहं, तत्थ गाहा-'नामं ठवणा'॥२३६-२५५॥ गाहा, नामठवणाओ गयाओ, दव्वमहंतं अचित्तमहाखंधो, सो सुहुमपरिणयाणं अणंताणंतपदेसियाणं खंधाणं तब्भावणापरिणामेण लोगं पूरेति जहा केवलिसमुग्घातो दंडं कवाडं मन्थुं अंतराणि चउत्थे समए पूरेति, एवं सोऽवि चउत्थे समए सव्वं लोगं पूरेत्ता पडिनियत्तति एतं दव्वमहंतगं, खेत्तमहन्तगं सव्वागासं, कालमहंतगं सव्वद्धा, पहाणमहंतं तिविहं- सचित्तं अचित्तं मीसगं, तत्थ सचित्तं तिविहं— दुपदं चउप्पदं अपदंति, दुपदाण पहाणो तित्थयरो, चउप्पदाण हत्थी, अपदाणं अरविंदं, अचेदाणं वेरुलिओ, मीसगाणं भगवं तित्थगरो सविभूसणो, पडुच्चमहंतं आमलकं प्रति बिल्लं महंतं, एवमादि, भावमहंतं तिविहं- पाहण्णतो कालतो आसयतो, पाहण्णओ खइओ भावो महंतो, कालओ परिणामिओ जीवो, जं जीवदव्वम-जीवदव्वं वा सता तहा परिणमति, आसयओ ओदयितो भावो, तंमि भावे बहुतरा जीवा वट्टंति, महंतगं, तस्स पडिवक्खो खुल्लयं निक्खिवियव्वं, तंपिअ छव्विहमेव, णामठवणाओ गयाओ, दव्वखुड्डगं परमाणू, खेत्तखुड्डगं आगासपदेसो, कालखुड्डयं समयो, पहाणखुड्डयं तिविहं—दुपयं चउप्पयं अपदं च, दुपदाणं पंचण्हं सरीराणं आहारगं, चउप्पदाणं खुड्डयं सीहो, अपदाणं लवंगकुसुमं, अचित्ताणं वइरो, मीसगाणं तित्थगरो जम्माभिसेयकाले अलंकारसहितो, पडुच्चखुड्डयं आमलगातो सरिसवो, भावखुड्डुयं सव्वत्थोवा जीवा खइए भावे, एत्थ पडुच्चखुड्डएण अधिकारो, खुल्लक इति गतं। इदाणिं णियंठो, तत्थ गाथा—'निक्खेवो नियंठंमि' (२३७-२५५) नामठवणाओ गयाओ, दव्वणियंठो दुविहो—आगमतो णोआगमतो य, आगमतो जाणए अणुवउत्तो, णोआगमतो य 'जाणगसरीर' ॥२३८-२५६॥ जाणयभवियसरीरवइरित्तो दव्वणियंठो णिण्हगादी, आदिग्गहणेण ॥१४३॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ६ क्षुल्लक निर्ग्रंथीयं ||१४४||

पासत्थोसन्नकुसीलसंसत्तअहाछंदा, भावणियंठो दुविहो-आगमतो णोआगमतो य, आगमओ जाणउवउत्तो, णोआगमतो णियंठयत्ते वट्टमाणा पंच, तंजहा-पुलाए बकुसे कुसीले णियंठे सिणाए। पुलातो पंचविहो, जो आसेवणं प्रति, णाणपुलातो दरिसणपुलातो चरित्तपुलातो लिंगपुलातो अहासुहुमपुलागोत्ति। पुलागो णाम असारो, जहा धन्नेसु पलंजी, एवं णाणदंसणचरित्तणिस्सारत्तं जो उवेति सो पुलागो, लिंगपुलागो लिंगाओ पुलागो होंतो, अहासुहुमो य एएसु चेव पंचसुवि जो थोवं थोवं विराहेति, लद्धिपुलाओ पुण जस्स देविंदरिद्धिसरिसा रिद्धी, सो सिंगणादियकज्जे समुप्पण्णे चक्कवट्टिंपि सबलवाहणं चुण्णेउं समत्थो। बउसा, सरीरोपकरणविभूषाऽनुवर्त्तिनः ऋद्धियशस्कामाः सातगौरवाश्रिताः अविविक्तपरिवाराः छेदशवलचारित्तजुत्ता णिग्गंथा बउसा भण्णंति, ते पंचविहा, तंजहा-आभोगबकुसा अणाभोगबकुसा संवुडबकुसा असंवुडबकुसा अहासुहुमबकुसा। आभोगबकुसा आभोगेण जो जाणंतो करेइ, अणाभोगेण अयाणंतो, संवुडो मूलगुणाइसु, असंवुडो तेसु चेव, अहासुहुमबकुसो अच्छीसु दूसियादि अवणेति, सरीरे वा धूलिमाइ अवणेति। कुत्सितं शीलं यस्य पञ्चसु प्रत्येकं ज्ञानादिषु सो कुसीलो, दुविहो-पडिसेवणाकुसीलो कसायकुसीलो य, सम्माराहणविवरीया पडिगया वा सेवणा पडिसेवणा, पंचसु णाणाइसु, कसायकुसीलो जस्स पंचसु णाणाइसु कसाएहिं विराहणा कज्जति सो कसायकुसीलोत्ति। णियंठो अब्भितरबाहिरगंथणिग्गतो, सो उवसंतकसातो खीणकसातो वा अंतोमुहुत्तकालितो, सो पंचविहो-पढमसमयणियंठो अपढमसमयनियंठो, अहवा चरमसमयनियंठो अचरमसमयनियंठो, अहासुहुमणियंठोत्ति, अंतोमुहुत्तणियंठकालसमयरासीए पढमसमए पडिवज्जमाणो पढमसमयनियंठो, सेसेसु समयएसु वट्टमाणो अपढमसमयनियंठो, चरमे-अंतिमे समए वट्टमाणो चरमसमयणियंठो, अचरमा—आदिमज्झा, अहासुहुमो एएसु सव्वे-

पंच निग्रन्थाः ||१४४||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

सुऽवि। सिणातो-स्नातको, मोहणिज्जाइघातियचउकम्मावगतो सिणातो भण्णति, सो पंचविहो—अच्छवी असबलो अकम्मंसो संसुद्धणाणदंसणधरो अरहा जिणो केवली, अच्छवी—अव्यथकः, सबलो-सुद्धासुद्धो, एगंतसुद्धो असबलो, अंशा—अवयवाः कर्मणस्ते अवगया जस्स सो अकम्मंसो, संसुद्धाणि णाणदंसणाणि धारेति जो सो संसुद्धणाणदंसणधरो, पूजामर्हतीति अरहा, अथवा नास्य रहस्यं विद्यत इति अरहा, जितकषायत्वाज्जिनः, एसो पंचविहो सिणायगो। एस सद्दत्थोऽभिहितो, संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपातस्थानविकल्पतः साध्याः, एते पुलाकादयः पञ्च निर्ग्रन्थविशेषाः एभिः संयमादिभिरनुगमविशेषैः साध्या भवंति, तत्र च संजमे तावत् पुलागो बकुसो कुसीलो एते तिण्णिवि दोसु संजमेसु-सामाइए छेदोवट्ठावणिए य, कसायकुसीला दोसु-परिहारविसुद्धीए सुहुमसंपराए य, णियंठा सिणायगा य एते दोऽवि अहक्खातसंजमे। सुते पुलागबकुसपडिसेवणाकुसीला य उक्कोसेण अभिन्नदसपुव्वधरा, कसायकुसीलणिर्ग्रन्थौ चतुर्दशपूर्वधरौ, जघन्ये पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु नवमे पूर्वे, बकुसकुसीलनिर्ग्रन्थानां श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः, श्रुतादपगतः केवली स्नातक इति। इदानीं प्रतिसेवना—मूलगुणानां रात्रीभोजनस्य च पराभियोगात् बलात्कारेणान्यतमं प्रतिसेवमानः पुलागो भवति, मिथुनमेवेत्येके, बकुशो द्विविधः- शरीरबकुशः उपकरणबकुशश्च, तत्रोपकरणाभिष्वक्तचित्तः विविधाह(वर्ण)विचित्रमहाधनोपकरणपरिग्रहयुक्तो बहुविशेषयुक्तोपकरणकाङ्क्षायुक्तः नित्यतत्प्रतिकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति, शरीराभिषक्तचित्तो विभूषितार्थो तत्प्रतिकारसेवी शरीरबकुशः, प्रतिसेवनाकुशीलः मूलगुणानविराधयन् उत्तरगुणेषु कांचिद्विराधनां प्रतिसेवते, कसायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकानां प्रतिसेवना नास्ति। तीर्थमिदानीं, सर्वेषां तीर्थकराणां तीर्थेषु भवंति, एके त्वाचार्या मन्यन्ते— पुलाकबकुशप्र-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ६ क्षुल्लक निर्ग्रंथीयं ||१४६||

संयमादि-भिर्निर्ग्रंथ-विचारः

तिसेवनाकुशीलास्तीर्थे नित्यं, शेषास्तु तीर्थेऽतीर्थे वा । लिङ्गमिति लिङ्गं द्विविधं- द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं च, भावलिङ्गं प्रतीत्य सर्वे निर्ग्रन्थलिङ्गे भवन्ति, द्रव्यलिङ्गं प्रतीत्य भाज्याः । लेश्याः पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो लेश्या भवन्ति, बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः सर्वा अपि, कषायकुशीलस्य परिहारविशुद्धेस्तिस्र उत्तराः, सूक्ष्मसंपरायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला भवति, अयोगः शैलेशीप्रतिपन्नोऽलेश्यो भवति। उपपातः पुलाकस्योत्कृष्टस्थितिषु देवेषु सहस्रारे,बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोर्द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिष्वच्युते कल्पे, कषायकुशीलनिर्ग्रन्थयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपास्थितिषु सर्वार्थसिद्धे, सर्वेषामपि जघन्यं पल्योपमपृथक्त्वस्थितिषु सौधर्मे, स्नातकस्य निर्वाणमिति । स्थानम्-असंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवन्ति, तत्र सर्वजघन्यानि (संयम) लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशीलयोः, तौ युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतः, ततः पुलाको व्युच्छिद्यते, कषायकुशीलस्ततोऽसंख्येयानि स्थानान्येकाकी गच्छति, ततः कषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलबकुशा युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छन्ति, ततो बकुशो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते, ततोऽसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते, अत ऊर्ध्वमकषायस्थानानि गत्वा निर्ग्रन्थःप्रतिपद्यते, अत ऊर्ध्वमकषायस्थानं गत्वा निर्ग्रन्थः स्नातकः निर्वाणं प्राप्नोति,एषां संयमलब्धिरनन्तगुणा भवति,'उक्कोसो उ नियंठो'।।२३९-२६०।। गाहा,जो उक्कोसएसु संयमट्ठाणेसु वट्टति सो उक्कोसणियंठो भण्णति, जहण्णतो जहन्नएसु, सेसा अजहण्णमणुक्कोस्सात्ति, जेत्तियाणि संजमट्ठाणाणि तत्तिया णिग्गंथा,नास्य ग्रन्थो विद्यत इति निर्ग्रन्थः, निर्गतो वा ग्रन्थतो निग्गंथो,सो गंथो दुविहो।।२४०-२६०।।अब्भिंतरो बाहिरो य, अब्भंतरो चोद्दसविहो, बाहिरो दसविहो, अब्भिंतरो इमाए गाहाए भण्णति-'कोहो माणो माया'।।२४१-२६१।।गाथा,

||१४६||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ६ क्षुल्लक निर्ग्रंथीयं ||१४७||

कोहो अणंतविधोवि चउहा, एवं माणो माया लोभोऽवि, मायालोभो पेज्जं,कोहो माणो य दोसो य,णत्थि ण णिच्चो ण कुणइ कयं भयसप्तकम्
ण वेएति णत्थि णिव्वाणं । णत्थि य मोक्खोवाओ छम्मिच्छत्तस्स ठाणाइं ॥१॥ इत्थिवेयाईओ तिविहो वेओ य होइ बोद्धव्वो ।
अरती य संजमंमी होइ रतीऽसंजमे यावि ॥ २ ॥ हासो उ विम्हयादिसु सोगो पुण माणसं भवे दुक्खं। भयगंथो सत्तविहो तत्थ
इमो होइ नायव्वो ॥ ३ ॥ इह परलोयादाणे आजीवऽसिलोय तहा अकम्हाणं। मरणभयं सत्तमयं विभासमेएसि वोच्छामि ॥ ४ ॥
इहलोगभयं च इमं जं मणुयाईओ सरिसजाईओ । बीहेइ जं तु परजाइयाणं परलोयभयमेयं ॥ ५ ॥ आयाणऽत्थो भण्णति मा
हीरिज्जात्ति तस्स जं बीहे । आयाणभयं तं तू आजीवोमे ण जीवेऽहं ॥६॥ असिलोगभयं अयसो होति अकम्हाभयं तु अणिमित्तं ।
मरियव्वस्स उ भीए मरणभयं होइ एयं तु ॥ ७ ॥ एसो सुत्तविगप्पो भयगंथो वन्निओ समासेणं । अण्हाणमाइएहिं साधुं तु
दुगुंछति दुगुंछे॥८॥ति बाहिरग्रन्थे इमा गाहा-'खेत्तं वत्थुं वत्थूं'॥२४२-२६१॥ गाहा, खेत्तं दुविहं-केतुं सेतुं च, सेतुं अरहट्टादीणि-
पज्जाइं, केतुं वासेणं, वत्थुं तिविहं-खातं ऊसितं खातोसितं, खातं भूमिघरं, ऊसितं पासादो, खातोसितं भूमिघरोवरि पासादो, धणं
हिरण्णसुवण्णादीणि, धन्नं सालिमादि, दोवि एतं संचयोत्ति एक्कं भवति, सहवड्डियादि सही,णादिसंजोगोत्ति माइपिइससुरकुलसं-
बंधो, जाणं रधादि, सयणं पल्लंकादि, आसणं पीढकादि, दासीदासं एकं,कुवियं लोहोवक्खरमादिहिं।'सावज्जगंथमुक्का'॥२४३॥
गाथा कण्ठ्या। गतो नामणिप्फण्णो जाव सुत्ताणुगमे सुत्तं उच्चारेयव्वं-'जावंतऽविज्जा'॥१६०सू.२६२॥सिलोगो,यावत्परिमाणाव ॥१४७॥
धारणयोः, णाणंति वा विज्जात्ति वा एगट्ठं, न प्रतिषेधे, विद्यत इति विद्या नैषां विद्या अस्तीति अविद्या, पिबति प्रीणाति चात्मान-
मिति पुरुषः पूर्णो वा सुखदुःखानामिति पुरुषः पुरुषु शयनाद्वा पुरुषः, ससर्त्ति धावति वा सर्वं, [सुख]दुःखान्येषां संभवंतीति दुःख-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७|| दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

सम्भवाः,कामं उभयथाप्यविरोधो दुःखानि सम्भवन्तीति,अथ समासः शालि(शक्ति)सम्भवात्परिगृह्यते,न तु ये दुःखाः संभूताशयत्वात्, अथवा अविद्या दुःखादेव संभूता, उक्तं हि 'नातः परतरं मन्ये, जगतो दुःखकारणम् । यथाऽज्ञानमहारोगं, सर्वरोग-प्रणायकं॥१॥'एत्थुदाहरणं-एगो गोधो दोगच्चेण चइतो गेहाओ णिग्गतो, सव्वं पुहविं हिंडिऊण जाहे ण किंचि लहति ताहे पुणरवि घरं जतो णियत्तो, जाव एगंमि पाणवाडगसमीवे एगाय देवकुलियाए एगरत्तिं वासोवगतो, जाव पेच्छइ ताव देवउलियाओ एगो पाणो निग्गतो चित्तघडहत्थगतो, सो एगपासे ठातिऊणं तं चित्तघडं भणति- लहु घरं सज्जेहि, एवं जं जं सो भणति तं चिय घडो करेइ, जाव सयणिज्जं, इत्थीहिं सद्धिं भोगे भुंजति, जाव पहाए पडिसाहरति। तेण गोहेण सो दिट्ठो, पच्छा चिंतेइ-किं मज्झ बहुएण भणि(मि)एण ?, एतं चेव ओलग्गामि, सो तेण ओलग्गिओ, आराहितो भणति-किं करेमित्ति, तेण भण्णति-तुम्ह पसाएण अहंपि एवं चेव भोगे भुंजामि, तेण भण्णति-किं विज्जं गेण्हसि ?, उताहु विज्जाएऽभिमंतियं घडं गेण्हसि ?, तेण विज्जासाहण-पुरच्चरणभीरूणा भोगतिसिएण य भण्णति-विज्जाभिमंतियं घडयं देहि, तेण से विज्जाए अभिमंतिऊण घडो दिण्णो, सो तं गहाय गतो सगामं, तत्थ बंधूहिं सहवासेहिंपि समं जहारुइयं भवणं विगुरुव्वियं, भोगे तेहिं सह भुंजंतो अच्छति, कम्मंता य से सीदिउमारद्धा, गवादओ य असंगोविज्जमाणा प्रलयीभूताः, सो य कालंतरेण अतितोसएण तं घडं खंधे काऊण एयस्स पभावेण अहं बंधुमज्झे पमोयामि, आसवपीतो पणच्चितो, तस्स पमाएण सो घडो भग्गो, सो य विज्जाकओ उवभोगो णट्ठो, पच्छा ते गामेयगा प्रलयीभूतविभवाः परपेसाईहिं दुक्खाणि अणुभवन्ति, जति पुण सा विज्जा गहिया होंता ततो भग्गेऽवि घडे पुणोऽवि करेंतो। एवं अविज्जा णरा दुक्खाणि सम्भूताः क्लिश्यन्ते, अविद्यादनं(नरा) मिथ्यादर्शनमित्यर्थः, तच्चेदं-एते चेवऽनभिगता भावा

विद्या-मंत्रितो घटः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

विपरीततो अभिणिविट्ठा । मिच्छादंसणमिणमो बहुप्पयारं वियाणाहि ॥१॥ ते सव्वे एव मिच्छादिट्ठी दुक्खाणि संभूओपार्जेति, णागार्ज्जुनीयाः पठन्ति-'ते सव्वे दुक्खमज्जिता।लुंपंति बहुसो मूढा'तेहिं सारीरमाणसेहिं दुक्खेहिं लुंपंति,बहुसो नाम अणेगसो, बहूहिं वा दुक्खपगारेहिं वा, अहवा इह परत्र च मुह्यन्ते संमूढा, जहा समुद्दे वाणिया दुव्वायाहयजाणवत्ता दिसामूढा खणेण अंतो-जलगयपव्वयमासाएऊण भिन्नपोया महावीतिकल्लोलेहिं वुज्झमाणा कुम्मगमगराईहिं विलुप्पंति, एवं तेऽवि अविज्जा विलुप्पंति बहुसो मूढा,सारीरमाणसेहिं महादुक्खेहिं विलुप्पंति बहुसो मूढा,तत्त्वातत्त्वअजाणगा,संसारंमि अणंतए, अमनं अन्तः नास्य अंतो विद्यत इति अनन्तः, भणितं च-सूती जहा ससुत्ता, ण णस्सती होइ ओवमा एसा । जीवो तहा ससुत्तो ण णस्सति गतोवि संसारे ॥ १ ॥ 'तम्हा समिक्ख मेधावी' (समिक्ख पंडिए तम्हा) ॥ १६१-२६४ ॥ सिलोगो, अज्ञानिनामेवंविधं विपाकं ज्ञात्वा तस्मात् सम्यक् ईक्ष्य मेराया धावतीति मेधावी 'पास'त्ति पास, जायत इति जाती, जातीनां पंथा जातिपंथाः, अतस्ते जातिपंथा बहुं 'चुलसीतिं खलु लोए जोणीणं पमुहसयसहस्साइं ।' तब्भएण अप्पणा सच्चमेसेज्जा, अप्पणा णाम स्वयं, सच्चो संजमो तं सच्चं अप्पणा एसेज्जा-मग्गेज्जा, अत्राह-सत्यमेवास्तु, आत्मग्रहणं न कर्त्तव्यं, न हि कश्चित्परार्थं किंश्चित् करोति, उच्यते-मा भूत् कस्यचित्परप्रत्ययात् सत्यग्रहणं, तथा परो भयात् लोकरंजनार्थं पराभियोगाद्वा, आत्मग्रहणमित्यतः, स एगतो वा परिसा-गतो वा इत्युक्तं,नागार्जुनीयानां'अत्तट्ठा सच्चमेसेज्जा'न परार्थे यथा शाक्यानामन्यः करोति अन्यः प्रतिसंवेदयतीत्यत आचा-रति(त्मार्थमिति),यः सांख्यानां वा प्रकृतिः करोति,स्यात्किं सत्यं?, 'मित्तिं भूएहिं कप्पए' मेज्जंतो मेयंति वा तदिति मित्रं, मित्रस्येयं मैत्री, कल्पनाशब्दोऽप्यनेकार्थः, तद्यथा-'समार्थ्ये वर्णानायां च, छेदणे करणे तथा। औपम्ये चाधिवासे च, कल्पशब्दं विदुर्बुधाः॥१॥' ||१४९||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७|| दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ६ क्षुल्लक निर्ग्रंथीयं ||१५०||

सामर्थ्ये अट्ठममासे वित्तीकप्पो भवति, वर्णने विस्तरतः सूत्रं कल्पं, छेदने चतुरंगुलवज्जे अग्गकेसे कप्पति, करणे 'न वृत्तिं चिन्तयेत् प्राज्ञः, धर्ममेवानुचिन्तयेत् । जन्मप्रभृतिभूतानां, वृत्तिरायुश्च कल्पितम् ॥ १ ॥' औपम्ये यथा चन्द्राऽऽदित्यकल्पाः साधवः, अधिवासे जहा सोहम्मकप्पवासी देवो । अत्र करणे कल्पः शब्दः ॥ स्यात्- किमातट्ठाए केवलं सच्चो एसेज्जत्ति?, णणु बंधुत्तरेण णिमित्तंमिवि सच्चो एसितव्वो, उच्यते- 'माता पिता ण्हुसा भाया'॥१६२-२६५॥ सिलोगो, जहा एताणि न तव ताणाए वा सरणाए वा एवं तुमंपि तेसिं ण ताणाए वा सरणाए वा, अयमपरः कल्यस्तु न संयमः क्रियते, अयं हि बंधुनिमित्तमात्मनिमित्तं च, तत्र ता बहुभिरपि कारणविशेषैः संबद्धा माता पिता ण्हुसा, मातयति मन्यते वाऽसौ माता,(मिमीते)मिनोति वा पुत्रधर्मानिति माता, पाति बिभर्त्ति वा पुत्रमिति पिता, स्नेहाधिकत्वात् माता पूर्वं, स्नेहेति श्रवन्ति वा तामिति स्नुषा, बिभर्त्ति भयते वासौ भार्या, पुनातीति पुत्रः, इर्यति अर्यतेऽनेनेति उरः उरसि भवा औरसाः, अन्येऽपि सन्ति क्षेत्रजातादयः तत्प्रतिषेधार्थं औरसग्रहणं, 'णालं ते मम ताणाए' अलं पर्याप्तौ, न पर्याप्ताः त्राणादत्राणाय ते, त्रायते अनये(नेन)ति त्राणं, कुतो तत् त्राणं?,'लुप्पंतस्स सकम्मुणा' आत्मानमपि तावत्ते न त्रातुं समर्थाः, कुतस्तर्हि परेषां?, अथवा अविद्या उक्तास्तद्विपक्षे विद्या, सा च वैराग्यलक्षणा, तद्यथा- ननु एवमुपलब्धा भवति तदा विरक्त इति ज्ञेयः, कथं?, तदुच्यते- 'माता पिता ण्हुसा' आत्मदेशस्तु यदि केनचिदुच्यते- किमर्थं बन्धुभ्यो भवान् विरक्तः?, ततो ब्रवीति- माता पिता णालं ते ममं ताणाए सरणाए वा, यथैव बान्धवाः, एवं विभवा अपि, कथमात्मसंयमे प्रवृत्त इति । यतश्चैवं— 'एयमट्ठं सपेहाए' ॥ १६३-२६६ ॥ सिलोगो, एतदिति यदिदमुक्तं यथा बान्धवा न त्राणाय, सम्यक् प्रेक्षया सपेहाए, पाश्यतेऽनेनेति पाशः, सम्यगिदं दर्शनं दंसणे, अथवा समिदं जस्स दंसणं से भवति समिद-

मात्रादीनां न त्राण-कारिता ||१५०||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

दंसणे, आमन्त्रणे वा, एवं मत्वा यथा बान्धवा न त्राणायेति, 'छिंद गेर्हिं सिणेहं च,' गृद्ध्यतेऽनेनेति गृद्धिः, स्निह्यतेऽनेनेति स्निहः, तत्र गृद्धिः- तीव्राभिनिवेशः, स्नेहस्तु तात्पर्यं, अथवा गृद्धिः द्रव्यगोमहिष्यजाविकाधनधान्यादिषु स्नेहस्तु बान्धवेषु च स्यात्, किं छिन्द ?, 'स्नेहं', स्नेहलक्षणमुच्यते— 'ण कंखे पुव्वसंथवं' ण प्रतिषेधे, काङ्क्षा अभिलाषः, पूरयतीति पूर्वः, संस्तूयते येन संस्तवः, तद्यथा— देवदत्तपुत्तमातुल इति, यथैव हि स्वजनो न त्रायते तथैव च— 'गवासं मणि-कुंडलं'॥१६४-१६५-२६५॥ सिलोगो, गच्छतीति गौः,अश्नुते अश्नाति वा अध्वानमित्यश्वः,मद्यते मन्यते वा तमलङ्कारमिति मणिः, कुण्डलहिरण्ये कण्ठ्ये, पश्यतीति पशुः, दासपुरुषौ कण्ठ्यौ, किल तव सुखोपकाराय, यदि तत् सांसारिकं परायत्तसुखं काम्यते, तेन यदन्यदेवंविधं तदपि 'सव्वमेयं चरि(इ)त्ताणं' उज्झिउं, संजमं अणुपालिया, देवत्वं प्राप्य कामरूपि भविस्ससि, कामं रूपाणि करोतीति कामरूपी, रोचति रोचयते वा रूपं, यथा कामरूपं तथाऽनान्यपि ईशित्वप्राप्तिप्राकाम्यादीन्यैश्वर्याणि प्राप्स्यसि इत्यतः 'गवासं मणिकुंडलं, पसवो दासपोरुसं। सव्वमेयं चइत्ताणं, संजमं अणुपालिया ॥१॥ स चायं संयमः। 'अब्भत्थं सव्वओ सव्वं' ॥१६६-२६५॥ सिलोगो, आत्मानमधिकृत्य यत्प्रवर्तते तदध्यात्मं, अथवा अब्भत्थं णाम यद्यस्याभिप्रेतं, अध्यात्मनि तिष्ठतीति अब्भत्थो, किं च तत् ?, सुखं, यथा भवे अब्भत्थं, सव्वतो सव्वं, सर्वाभ्यो दिग्भ्यः, सव्वं नाम सव्वं शरीरं माणसं सुहं तदुपकारिणी वा सद्दातिविसयसुहाणि, जहा तवेदमिट्ठं एवमेव (परेसिं) 'दिस्स पाणे पियायए' प्रिय आत्मा येषां ते प्रियात्मानः, अन्यतोऽपि यदि एतदेवं 'णो हिंसेज्ज पाणिणं पाणे' प्राणा अस्य विद्यन्ते प्राणी अतस्तेषां प्राणिनां, प्राणाः— ||१५१||
आयुष्प्राणा बलप्राणा इन्द्रियप्राणाः, विरस्यते येन परेषां वा भवति वैरप्रसूतिः तस्माद्भयवैरादुभय(पर)तः, उपेत्य रत उपरतः,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ६ क्षुल्लक-निर्ग्रंथ.यं ॥१५२॥

भवं(यं)वा यत्करोति प्राणिनां ततो वैरं भवति, इह च कलहादि परत्र च येन संसारमनुपरीति तस्मादुपरतः ॥ उक्तं प्राणातिपात-वेरमणं, परिग्रहवेरमणं प्रतिसाधयति–'आदाणं णरयं दिस्स' ॥ १६७-२६६ ॥ सिलोगो, आदियत इत्यादानं, नरक उक्तार्थः, कारणे कारणो(यो)पचारात्, आदानाद्धि नरको जायत इत्यतः आदानमेव नरकः, उक्तं हि—विषं विषकालं संचयादि, विषं व्याधिरूपेक्षितः ॥ १ ॥ (विषं कुपठिता विद्या, विषं व्याधिरुपेक्षितः । विषं गोष्ठी दरिद्रस्य, वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥ १ ॥) तृणेढि तृण्वन्ति वा तृणं, तृणमात्रमपि नाददीत, प्रति (अपि) ग्रहणं अप्रतिसक्तलक्षणं, निवृत्तये तु धर्मसाधणादिग्रहणार्थमपदिश्यते-'दोगुंछी अप्पणो पाते' दुगुंछा– संजमो, किं दुगुंछति ?, असंजमं, पाति जीवानात्मानं वा तेनेति पात्रं, आत्मीयपात्र-ग्रहणात् मा भूत्कश्चित्परपात्रे गृहीत्वा भक्षयति तेन पात्रग्रहणं, ण सो परिग्गह इति, जिनकल्पिकं वा प्रतीत्य पठ्यते—अप्पणो पाणिपाते दिन्नं भुंजेज्ज भोयणं ' एवं मुसावादअदत्तादानमेहुणाणिवि ॥ अत्राह– उक्तं प्रागविद्या, ननु तद्विधानानि उपदिष्टानि, तदुच्यते—'इहमेगे उ मन्नंति' ॥ १६८-२६६ ॥ सिलोगो, अपरः कल्पः अविद्यां हित्वा विद्यापूर्विका निवृत्तिः कार्या, सा चोक्ता, 'अब्भत्थं सव्वओ सव्वं' एतच्छ्रुत्वा चरणादिपरः, 'इहमेगे उ मन्नंति' 'इहे' ति इह मनुष्यलोके, एगेति सांख्यादयः, ते सव्वे 'अपच्चक्खाय पावगं' पासयति पातयति वा पापं, ते पुण 'आयरियं विदित्ता' आचरंति वमित्याचारः, आचारे निविष्टमाचरितं, आचरणीयं वा तमित्याचारः, आचरणीयं वा विदित्ता सव्वदुक्खा विमुच्चइ, ननु कृत्वा, तेषां हि ज्ञानादेव मोक्षः, प्रकृतिपुरुषान्तरं यथा वेत्ति तमित्येवं विदित्ता अकरिंता, यतस्तेषां यमनियमात्मको धर्मः, तं अकरेन्ता, अपरः कल्प आह— ये नाम ज्ञानं शीलमिच्छन्ति ते नाम मोक्षमाप्नुवन्ति, यथा शाक्यादयः, उच्यते, तेऽपि केवलमेव वदन्ति, ननु

ज्ञानक्रियै-कान्त-निरासः ॥१५२॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७|| दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

कुर्वन्ति, कथं?, अहिंसामुक्त्वा पुनः पाकेषु स्नानादि विहारादंभेष (दिकेषु)(दिमिषेण)प्रवर्त्तन्ते, एवं तो—'भणंता अकरिंता य०' ||१६९-२६७|| सिलोगो, मोक्षं प्रतिजानन्तीति मोक्षप्रतिज्ञावन्तो, पुण 'वाया वीरियमेत्तेणं' वक्तीति वाक्, एवं वीरियं, मात्रग्रहणं केवलं ब्रुवन्ते, न कुर्वन्ति, आश्वसति कश्चित्तं समासासेति, तंजहा–वयं जानका इति सम्यगाश्वासयन्ति, यथाऽऽत्मानं तथा परमपि, स्याद् बुद्धिः–कथं भणंता अकरिंता य बध्यंते, ननु ते ज्ञानेनैव तार्यन्ते ?, उच्यते— 'न चित्ता तायए भासा०' || १७०-२६७ || सिलोगो, चित्रानाम धातूपसर्गसन्धितद्धितकालप्रत्ययप्रकृतिलोपापगमविशुद्ध्या, 'कओ' कस्मात् कारणात्? उच्यते, विद्यानुशासनात्, विद्याहितमनुशासनाय तमेव, तत्पूर्विका तु क्रिया मोक्षाय उच्यते, यथा गदपरिज्ञानं, ते पुनः चित्रवाग्विशारदाः यतो 'विसन्ना पावकम्मेहिं' ते न मोक्षाय(इति) वाक्यशेषः, विविधं सन्ना विसन्ना, पापान्येतत् कृत्यानि पावकिच्चाइं, पावं वा हिंसादीनि तेसु सन्ना, न तानि शक्नुवन्तो कर्त्तुं, 'बाला पंडियमाणिणो' स्याद् बुद्धिः- केनोच्यते ?, स्पष्टरूक्ष्यं हि दुक्खं कर्त्तुम्, अविशिष्टमुच्यते–"जे केई सरीरे सत्ता" || १७१-२६८ || सिलोगो, ये इत्यनिर्दिष्टस्य निर्देशः, शीर्यत इति शरीरं तस्मिन् सक्तिः, वृणोति वृणीते वर्णयन्ति वा तमिति वर्णः, रूप्यत इति रूपं, संसर्त्तिः धावते वा सर्वावस्थं सर्वतो, मणसा वयसा चेव, मणसा तावत्कथं रूपवन्तः स्याम इत्येवं चिंतयन्ति, वायाए भिषजोऽनुपानक्रियां पृच्छति, 'सव्वे ते दुक्खसंभवा' नाम दुक्खं पसूयंते, एवमाद्या अन्याऽप्यविद्या संसारायैव, तेनाविद्यासंतानविद्यावता संसारोच्छेदाय प्रवर्तितव्यं, स चात्मा संसारी ||१५३|| मुक्तौ वा, तत्र योऽसौ संसारी स हि सति (अ)विद्याविगमे भिक्षुत्वमासाद्य—'आवण्णा दीहमद्धाणं०' ||१७२-२६८|| सिलोगो, अथवा उक्ता अविद्या,तद्विपक्षभूता विद्या,स च विद्यावान्'आवण्णा दीहमद्धाणे'(१७२सू० २६८)आपन्नवान् आपन्नः,अणादि,दीर्घते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ६ क्षुल्लक निर्ग्रंथीयं ||१५४||

दिक्स्वरूपं

वा दीर्घः, अधति प्राणीनिति अध्वा, दीर्घमध्वानं नाम संसार एव, न तत्रावस्थानमस्ति, अथवा जन्नं जायमानस्स वा कुतोऽव-स्थानमित्यतो वा दीर्घः, उक्तं च–“प्रपन्ना दीर्घमध्वानमनादिकमनन्तकं । स तु कर्म्मभिरापन्नः, हिंसादेरुपचीयते ॥ १ ॥ तेषां स नरकादिषु विपाकः स चेदप्रियः‘तम्हा सव्वदिसं पस्स’‘तस्मादि’ ति तस्मात् संसारभवा(था)त् सर्वं उक्तार्थं, दृश्यते अनेनेति दिक्,सा दिसा सत्तविधा-नामदिसा ठवणादिसा दव्व०खेत्त०कालदिसा सव्व(ताव)खेत्तदिसा भाव[खेत्त]दिसा पण्णवगादिसा,णामदिसा जहा अन्नतरा दिसाकुमारी, ठवणादिसा अक्खनिक्खेवादिसु दिसाविभागो ठवितो, स तु सउणरूतपरूवणादिसु ठाविज्जति, दव्वदिसासु सव्वपदेसयं वत्तं तेरससु चेव पदेसेसु ओगाढं, एयं दससव्वदिसागं जहण्णगं दव्वं, खेत्तदिसा अट्ठपदेसियो रुयगो, जतो इंदाइयाओ दस दिसाओ पवत्तंति, तावखेत्तदिसा जस्स जओ आदिच्चो उएइ सा पुव्वा, जतो अत्थमेति सा अवरा, दाहिणपासे दक्षिणा, वामओ उत्तरा, पन्नवगादिसा जत्तोहुत्तो पण्णवगो ठाति सा तस्स पुव्वा, दाहिणेण सा दाहिणा, पच्छतो अवरा, वामओ उत्तरा, एयासिं च अंतरेणं अन्नाओ चत्तारि अणुदिसाओ भाणियव्वाओ, एतासिं चेवऽट्ठण्हं अंतराओ अट्ठ दिसाओ, एताओ सोलस सरीरउस्सयबाहुल्लाओ सव्वाओ तिरियदिसाओ, पादतलहेट्ठा अधोदिसा, सीसस्स उवरि उड्ढा, एता अट्ठारसवि पण्णवगदिसाओ भवंति, भावदिसा अट्ठारसविधा, तंजहा–पुढविकाइओ आउकाओ तेउकाओ· वाऊ४अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया८ बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया तिरिक्खजोणिया१२सम्मुच्छिममणुस्सा कम्मभूमा अकम्मभूमगाई अंतरदीवया१६ देवा नारगा१८,दिश्यते अनयेति दिसा,सा तस्य भाविनो भावस्तेन प्रकारेणोपदिश्यते,तद्यथा-पृथिवीकायिको वा एवं यावद् देवो नारको वा,पूर्वं पश्यत इति पस्स, मा समारभस्व,अत एव दृष्टाऽसौ दिग्भवति, यतो न सम्मं आरभ्यते असमारभमानः,‘अप्पमत्तो परिव्वए’

||१५४||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७|| दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

यथा कामपि दिशं न विराधयेत्, उक्तं प्राणातिपातविरमणं, अपरिग्रहप्रसिद्धये तु 'बहिया उड्ढमायाय' ||१७३-२६८|| सिलोगो, स्यात्-प्रागुपदिष्टं यथा'अब्भत्थं सव्वतो सव्वं',तथैव च'आदानं नरकं दिस्से'ति प्राणातिपातविरमणं परिग्रहविरती य भणिता,किं पुण भण्णति?, उच्यते, तत्र भेदा नोपदिष्टाः, इह तु अष्टादश दिश उक्ताः, परिग्रहेऽपि तत्राविशिष्टमुक्तं—आदाणं णरकं, इह विशिष्यते-इदं ग्राह्यमिदमग्राह्यमिति, तद्यथा–'बहिया उड्ढमायाय' हेट्ठा बहिया, उद्ध्रियत इति ऊर्द्धं, ऊर्द्धं नामात्मानं वर्जयेत्यर्थः, यथा लोकायताः प्रतिपन्नाः ऊर्द्धं देहात्पुरुषो न विद्यते, देह एव आत्मा, तत्रात्मानं शरीरोपचारं कृत्वोपदिष्यते 'बहिया उड्ढमायाय, नावकंखे कयाइवि', स्यात्-शरीरात्मा किंनिमित्तं धार्यते ?, उच्यते, 'पुव्वकम्मक्खयट्ठाए' पूरयतीति पूर्वं, क्रियते इति कर्म, क्षेपणं क्षयः, 'इम' मिति इदं औदारिकं सम्यक् उद्धरेत् खुहादिपरिस्सहेहिं पडमाणं समुद्धरे, तस्यैवं पूर्वकर्म्मक्षयहेतोः तं देहं धारयतः साम्प्रतं कर्माऽनुपचयहेतोः इदमपि दिश्यते, किं ?, 'विविच्च कम्मुणो हेउं' ||१७४-२६९|| सिलोगो, विविच्येत्यनुमतार्थे उपदेशो वा, क्रियत इति कर्म्म, हिनोतीति हेतुः, हेतुरिति यतः कर्म्म प्रसवति, स चाविद्यैव, उक्तं हि— "कहण्णं भंते ! जीवा अट्ठ कम्मपगडीओ बंधंति ?, रागा दोसा वा" बन्धहेतवः एकैकस्य तु तत्प्रदोषनिह्नवादयः, एवं सर्वत्र, तेषु लोके वा केच्चिरं कालं णिरुंभितव्वा?, उच्यते—'कालकंखी परिव्वए' कालनाम यावदायुषः तं पंडितमरणकालं काङ्क्षमाणः सर्वत्रासम्बध्यमानः परिव्रजेत्, सर्वास्रवैरित्यर्थः, स एव निरुद्धाश्रवो यावत्कालं काङ्क्षतो आराच्छरीरधारणार्थमाहाराद्युपग्रहणं करोति, न हि निरुपग्रहाणि शरीराणि शक्यन्ते उद्वोढुं, तत्रोपग्रहमाहारः उपकरणं वा, तत्राहारपरिणामार्थमपदिश्यते-'मातं पिंडस्स पाणस्स' मीयते मात्रा, पिण्डयति तमिति पिण्डः, पिण्डग्रहणात् त्रिविध आहारः, पाणग्रहणात् पानकमेव, कडं नाम ||१५५||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ६ क्षुल्लक-निर्ग्रंथीयं ॥१५६॥

सनिधि-वर्जनं

निव्वत्तियं पासुगं कियं जं खीरादि फासुगं,तंपि (ण)अत्तट्ठाए,द्दढपुसलिं(?) न वा,तदपि देण्णं, भक्षयेत् खादियमेव, स्वादिममास्वादयेत्, अशनमश्नीयात्, पानकं पिबेत्, बन्धानुलोमात्तु भक्षयेत्, तं तु भुक्तशेषमभुक्तशेषं वा–'सन्निंधिं च न कुव्विज्जा०' ॥१७५-२६९॥ सिलोगो, सन्निधानं संनिधिः न प्रतिषेधे, अणतीत्यणुः, मीयत इति मात्रा- तिलतुसभागमित्तंपि 'लेवमायाय संजए' कोऽर्थः ?, लेवेऽपि ण संवसावे पत्ते वत्थे वा, किमंग पुण असणादिअट्ठा, अतिप्रसक्तलक्षणनिवृत्तये मा भूत्तदुपकरणमपि न संवास्यति, तेन तदुपकरणं यत्र गच्छति तत्र तत्र 'पक्खीपत्तं समादाय' पक्षी पत्रसंभारं वा पतत्यनेनेति पत्रं पिच्छमित्यर्थः, बिभर्त्ति तमिति भारः तत्तुल्यो,यथाऽसौ पक्षी तं पत्रभारं समादाय गच्छति एवमुपकरणं भिक्षुरादाय णिरवेक्खी परिव्वए, नास्याकाङ्क्षा विद्यत इति निरवकाङ्क्षी, उक्तं पूर्वकर्म्मक्षयार्थं शरीरं धारयेत्, तद्धारणोपायः, तद्यथा–आहार उपकरणं,तदपि–'एसणासमिओ लज्जू' ॥१७६-२७०॥ सिलोगो, एसणासमिओ, लज्जू नाम लज्जावान्, लज्जुप्पमाण उक्तार्थः, 'अणियतवासी' अनियतः केवलं मासं, न एसणासमित एव जाव इंदियादिपमादा परिवज्जए येनोपदिश्यते-'अप्पमत्तो पमत्तेहिं' इंदियादिपमत्तेसु गिहत्थेसु, पिंडस्स पिंडयोः पिण्डानां वा पातः२ अतस्तं पिंडवातं 'गवेषयेत्' मार्गयेदित्यर्थः, 'एवं से उयाहु' ॥१७७-२७०॥ सिलोगो, एवमर्थावधारणे, 'स' इति भगवान् तीर्थकरः,उदाहुरिति उदाहृतवान्, 'अणुत्तरनाणी' ति केवलणाणी, नातो उत्तरोत्तरं अण्णं णाणं अत्थित्ति अणुत्तरणाणी, 'अणुत्तरदंसी' केवलदंसित्ति, अणुत्तरणाणदंसणधरो जाव से उदाहृतवान्, स्याद् बुद्धिः- कोऽसौ ?, उच्यते, 'अरहा णायपुत्ते' अर्हतीत्यर्हन्, नास्य रहस्यं विद्यते, णातकुलप्पभू(सू)ते सिद्धत्थखत्तियपुत्ते, भगवान्, भगोऽस्यास्तीति भगवान्, ऐश्वर्यादि, 'वेसालीए' त्ति, गुणा अस्य विशाला इति वैशालीयः, विशालं शासनं वा, विशाले ॥१५६॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१६०-१७७||

दीप अनुक्रम [१६१-१७८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ७ और-भ्रीया०

||१६७||

वा इक्ष्वाकुवंशे भवा वैशालिया, 'वैशाली जननी यस्य, विशालं कुलमेव च। विशालं प्रवचनं वा, तेन वैशालिको जिनः ॥ १ ॥ 'वियाहिते' व्याख्याते, केचिदन्यथा पठन्ति- 'एवं से उदाहु अरहा पासे पुरिसादाणीए भगवंते वेसालीए बुद्धे परिणिव्वुडेत्ति बेमि॥ अर्ह पूजायां, पूजामर्हतीत्यर्हः, पश्यतीति पाशः, पुरुषग्रहणं सत्यपि त्रिलिङ्गग्रहणसिद्धत्वे पुरुष एव तीर्थकरो भवति प्रायः, स न द्वयोर्लिङ्गयोः, आदातव्य आदानीयः, पुरुषैर्वा आदानीयः, ज्ञानदर्शनचारित्रसर्वपराक्रमवृत्त्यादि-गुणा अस्य इति विशालीयः, शेषमुक्तं, बुध अवबोधने, बुद्धवान् बुद्धः, समन्तान्निर्वृत्तः, एवं जम्बोर्भगवान् आयुष्मान् सुधर्म्मा कथयति-एवं से उदाहु जाव परिणिव्वुए इति बेमि ॥ नयाश्च पूर्ववत्। **खुड्डगणियंठिज्जं छट्ठमज्झयणं सम्मत्तम् ६।**

उपसंहारः उरभ्र-निक्षेपाः

उक्ता अविद्या सविद्याश्च, ते तु अनिवृत्तात्मानो नोक्ताः, क्रूरेषु कर्मसु प्रशस्य तद्विपाकं नापेक्ष्यंते उरभ्रवत्, इत्येषो क्रियते सम्बन्धः। तस्स चत्तारि अणुओगदारा, उवक्कमादी, ते परूवेऊण णामणिप्फण्णे उरब्भिज्जं, उरभ्राज्जातं औरभ्रियं, उरभ्रस्येदं औरभ्रीयं, सो उरब्भो णामादि चतुर्विधो, दव्वे दुविहो-आगमतो णोआगमतो य, आगमओ जाणए अणुवउत्तो, णोआगमओ तिविहो-जाणगसरीरादि ३, तत्थ 'जाणगसरीर'॥२४५-२७१॥वतिरित्तो दव्वोरब्भो तिविहो, तं०- एगभविओ बद्धाउओ अभि-मुहणामगुत्तो, भावोरब्भो दुविधो-आगमतो णोआगमतो य, आगमतो जाणए उवउत्तो, णोआगमेत्यादि, णोआगमतो भावो-रब्भे इमा गाहा-'उरब्भाउणामगोयं'॥२४६-२७१॥गाथा कण्ठ्या, एतस्स इमा अत्थाऽधिकारगाथा 'ओरब्भे य'॥२४७-२७१॥ ||१५७||
गाहा, ओरब्भे कागिणी अंबए ववहारो सागरो, एते पंच दिट्ठंता उरब्भिज्जे अज्झयणे वण्णिज्जंति। 'आरंभे रसगिद्धि' ॥ २४८-२७२ ॥ गाहा, उरब्भारंभो कीस गते ?, उच्यते, सोऽप्यासितो २ मारिज्जति, ण य तत्थोवायो कोऽवि, एवं असंजता

अध्ययनं -६- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -७- "औरभ्रीय" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७|| दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ७ और- भ्रीया० ||१५८||

उरभ्र-दृष्टान्तः

जीवा 'आरंभे' त्ति मंसरसगिद्धा, उरब्भमच्छमहिसादयो, तेसिं दोग्गतिगमणपच्चवाया भवंति, इत्यत 'उवमा कया उरब्भे, उरब्भिज्जस्स णिज्जुत्ती' णामणिप्फण्णो गतो ॥ जाव सुत्ताणुगमे सुत्तं उच्चारेयव्वं, तं च इमं 'जहाऽऽएसं समुद्दिस्स' ॥१७८ सू.गा७३॥ सिलोगो, येन प्रकारेण यथा, आएसं जाणतित्ति आइसो, आवेसो वा, आविशति वा वेश्मनि, तत्र आविशति वा गत्वा इत्याएसा, शोभनं गतं संगतं तं वा उद्देश्य समुद्देश्य, कथमुद्देश्य ?, आएसो अभ्यरहितो यथा आगामिष्यति, अमुगो वा, तदा एवं मारेत्ता तेण सह भक्खिस्सामि, उच्छवदिने वा 'कोयि' त्ति कश्चित्, क्रूरकर्म्मा पापः, 'पोसेज्जा' 'पुष पुष्टौ' एति एत्याकारितो एत्येलकः, कथं पोसयति ?-'ओयणं जवसे देति' उतत्ति उदात्ति वा तमिति ओदनं ददाति, जवसो मुग्गमासादि, यानि चान्यानि तद्योग्यानि विसयणामादि, जो जस्स विसाति स तस्स विसयो भवति, यथा राज्ञो विषयः, एवं यद्यस्य विषयो भवति, लोकेऽपि वक्तारो भवन्ति सर्वो ह्यात्मगृहे राजा, अंगंति तस्मिन्निति अंगनं, गृहांगनमित्यर्थः, अथवा विषया रसादयः तान् गणयन् प्रीणितोऽस्य मांसेन विषयान् भोक्ष्यामीति, अथवा विषयान् इति, धर्म्मं परलोकभयं वा, एत्थ कप्पितं उदाहरणं— एगो ऊरणगो पाहुणयनिमित्तं पोसिज्जति, सो पीणियसरीरो सुण्हातो हलिद्दादिकयंगरागो कयकण्णचूलतो, कुमारगा य तं नाणाविहेहिं कीलाविसेसेहिं कीलावेंति, तं च वच्छगो एवं लालिज्जमाणं दट्टूण माऊए णेहेण य गोवियं दोहएण य तयणुकंपाए मुक्कमवि खीरं ण पिबति रोसेणं, ताए पुच्छिओ भणति— अम्मो ! एस णंदियगो सव्वेहिं एएहिं अम्ह सामिसालेहिं इट्ठेहिं जवसजोगासणेहिं तदुवओगेहिं च अलंकारविसेसेहिं अलंकारितो पुत्त इव परिपालिज्जति, अहं तु मंदभग्गो सुक्काणि तणाणि काहेवि लभामि, ताणिवि ण पज्जत्तगाणि, एवं पाणियंपि, ण य मं कोऽवि लालेति, ताए ||१५८||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७||

दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ७ और-भ्रीया० ||१५९||

भण्णति— पुत्त ! ' आउरचिन्नाइं एयाइं ' ॥२४९-२७३॥ गाथा, जहा आउरो मरिउकामो जं मग्गति पत्थं वा अपत्थं वा तं दिज्जति से, एवं सो णंदितो मारिज्जिहिति जदा तदा पेच्छिहिसि, उक्तो दृष्टान्तः । प्रकृतमुपदिष्यते– ' तओ से पुट्ठे परिव्वूढे ' ॥१७९-२७४॥ सिलोगो, ' तत ' इति ततो जवसौदनप्रदानात् पुष्यते वा पुष्टः परिबृहितः परिवृढः, मिद्यतेऽनेनेति मेदः उदीर्णान्तः उदीर्यते वा उदरं ' पीणिए ' विपुलदेहे, प्रीणीतः तर्प्पित इत्यर्थः, विपुलदेहे नाम मांसोपचितः, ' आएसं परिकंखए ' कर्म्मवत् कर्म्मकर्तेतिकृत्वाऽपदिश्यते-मांसोपचयादसौ स्वयमेव मेदसा स्फुटन्निव आएसं परिकंखए, कथं सो आगच्छेदिति, उत्सवादिर्वा, यत्रायमुपयुज्येत, अथवा परिकंखति, 'जाव न एज्जति आएसो' ॥१८०-२७४॥ सिलोगो, यावत्परिमाणावधारणयोः, कहं दुही जवसोदनेऽपि दीयमाने ?, उच्यते, बधस्य वध्यमाने इष्टाहारे वा वध्यालंकारेण वाऽलंक्रियमाणस्स किमिव सुखं ?, एवमसौ जवसोदगादिसुखेऽपि सति दुःखमानेवा, ' अह पत्तंमि आएसे ' अथेत्ययं निपात आनन्तर्ये, श्रिताः तस्मिन् प्राणा इति शिराः, ततो सो वच्छगो तं नंदियगं पाहुणगेसु आगएसु वधिज्जमाणं दट्ठुं तिसितोऽवि भएणं माऊए थणं णाभिलसति, ताए भण्णति– किं पुत्त ! भयभीतोऽसि ?, णेहेण पण्हुयंपि मं ण पियसि, तेण भण्णइ– अम्म ! कत्तो मे अज्ज थणाभिलासो ?, णणु सो वच्छतो णंदितो अज्ज केहिवि पाहुणएहिं आगएहिं ममं अग्गतो विणिग्गयजीहो विलोलनयणो विस्सरं रसंतो अत्ताणो असरणो विणिहतोत्ति तब्भयातो कतो मे पाउमिच्छा ?, ततो ताए भण्णति— पुत्ता ! णणु तदा चेव ते कहियं, जहा आउरचिण्णाइं एयाइं, एस तेसिं विवागो अणुपत्तो । एस दिट्ठंतो 'जहा खलु से ओरब्भे' ॥१८१-२७४॥ सिलोगो, यथा येन प्रकारेण, खलु विशेषणे, स एव विशिष्यत इति स इति प्रागुक्तः, उरसा भ्राम्यति बिभर्त्ति वा तमिति उरभ्रः,

उरभ्र-दृष्टान्तः

||१५९||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७|| दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ७ औरभ्रीया० ॥१६०॥

नरकहेतवः

समीहितमिति सम्यगीक्षितः, ' एवं बाले ' एवमवधारणे, एवमुपमाने, द्वाभ्यामाकलितो बालः, अधम्मो इट्ठो जस्स स भवति अधम्मिट्ठो, ' ईहति ' ईहते नाम चेष्टते, नरकः उक्तार्थः, आयुष्कमुक्तार्थः, नरकेषु आयुषं कुत्सितं नरकायुष्कं, अत्राह— यथाऽसौ मांसबृंहितात्मा आएसं परिकंखति एवमसौ बालः केन बृंहितात्मा नरकायुः कंखति?, उच्यते, 'हिंसे बाले मुसावाई' ॥ १८२-२७५ ॥ सिलोगो, हिंसयतीति हिंस्रः, द्वाभ्यामाकलितो बालः, रागद्वेषाभ्यामित्यर्थः, मृषा वदतीति मुसावादी, अत्ती प्राणानिति अद्धा, विविधो लोक २, अद्धानंमि विलोकं करोतीति अद्धानंमि विलोकः, पन्थमोष इत्यर्थः ' अण्णदत्तहरे तेणे ' अन्नेसिं दत्तं हरतीति अन्नदत्तहरः, अहवा अन्नेसिं दत्तं तं हरति, स्तेन स्त्यायत इति स्तेनः, मायाऽस्यास्तीति मायी, कस्य हरामि? किन्तु हरामीति वा, किन्तुहरः, शठः कैतवो, पंचास्य(सु)वि प्पमत्तो, 'इत्थीविसयगिद्धे य' ॥१८३-२७५॥ सिलोगो, इत्थीणं विसया इत्थिविसया, इत्थिविसयभोग इत्यर्थः, इत्थीविसयगिद्धे, अथवा स्त्रीषु विषयेषु गृद्धः, गृध्यते स्म गृद्धः, महंतो आरंभो परिग्गहो य जस्स (स) भवति 'महारंभपरिग्गहे' 'भुंजमाणे सुरं मंसं' मन्यते तत् मन्यते वा तं मन्यते वा स भक्षयिता तेनोपभुक्तेन बलिनमात्मानं मांसं, परिबृंहितः—परिबृढः, तेन मांसेन परिबृंहिताः, परे य दमयतीति परंदमो, 'अयकक्कर-भोई य' ॥ १८४ ॥ सिलोगो, अजतीत्यजः, कक्करं नाम महुरं दंतुरं मांसं, अजा इव कक्करभोजनशीला अयकक्करभोई, तुंदिल-मस्य जातं तुन्दिलः, चितं यस्य लोहितं चियलोहितः, स तैरेव हिंसादिभिराश्रवैर्वृत्तः, मांसभक्षयिता आयुगं नरए कंखे, एति याति वाऽऽयुः, आनीयते तस्मिन्नरकं, कांक्षतीव कांक्षते, का तर्हि भावना?, नासौ नरकस्योद्विजते येन नरकसंवर्तनीयानि कर्माण्यारभते, स एव दृष्टान्तः, जहाएसं व एलए ॥ अन्नेहिवि पगारेहिं निरयाउयंकं खाति—'आसणं सयणं जाणं'॥१८५-२७५॥

॥१६०॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७||

दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ७ और- भ्रीया० ||१६१||

नरकहेतवः

सिलोगो, आसणं उवविसणपीढगादि, शय्यते तस्मिन्निति शयनं-पल्लंकादि, जाणं-सगडहत्थिअस्सादि, दित्तं-हिरण्णसुवण्णादि, तत्र गृद्धाः तदुत्पादयन्तः संरक्षमाणाश्च 'कामाइं भुंजित्ता' कामा-इत्थिविसया, एगग्गहणे तज्जातीयानां ग्रहणमितिकृत्वा सेसिंदियविसयावि गृहता, तैर्भुजित्वा 'दुस्साहडं धणं हिच्चा' साहडं णाम उपार्जितं, दुट्ठं साहडं दुस्साहडं, परेसिं परेसिं उवरोधं काऊणंति भणितं होति, दुक्खेण वा साहडं दुस्साहडं, सीतवातादिकिलेसेहिं उवचितंति, अथवा कताकतं देतव्वमदेतव्वं खेत्थखलावत्थं दुस्साहडं, दुस्सारवितंति भणितं होति, 'बहुं संचिणिया रयं' रीयत इति रजः, सो अट्ठविहो कम्मरयो। 'ततो कम्मगुरू जंतू ॥ १८६-२७५ ॥ सिलोगो, 'तत' इत्यानन्तर्येण क्रियत इति कर्म्म, गृणातीति गीर्यते वा गुरूः, 'जंतु' त्ति जीवस्याख्या, प्रत्युत्पन्ने सुखे रज्जते रलयोरैक्यमितिकृत्वा 'पच्चुप्पण्णपराय(लज्ज)णे'अएव्व आगयाएसे' अजतीत्यजः, अजेन तुल्यः अयव्व, जहा सो आयबद्धो मारेज्जिउकामो सोयति, एवं सोवि मारणंतियवेदणाभिभूतो परलोगभूतो सोयति, एकाधिकारे प्रकृते अयमनेकादेशः । ततो आयुपरिक्खीणे (बले) खीणे ॥१८७-२७६॥ सिलोगो, एति याति वा, आयुषि परिक्षीणे चुत्ता इतो, कुतश्चुतो ?, देहात् विविधम्-अनेकप्रकारं हिंसकाः विहिंसकाः 'आसुरियं दिसं बाला' नास्य सूरो विज्जति, आसुरियं वा नारका, जेसिं चक्खिदियअभावे सूरो उद्योतो णत्थि, जहा एगेंदियाणं दिसा भावदिसा खेत्तदिसावि घेप्पति, असतीत्यसुरः, असुराणामियं आसुरीयं, अधोगतिरित्यर्थः, अवसा णाम कम्मवसगा 'तम' मिति अन्धकारं, स तत्थ नरकगतिं गतो बहुं दुक्खमणुभवन्तो परितप्पति ॥ दिट्ठंतो-- 'जहा कागिणीए हेउं' ॥१८८-२७७॥ सिलोगो, ||१६१||
येन प्रकारेण यथा, कागिणी णाम रूवगस्स असीतिमो भागो, वीसोवगस्स चतुभागो, अत्रोदाहरणम्—एगो दमगो, तेण वित्ति

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७||

दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

काकिणी दृष्टान्तः आम्र-दृष्टान्तः

करेंतेण सहस्सं काहावणाण अज्जियं, सो य तं गहाय सत्थेण समं सगिहं पत्थितो, तेण भत्तणिमित्तं रूवगो कागिणीहिं भिन्नो, ततो दिणे दिणे कागिणीए भुंजति, तस्स य अवसेसा एगा कागणी, सा विस्सरिया, सत्थे पहाविए सो चिंतेति—मा मे रूवगो भिंदियव्वो होहित्ति णउलगं एगत्थ गोवेउं कागिणीणिमित्तं णियत्तो, सावि कागिणी अन्नेण हडा, सोऽवि णउलओ अण्णेण दिट्ठो ठविज्जंतो, सोऽवि तं घेत्तूण णट्ठो, पच्छा सो घरं गतो सोयति, एस दिट्ठंतो, 'अपत्थं अंबगं भुच्चा' अह कस्सइ रन्नो अंबाजिण्णेण विसूइया जाया, सा तस्स वेज्जेहिं महता जत्तेण तिगिच्छिया, भणितो य—जइ पुणो अंबाणि खाहिसि तो विणस्ससि, तस्स य अतीव पियाणि अंबयाणि, तेण सदेसे सव्वे अंबा उच्छादिया, अण्णया अस्सवाहणियाए णिग्गतो, सह अमच्चेण अस्सेण अवहरिओ, अस्सो दूरं गंतूण परिस्संतो ठितो. एगंमि वणसंडे चूयच्छायाए अमच्चेण वारिज्जमाणोऽवि णिविट्ठो, तस्स य हेट्ठा अंबाणि पडियाणिं, सो ताणि परामुसति, पच्छा अग्घाति, पच्छा चक्खिउं णिच्छूहति, अमच्चो वारेइ, पच्छा भक्खेउं मतो। भणितं दिट्ठंतदुगं, कागिणीदिट्ठंतोवसंथारप्पसिद्धीए भणति—'एवं माणुस्सगा कामा' ॥१८९-२७७॥ सिलोगो, जइ णाम कोइ मणुस्सकामा दिव्वकामाण अंतिए करेज्जा, अन्तिकं समीपमित्यर्थः, ततो ते कागिणीओऽवि अप्पतरा होज्जा, जहा कामा तहा आयुंपि हो(जो)ज्जा, अनुवर्त्तमान एव श्लोकः, एवं माणुस्सयं आयुं दिव्वमाउस्स यंतिए, दिव्वा पुण 'सहस्सगुणिता भुज्जो' त्ति, ण केवलं सहस्सगुणा, अणंतगुणा वा दिव्वा कामा, दिव्वं चायुः, बंधाणुलोमयाओ आउं कामा य दिव्विया ॥ स्यात्-कथमायुते जीव्यते?, उच्यते—'अणेगवासा नउता' ॥१९०-२७८॥ सिलोगो, न एगमनेकं, वर्षतीति वर्षः, ॥१६२॥ णउतं णाम चउरासीतिसयसहस्साणि (पुव्वाणि) से एगे णउतंगे, चउरासीतिणउतंगसतसहस्साणि से एगे णउते, चउरासीति-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७||

दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ७ और-श्रीया० ||१६३||

वणिग्-दृष्टान्तः

णउयसयसहस्साणि से एगे पउतंगे, एवं णेतव्वं, 'अणेगाइं' ति असंखेज्जाइं, ताइं जाइं 'पण्णवतो' प्रज्ञा अस्यास्तीति प्रज्ञावान् अतस्तस्य ज्ञानवतः, स्थीयत इति स्थितिः, 'जाइं जीयंति दुम्मेहा' इमेहिं अप्पकालिएहिं जीयंति 'दुम्मेह' त्ति दुब्बुद्धिणा 'ऊणे वाससयाउए' हीणवाससयाउए, भगवता वरिससताउएसु मणुएसु धम्मो पणीतो इत्यतः ऊणे वाससयाउए, भणितो काणिणी अश्वदिट्ठंतो य । इदाणिं ववहारदिट्ठंतो, तप्पासिद्धिनिमित्तं भण्णति-'जहा य तिण्णि वणिया'॥१९१-२७९॥सिलोगो, जहा एगस्स वणियगस्स तिण्णि पुत्ता, तेण तेसिं सहस्सं सहस्सं दिन्नं काहावणाणं, भणिया य-एएण ववहरिऊण एत्तिएण कालेण एज्जाह, ते तं मूलं घेत्तूण णिग्गया सणगरातो, पिथप्पिथेसु पट्टणेसु ठिया, तत्थेगो भोयणच्छायणवज्जं जूयमज्जमंसवेसावसणविरहितो वीहीए ववहरमाणो विपुललाभसमन्नितो जातो, बितितो पुण मूलमविद्वंतो(जहा)लाभगं भोयणच्छायणमल्लासंकारादिसु उवभुंजति, ण य अच्चादरेण ववहरति, ततितो न किंचि संववहरति, केवलं जूयमज्जमंसवेसगंधमल्लतंबोलसरीरोपकारकियासु अप्पेणेव कालेण तं दव्वं णिट्ठवियंति,जहावहिकालस्स सपुरमागया,तत्थ जो छिन्नमूलो सो सव्वस्स असामी जातो, पेसए उवचरिज्जति, बितितो घरवावारे णिउत्तो भत्तपाणसंतुट्ठो, ण दायव्वभोगव्वेसु ववसायति,ततिओ सव्वस्स घरवित्थरस्स सामीकतो, केई पुण कहंति-तिन्नि वाणियगा पत्तेयं २ ववहरंति, तत्थेगो छिन्नमूलो पेसत्तमुवगतो, केण वा संववहारं करेउ ?, अच्छिन्नमूलो पुणरवि वाणिज्जाए भवति, इयरो बंधुसहितो मोदए, एस दिट्ठंतो, अयमत्थोवण्णतो-'ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे विजाणह' (१९२-२७९) एवामेव-तिन्नि संसारिणो सत्ता माणुस्सेसु आयाता, तत्थेगो मद्दवज्जवादिगुणसंपन्नो मज्झिमारंभपरिग्गहजुत्तो कालं काऊण काहावणसहस्समूलत्थाणीयं तमेव माणुसत्तं पडिलहति, बितितो पुण सम्मद्दंसणचरित्तगुणसुपरि(णि)ट्ठितो सरागसंजमेण ||१६३||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७|| दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

वणिग्-दृष्टान्तः

लद्धलाभवणिय इव देवेसु उववन्नो,तत्तितो पुण'हिंसे बाले मुसावाते'(१९३-२८०)इच्चेतेहिं पुव्वभणितेहिं सावज्जजोगेहिं वड्ढिउं छिन्नमूलवणिय इव णारगेसु (तिरिएसु) वा उववज्जति । एतदेव पुरस्कृत्यापदिश्यते–'दुहतो गती बालस्स' ||१९४-२८०|| सिलोगो, तस्स पावस्स कम्मस्स पवत्तमाणस्स दुहतोत्ति द्विधा, द्विप्रकारा इत्यर्थः, तद्यथा–नरकगतिः तिर्यग्गतिश्च, बालस्येति रागद्वेषकलितस्य, सा तु 'आवती वधमूलिका' तत्र शीतोष्णाद्या व्याधयश्च आवती व्यधस्तु प्रमारणं ताडनं वा, मूलहेतुं वा आदौ व्यध इत्यर्थः, स तु 'देवत्तं माणुसत्तं च' तस्मात् कारणात् 'जिते' जितो लौल्यभावो लोलता शाठ्येति शाममेवेति(ठयतीति वा) शठः, न धर्म्मचरणोद्यमवान्, कोऽभिप्रायः?, यद्यसौ ते मनुष्यके कामभोगेण भुंजंतो ण तेहिं देवत्तं माणुसत्तं च जिव्वंतो, णीओ वक्कंतो इत्यर्थः, 'ततो जिए सई होइ' ||१९५-२८०|| सिलोगो, तत्त इति दुर्गतिं गतः, कुत्सिता गतिः दुर्गतिः, इत्थं तस्सवि ततः 'दुल्लहा तस्स उम्मज्जा' उम्मज्जणं उम्मज्जा, उम्मज्जायति, 'अद्धा' कालः 'सुचिरादवि' यदुक्तं सुचिरकालादपि 'एवं जियं सपेहाए'||१९६-२८०||सिलोगो, एवमनेन, को जितः?,बालः, कथं जितो?, जेण माणुस्संपि णासादितं,सम्यक् समीक्ष्यते यया समीक्षा तया 'तुलिया बालं च पंडियं' तुलयित्वा तु तुलिया बालत्वं च पण्डितत्त्वं च, कुतो?, बालो विसीयति, चशब्दात् जो य ण जितो, ण वा च्युतलाभक इति, स्यादेतत्-यथा जितस्य नरकतिर्यग्योनिषूपपन्नस्य दुर्लभा तस्स उम्मज्जा, एवं जो ण जितो ण य लद्धलाभो, जो य लद्धलाभो संसारी, तयोः कुत्र गतिः ?, उच्यते–यस्तावन्न जितो न च लब्धवान् स पुनरपि मानुष्यमासादयति, ततोऽपदिश्यते 'मूलियं ते पविस्संति' जहा ते मूलप्पवेसा पुणरवि वाणिजाय भवन्ति, एवं जे संसारिणो पुणरवि माणुसत्तणं पावेंति ते मूलमेव पविसंति, ते मनुष्यं क्षेत्रजात्यादिविशुद्धं, पुनरपि धर्म्मचरणयोग्या भवन्तीत्यतः ||१६४||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७||

दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ७ और-भ्रीया० ||१६५||

शीलवतां-फलं

मूलमेव पवेसेंति, 'माणुसं जोणि'मिति' जणीति जोणिः, स्यादेतत्-किमाचरंतो माणुसत्तं पावेंतित्ति 'विमायाहिं सिक्खाहिं' ||१९७-२८०||सिलोगो, मिनोतीति मीयते वा मात्रा, विषमा मात्रा विमात्रा, सिक्खाते शिक्ष्यन्ते वा तामिति शिक्ष्या, व्रियत इति व्रतं,ब्रह्मचरणशीला सुव्रताः,पठ्यते च 'जे णरा गिहिसुव्वया'तत्र शिक्षानाम शास्त्रकलासु कौशल्यं, वेमाता नाम अनेकप्रकाराः पुरिसे पुरिसविसेसे इत्यतो वेमाता, सुव्रता गाना (नाम) पगतिभद्दया, उक्तं च-'चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुयाउं पकरेंति, तंजहा- पगतिभद्दयाए पगतिविणीययाए साणुकोसयाए अमच्छरियाए' 'उवेंति माणुसं जोणिं' मनुष्याणामियं मानुषी, 'कम्मसच्चा हु पाणिणो' कम्माणि सच्चाणि जेसिं ते कम्मसच्चा, तस्स जारिमाणि से तावंविधिं गतिं लभति, तं सुभमसुभं वा, अथवा कर्म्मसत्या हि, सच्चं कम्मं, कम्मं अवेदे नवेइत्ति, यदि हि कृतं कर्म्म न वेद्यते ततो न कर्म्मसत्याः स्युरिति, यदिवा नष्ट-कर्म्मा, इष्टफलामाधुर्यादिति, पठ्यते च-'कम्मसत्ता हु पाणिणो' कर्म्मभिः सक्ताः, उक्तं अल्पारंभपरिग्रहवतां फलं, यैस्तत् मूलमासादेतं(तं) || लद्धलाभं प्रतीत्योच्यते-'जेसिं तु विउला सिक्खा' ||१९८-२८२|| सिलोगो, ये इति अनिर्दिष्टस्य निर्देशः, विपुला विशाला इत्यर्थः, सिक्खा दुविधा-गहणा आसेवणया, 'मूलियं ते उड्डिया' उड्डिता नाम अतिक्रान्ता, पठ्यते च-'मूलं अइच्छिया' अतिक्रान्ता इति, लब्धलाभका वा 'सीलमंता' सह विसेसेण सविसेसा, सविसेसा नाम लाभगए वा लाभगा वा सीलवंता सविसेसा इत्यर्थः, णो दीणो अदीणो इति अदीणो णाम जो परीसहोदए ण दीणो भवति, अथवा रोगिवत् अपत्थाहारं अकामः असंजमं वज्जतीति दीनः, जे पुण हृष्यन्ति इव ते अदीणा जंति देवयं || उक्तं सीलवतां फलं, 'एवं अदी-णवं भिक्खुं' ||१९९-२८३|| सिलोगो, एवमवधारय, दीयते दीनमात्रं वा दीनः, न दीनः अदीनः, परीसहोदएऽवि सति अदीनः, ||१६५||

तदेवमदीणवं भिक्खुं देवलोगमानि तं मत्वा, अगारमस्यास्तीति अगारी तं चागारीणं, वेदित्वा, मानुष्य उपवन्न इति वाक्यशेषः, अगारी यः श्रावकः, असावपि देवलोकवान्, एकान्तदण्डस्तु नरक एक एव भवति, एवं सो बालो अप्पेहिं कामेहिं बहुं जीच्चति, स एवं त्रितयस्यास्य विशेषज्ञः 'कहन्नु जिच्चमेलिक्खं' कथमिति परिप्रश्ने, जिच्चतोऽपि एलिक्खंति एरिसं, सर्वस्तु कथमीदृशः ?, त्रितयविशेषाभिज्ञो जिच्चेज्ज, जिच्चमाणं वा अप्पाणेण संवेदेज्जा, तहाऽहं अप्पसुहत्थे देवसुहं जितो मूलं वा वमिति इति, अथवा जिच्चति यया सा जिच्चा जे तु, वेमात्रेण हि जित्वा लक्ष्यते जेतुमस्तीति, जिच्चा सो तु कहं लक्ष्यते? । उक्ता व्यवहारोपमा, साम्प्रतं सागरोपमा, अत्राह-वक्ष्यति भवं सागरोपमं, इदं तावदस्तु, यदुक्तं काणिणीदृष्टान्तः स नोपपद्यते, ननु चक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवमण्डलिकेश्वराणां अन्येषां पृथग्जनानां यथा वस्तूपमानि इष्टानि विषयसुखानि दृश्यंते, तथा मनुष्यवशप्राप्तावेवापदिश्यते, इत्यतस्तानि न काकिणीमात्राणि विषयसुखानि, उच्यते-ते हि काकिणीमात्रादप्यवस्थिता एव, कहं ?, जेण ते वंतासवा० अणितिया बहुसाधारणा इति, तिरिया य, तद्विपरीतास्तु देवकामाः, अप्येवं सहस्रमात्राऽभिदर्शनं, ननु तत्रैवापदिष्टं 'सहस्सगुणिता भोज्जो'त्ति जावऽणंतगुणोत्ति अयं तु सुमहदंतरविषयकरो दृष्टान्तः, सन्निरुद्धतरश्च, येनोच्यते-'जहा कुसग्गे उदगं ||२००-२८३|| सिलोगो, येन प्रकारेण यथा, समंताद् अतीव उत्ता पृथिवी सर्वतस्तेनेति समुद्रः, कुशाग्रं, यथा कश्चित्कुशाग्रे लम्बमाणमुदकं दृष्ट्वा ब्रूयात्-यदिदमुदकं कुशाग्रे लंबते एतत्समुद्रोदकं व, तच्च यथा प्रमाणताविधुरं 'एवं माणुस्सया कामा' अंतिए णाम तस्स समीवे कता, तैः सह तुल्यमाना, बिन्ध(न्दु)मात्रा अपि न पूर्यंति । 'कुसग्गमेत्ता इमे' ||२०१-२८४|| कुशाग्रमात्रा इति कुशाग्रोदकबिंदुमात्रा 'इमे'ति मानुष्यकाः सागरकुशाग्रमात्रा 'सन्निरुद्धंमि आउए' सन्निरुद्धं न

सागर दृष्टान्तः ||१६६||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७|| दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ७ औरभ्रीया० ||१६७||

बालपंडित फलं

वरिससतातो परं जीवंतीति, अंतरावि य णाणाविधेहिं उवक्कमविसएहिं सन्निरुज्झते, ततो अप्पसारेसु कामेसु सन्निरुद्धे य आउतंमि भवान्'कस्स हेतुं पुरो काउं'कस्सेति कस्स कारणं भवं असंजमं पुरस्कृत्य अधर्म्माय प्रवृत्तोऽसि?, किमन्यज्जो(ज्ञो) वदिश्यति, न तु स्वयं चेदाबाल्यादुपचितं कर्म्म वेत्तव्यामिति, येनात्मा 'जोगक्खेमं न संविदे'? संक्षेपार्थस्तु कस्सेहं अवराहं उवरिं काउं? कं वा पुरतो किच्चा? अप्पाण जोगखेमे ण संवियसि, उन्मत्तवत्, किंच-'इह कामाऽणियट्टस्स' ||२०२—२०३|२८५|| सिलोगो, 'इहे'ति इह मनुष्यत्वे, काम्यंत इति कामाः, कामेभ्य अनिवृत्तस्य, इयर्त्ती इच्छति वा अर्थो, आत्मार्थं एवापराध्यते, 'सुच्चा नेयाउयं मग्गं' नयणशीलो नैयायिकः 'मग्गं' ति दंसणचरित्तमइयं मोक्खमग्गं, तं श्रुत्वा, पठ्यते वा-पत्तो णेयाऊयं मग्गं, जं भुज्जो परिभस्सति, प्राज्ञः सन् नैयायिकं मार्गं जं पुणरवि सव्वतो भस्सति, जं पुणरवि मिच्छत्तं चेव गच्छति, एतस्स चेव सिलोगस्स पच्छद्धं केति अण्णहा पठंति-'पूतिदेहनिरोहेणं, भवे देवेत्ति मे सुयं' पोसयतीति पातयतीति (पुति) औदारिकशरीरमित्यर्थः, पूतिदेहस्स निरोधे पूतिदेहणिरोहो णासी देहो होंतो जइ अत्तट्ठो नावरज्झंतो इति मे सुयं, इति उपमदर्शनार्थः, मे इति मया,श्रुतमाचार्येभ्यो, नान्यतः। उक्तं बालिशफलं, देवलोकात् च्युतमनुष्येषु'इड्ढी जुत्ती'||२०४-२८५||सिलोगो, इड्ढी-ऋद्धी, द्युतत्यनेनेति द्युति, अश्नुते सर्वलोकेष्विति यशः,वृणोति वृण्वति वा तमिति वर्णः, एति याति अस्मिन्निति आयुः, 'सुखं' सौख्यं 'अणुत्तरं' ति मणूसेसु जं सव्वुत्तमं 'जत्थ भुज्जो मणुस्सेसु, तत्थ से उववज्जति'त्ति कंठ्यं, उक्तं बालपंडितयोः फलं, तदनुषङ्गादेवापदिश्यते-'बालस्स पस्स बालत्तं'||२०५-२८५|| सिलोगो, कंठ्यः। 'धीरस्स पस्स धीरत्तं'||२०६-२८५|| सिलोगो, धातीति धीरः, सेसं कण्ठ्यं। 'तुलिआण बालभावं' ||२०७-२८५|| सिलोगो, तुलियातो-तोलयित्वा, बालतो भावो ||१६७||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||१७८-२०७||

दीप अनुक्रम [१७९-२०८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ८ कापिलीया. ||१६८||

बालत्वं नरकादिगमनं, 'अबालं चेव पंडिते' अबालो पण्डित इत्यर्थः, तस्माद्देवलोके गमनं, एतानि तोलयित्वा 'चइऊण बालभावं, अबालं सेवए' आचरेत् 'मुनी' मुनीति त्रैलोक्यावस्थान् भावानिति मुणी, इति बेमि नयाः पूर्ववत् ॥ उरब्भिज्जं णाम सत्तममज्झयणं सम्मत्तम् ॥

इदानीमलोभाध्ययनं, तस्स चत्तारि अणुओगद्दारा उवक्कमादि परूवेऊण (णाम) निप्फन्ननिक्खेवे काविलिज्जंति, तत्थ गाहा–'निक्खेवो कविलंमी'॥२५०-२८६॥गाहा, निक्खेवो कविलस्स, निक्खेवो नामादिचउव्विहो, णामठवणाओ गयाओ, दव्वकाविलो दुविहो-आगमतो णोआगमतो य,आगमतो जाणए अणुवउत्तो,नोआगमओ तिविहो-'जाणगसरीरादि'०॥२५१-२८६॥ तत्थ जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्तो कविलो तिविहो-एगभविओ बद्धाऽऽउओ अहिमुहणामगोत्तो, भावकपिलो दुविहो–आगमओ णोआगमतो य, आगमतो जाणए उवउत्तो, णोआगमतो इमा गाहा–'कविलाउणामगोयं' ॥ २५२-२८६ ॥ गाहा, कण्ठ्या, एतस्स भावकविलस्स इमा य उप्पत्ती–'कोसंबी कासवजसा' ॥२५३-२८९॥ गाहा। तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबीए नयरीए जितसत्तू राया, कासवो बंभणो चोद्दसविज्जाठाणपारगो, राइणो बहुमतो, वित्ती से उवकप्पिया, तस्स जसा णाम भारिया, तेसिं पुत्तो कविलो णाम, कासवो तंमि कविले खुड्डलए चेव कालगतो, ताहे तंमि मए तं पयं राइणा अण्णस्स मरुयगस्स दिण्णं, सो य आसेण छत्तेण य धरिज्जमाणेण वच्चइ, तं दट्ठूण जसा परुण्णा, कविलेण पुच्छिया, ताए सिट्ठं--जहा पिया ते एवंविहाए इड्ढीए णिग्गच्छियाइओ, तेण भणति--कथं ?, सा भणति--जेण सो विज्जासंपण्णो, सो भणइ–अहंपि अहिज्जा-

कपिलनिक्षेपाः ||१६८||

अध्ययनं -७- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -८- "कापिलीय" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२०८-२२७||

दीप अनुक्रम [२०९-२२८]

मि, सा भणइ--इहं तुमं मच्छरेण ण कोइ सिक्खवेति, वच्च सावत्थीए नयरीए, पिइमित्तो इंददत्तो णाम माहणो, सो ते सिक्खावेहिति, सो गतो तस्स सगासं, तेण पुच्छितो--कोऽसि तुमं ?, तेण जहावत्तं कहियं, सो तस्स सयासे अहिज्जिउं पयत्तो, तत्थ सालिभद्दो णाम इब्भो, सो तेण उवज्झाएण णेच्चतियं दवावितो, सो तत्थ जिमित्ता २ अहिज्जइ, दासचेडी य तं परिवेसेइ, सो य हसणसीलो, तीए सद्धिं संपलग्गो, तीए भण्णइ--तुमे मे विपितो, ण य ते किंचिवि, णवरि मा रुसिज्जासि पोत्तमुल्लणिमित्तं अहमण्णेहिं २ समं अच्छामि, इयरहाऽहं तुज्झ आणाभोज्जा । अण्णया दासीण महो ढुक्कइ, सा तेण समं णिविण्णिया, णिद्दं सा न लहइ, तेण पुच्छिया--कतो ते अरती ?, तीए भण्णति--दासीमहो उवट्ठितो, ममं पत्तपुप्फाइमोल्लं णत्थि, सहीजणमज्झे विगुप्पिस्सं, ताहे सो अधितिं पगतो, ताए भण्णति-मा अधितिं करेहि, एत्थ धणो णाम सिट्ठी, अ(इ)प्पभाए चेव जो णं पढमं वद्धावेइ से दो सुवण्णए मासए देइ, तत्थिमं गंतूण तं वद्धावेहि, आमंति तेण भणियं, तीए लोभेण मा अण्णो गच्छिहित्ति अतिपभाए पेसितो, वच्चंतो य आरक्खियपुरिसेहिं गहितो, बद्धो य । ततो पभाए पसेणइस्स रण्णो उवणीतो, राइणा पुच्छितो, तेण सब्भावो कहितो, रायाए भणितो--जं मग्गसि तं देमि, सो भणति--चिंतित्ता मग्गामि, रायणा तहत्ति भणिए असोगवणियाए चिन्तेउमारद्धो--किं दोहिं मासेहिं साडिगाभरणा पडिवासगा जाणवाहणा उज्जाणोवभोगा मम वयस्साणं पव्वागयाण घरं भज्जाचउक्कयं जं चऽण्णं उवउज्जं ?, एवं जाव कोडीएवि ण ठाएति । चिंततो सुहज्झवसाणो संवेगमावण्णो जाइं सरिऊण सयंबुद्धो सयमेव लोयं काऊण देवयादिण्णगहियायारभंडगो आगतो रायसगासं, रायणा भण्णति-किं चिंतियं ?, सो भण्णति--'जहा लोहो तहा लोभो' गाहा (* २२४।२५६-२८९) कण्ठ्या, राया भणति-कोडिंपि देमि अज्जोत्ति भणति राया पहट्ठ-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२०८-२२७|| दीप अनुक्रम [२०९-२२८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ८ कापिलीया. ||१७०||

संसारस्याध्रुवत्वं

मुहवण्णो। सोऽवि चइऊण कोडिं जातो समणो समियपावो ॥ १ ॥(२५७-२८९)छम्मासा छउमत्थो(२५८-२८९)।छम्मासा छउमत्थो आसी, इत्तो य रायगिहस्स नयरस्स अंतरा अट्ठारसजोयणाए अडवीए बलभद्दपामोक्खा इक्कडदासा णाम पंच चोरसया अच्छंति,'अइसेसे उप्पण्णे'(२५९-२८९) गाहा । णाणेण जाणियं, जहा ते संबुज्झिस्संति,ततो पट्ठितो, संपत्तो य तं पएसं, साहिएण य दिट्ठो कोऽवि एतित्ति आसण्णीभूतो, नाओ जहा समणगोत्ति, अम्हं परिभविउं आगच्छति, रोसेण व गहितो, सेणावइसमीपं णीतो, तेण भण्णाति-मुयह णंति, ते भणंति-खेल्लिस्सामो एतेणांति, ताव एते भणंति-नच्चसु समणगोत्ति, सो भणइ-वायंतगो णत्थि, ताहे ताणिवि पंचवि चोरसयाणि तालं काहेंति, सोऽवि गायति धुवगं,"अधुवे आसासयंमी, संसारंमि दुक्खपउराए।किं णाम तं होज्ज कम्मयं? जेणाहं दुग्गइं ण गच्छेज्जा॥१॥"(*२०८-२८९) एवं सव्वत्थ सिलोगंतरे धुवगं गायति,'अधुवे'त्यादि, तत्थ केइ पढमसिलोगे संबुद्धा,केइ बीए,एवं जाव पंचवि सया संबुद्धा। णामणिप्फन्नो,सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं,सो भगवं तेसिं चोराण बोहणणिमित्तं इमं धम्मं गीतयं गायति-'अधुवे असासयंमिं'॥२०८॥तत्थ निवृत्तं,अधुवो णाम णरगादिगमणसंबद्धो संसारो जतो अधुवो,अत एव असासतो,कथं?,जतो एव ममं प्रियाप्रिय इत्यत एवाहं बोधयितुमानीतः,न हि भक्तिवादे पुनरुक्तमपि,यथा सर्वातिशयनिधानं०तथा आघवाणियाए तहा प्रसापे(दे) उपदेशे च,एवमिहवि अधुवे असासते य,उवदेशतो भयदरिसणओ य ण पुणरुत्तं भवति,अधुवे असासयंमि माणुस्सतं णच्चंतं भवति तेण अधुवं, ण कोइ अच्चंतमणुस्सो अत्थि, असासयं तु सोपक्रमायुषत्वात्, संसरतीति संसारः, सारीरमाणसाणि दुक्खाणि जत्थ पउराणि संभवंति दुक्खपउरो, अतो तंमि संसारंमि दुक्खपउराए तीर्णोऽपि स भगवान् तं तितीर्षुः इदमवोचत्- 'किं णाम होज्ज तं कम्मगं' किमिति परिप्रश्ने, किंनाम, क्रियत इति कर्म, जेणाहं दुग्गइत्तो ||१७०||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२०८-२२७||

दीप अनुक्रम [२०९-२२८]

संसारस्याध्रुवत्वं

मुच्चेज्जा, जेण कम्मुणा कतेण अहं दुग्गइतो मुच्चेज्जा, कुत्थिता गति दुर्गति, सा चतुर्विधा-णेरइयदुग्गती तिरिय०मणुय० देवदुग्गती य, णागकर(उज्जु)णीया पुण पढंति 'अधुवंमि मोहं'गाहा, एतेवि एमेव धुवगं पच्चुग्गायंति,तालिं च कुट्टिंति,तेहिं पच्चुग्गातीए कविलो भणति-'विजहित्तुं पुव्वसंजोगं' ||२०९-२९०|| विविधं हित्वा वि०, पुव्वो णाम संसारो, पच्छा मोक्खो, पुव्वेण संजोगो पुव्वस्स वा संजोगो पुव्वसंजोगो, अथवा पुव्वसंजोगो असंजमेण णातीहिं वा, स्निह्यते अनेनेति स्नेहः, न कुत्रचिदिति, न तान्यनुसरे। 'तो णाणदंसणसमग्गो' ||२१०-२९१|| वृत्तं, तो इति ततो धुवाणंतरं स भगवान् कपिलः ज्ञानदर्शनसमन्वितः हियनिस्सेसाय, तत्थ हितं पथ्यं, इह परत्र च नियतं निश्चितं वा श्रेयः निःश्रेयसं अखयं, संसारव्युच्छेदायेत्यर्थः,कथं हि सर्वे सत्त्वाः संसारविच्छेदं कुर्युः, 'तेसिं विमोक्खणट्ठाए' 'तासिं' ति तेसिं चोराणं, तेहिं सव्वेहिं पुव्वभवे सह कविलेण एगट्ठं संजमो कतो आसि, ततो तेहिं सिंगारो कतिल्लओ जम्हा अम्हे संबोधितव्वेति, अतो भण्णति-तेसिं विमोक्खणट्ठाए, अथवा तासिं विमोक्खणट्ठाए, कधं हि एते चोराः सर्वकर्मविमोक्षाय अभ्युत्तिष्ठेयुः, तेसिं विबोहणट्ठाए भासति मुणिवरो, मुनीनां वरः- प्रधानः, विगतो मोहो यस्य स भवति विगतमोहः, केवलीत्यर्थः, किं सोऽपि तथा ?, न, उच्यते-'सव्वं गंथं कलहं च'||२११-२९१|| वृत्तं, 'सव्वं'ति अपरिसेसं, ग्रन्थनं ग्रथ्यते वा येन स ग्रन्थः, स द्विविधः-बाह्योऽभ्यन्तरश्च, कलाभ्यो हीयते येन स कलहः, भण्डनमित्यर्थः, तथाविधं-तथाप्रकारं, यद्विधं असंयतानां, भिक्षुरुक्तः, अथवा तथाविधो भिक्षुः "सव्वेहिं कामजाएहिं' सव्वेहिं-अपरिसेसेसु, काम्यंत इति कामाः, कामजातेसुंति कामप्रकारेषु, इच्छाकाममदनकामेष्वित्यर्थः, 'पासमाणे' त्ति तेषामिह परत्र च पापं पश्यन् 'ण लिप्पति' त्ति न हि प्राज्ञः अव्ययं दृष्ट्वाऽऽचरति, त्रायतीति त्रायी, संसारमहाभयादात्मानं त्रायतीति त्रायी, पुनः 'भोगा-

||१७१||

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ८ कापिलीया० ||१७२||

ग्रन्थादि-त्यागः

मिसदोसविसन्ने'॥२१२-२९२॥वृत्तं,भुज्यंत इति भोगाः,यत् सामान्यं बहुभिः प्रार्थ्यते तद् आमिषं,भोगा एव आमिषं२,दोसो णाम इह-परत्र च दुःखोत्पत्तिकारणं,भोगामिस एव दोसो,विषमन्नवत्,यतो न शक्नोति पङ्कविषन्न इव गजमात्मानं समुद्धर्तुं,अतो भोगामिसदोसेहिं विसन्ना भोगामिसदोसविसन्ना,तदेव'हियनिस्सेयसबुद्धिवोच्चत्थे' हितमिह परत्र च यत्थ(श्रेयोऽ)र्थः, निःश्रेयसं मोक्षपदमित्यर्थः,वुच्चित्थोत्ति जस्स हिते निःश्रेयसे अहितानिःश्रेयससंज्ञा,विपरीतबुद्धिरित्यर्थः,स एवंगुणजातीयत्वात् उवचए थूलसरीरो मरहट्ठाणं मंदो भन्नति, अवच्चए जो किससरीरो सोवि मंदो भण्णति, भावमंदो अवच्चए,जस्स थूला बुद्धि सो मंदबुद्धी भण्णइ, एत्थ थूलबुद्धिमंदेण अधिकारो, मूढो णाम कज्जाकज्जमयाणाणो,सोतिंदियविसदोदो(यवसट्टो)वा,अहवा बालमंदमूढा शक्रपुरन्दरवदेकार्थमेव,सो एवंविधो बालो मंदो मूढो भोगामिसदोसविसन्नो'बज्झति मच्छिया व खेलंमि' जहा मच्छिया विखेलेण चिक्कणेण नाम शिलष्टा बध्यन्ते एवं सो भोगसंशिलष्टत्वात् अट्ठविहेण कम्मेण बज्झति-'दुप्परिच्चया०' ॥२१३-२९२॥ वृत्तं, दुःखं परित्यजन्ते इति दुष्परित्यजाः 'इमे' इति इमे मनुष्यजाः कामाः, कामाः कामा न सुखं त्यजन्त इति णो सुजहा, दधातीति धीरः न धीरः अधीरः, पुरुषः उक्तार्थः, 'त्यज हानौ ओहांक् त्यागे' इत्यतः पुनरुक्तं, तच्च न भवति, कस्मात्?, अविशेषितोद्देशात्, उक्तं च-'दुप्परिच्चया इमे'ननूपादिष्टं केन केभ्यः, तत उच्यते- 'णो सुजहा अधीरपुरिसेहिं' जहिंसु, अधीरपुरिसा भवन्ति तेसिं दुप्परिच्चया, यद्यपि अधीरपुरुषैः दुस्त्यजा तथापि अह संति सुव्वया सव्वे 'जे तरंति वणिया व समुद्दं' अथेत्यानन्तर्ये, निपातो वा, सन्तीति विद्यन्ते, जे, किं कुर्वन्तो?,क्वचित्तु पठन्ति 'जे तरंति अतरं वणिया व' अतरो णाम समुद्दो, समन्तादुनाचि उन्ना वा पृथिवीं कुर्वत अनेनेति ||१७२|| समुद्रः, ये इत्यनुद्दिष्टस्य निर्देशः, वणिग्भिस्तुल्या वाणिया, कामं दुरुत्तरः समुद्रः तथाविधप्लवेन तीर्यते, एवं दुस्त्यजा कामा

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२०८-२२७||

दीप अनुक्रम [२०९-२२८]

कुतीर्थिका नामज्ञत्वं

अधीरैः तथापि तृणमिव पटान्ते लग्नं त्यजन्ति,के पुनः गृहेभ्यो विनिसृत्य,'समणा मु एगे वयमाणा||२१४-२९३||वृत्तं,श्राम्यन्तीति श्रमणा, 'मु' इति आत्मनिर्देशः, एके,न सर्वे, ये मिथ्यादृष्टिदर्शिनः परतंत्राः, प्राणनं प्राणः, प्राणानां वधः प्राणवधः अतस्तं, मिया इति मृगा मृगभूता न हिताहितज्ञा, ते हि प्राणांश्चैव ण याणंति, कुतस्तर्हि प्राणिवधं ज्ञास्यन्ति?, कथं केसिंति?, एगिंदिया अजीवा एव, तमजाणंता 'मंदा नरगं गच्छंति' मंदा नाम बुद्ध्यादिभिरपाचिता, मंदबुद्धय इत्यर्थः, नीयते तस्मिन्निति नरकः, नारकं कर्म्म कुर्वते ते नरका, कारणे कार्योपचारादिति, गच्छंति, 'बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं' बाला उक्ताः, पातयति पासयति वा पापं, दर्शनं दृष्टि अतत्त्वे तत्त्वाभिनिवेशात् पापदृष्टयो भवंति, बहुत्वग्रहणं तु सर्वे कुप्रवचनिनो मिथ्यादृष्टयः, स्यादाशङ्का-स्वयं न कुर्वते प्राणवधं, उच्यते, अस्तु तावत् स्वयमकरणं, अनुज्ञायामपि एवं दोषः, यतोऽपदिश्यते- 'न हु पाणवहं अनु०' || २१५-२९४ || वृत्तं, न प्रतिषेधे, प्राणवध उक्तः, ये नौद्देशिकं भुंजते ते नानुजाणंति, ण य प्राणवधं अणुजाणंतो मुच्चेज्ज कदाचिदपि 'दुक्खाना' मिति सारीरमाणसाणं, अट्ठविधस्स कम्मस्स दुःखमिति संज्ञा, स्यादेतत्-केनोपदिष्टं ?, उच्यते-'एवमारिएहिमक्खायं' णाणदंसणचरित्तारिया, स्यादन्येऽप्यार्याः क्षेत्रार्यादयः तद्विशेषणार्थम्,(अ)केवालिव्युदासार्थमुपदिश्यते 'जेहिं सो साधुधम्मो पन्नत्तो' साधूणां धर्म्मः सो साधुधर्मः,न च तीर्थकर एव स्यात्, कथं श्रमणो भवति ?, उच्यते, 'पाणे य नाइवाइज्जा' || २१६-२९२ || वृत्तं, प्राणनं प्राणः, अतिपतनमतिपातः, प्राणान्नातिपातयेव, चशब्दात् हणंते णाणुजाणामि, मृषावादादीन्यपि न सेवेत, 'से समियत्ति' से इति निर्देशः, सम्यक् इतः शमितः, शान्त इत्यर्थः, तत्रागत इति प्रतीतं, एवं समितात्मनः 'ततो से पावयं कम्मं निज्जाइ उदगं व थलाओ' निज्जाइ ||१७३||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२०८-२२७||

दीप अनुक्रम [२०९-२२८]

नाम अधो गच्छति, दृष्टान्तः उदगं वा थलातो, केषां नातिपातेज्जा ?, उच्यते, 'जगणिस्सितभूताणं तसणामाणं च थावराणं च' पठ्यते च-'जगनिस्सितेसु थावरणामेसु भूतेसु तसणामेसु वा ॥२१७-२९४॥ वृत्तं, जेसु ते प्राणाः आश्रिता इत्यर्थः, येऽप्येवं पठन्ति--'जगणिस्सिएहिं० थावरेहिं वा' तेषामस्त्यविरुद्धं, कथं ?, हिंकारस्य सन्निधानत्वात् कारणत्वाच्च, तत्र कारणे बहुवचन एव उपयोगो हिंकरणस्य, त(य)था तेहिं कयं, सन्निधाने तु एकवचन एव हिंकारोपयोगः, तंजहा--कहिं गतो आसि?,कहिं च ते सद्धा?,बन्धानुलोम्यात् अनेकेऽप्येकादेशोऽविरुद्धः,तेन पुनरपि ब्रूमः,शिष्योऽसौ,महद्धर्थात्(महाध्यर्थात्)सत्त्वानुकंपया च 'न तेहि(सि)मारभे दंडं'न इति प्रतिषेधे.तेहिंति तेहिं पुव्वादिट्ठेहिं तसेहिं थावरेहिं या(वा)ण हणे, मणेणवि अप्पणा ण हणे,अज्जापि केनचिदुच्यते-'वीसासयाऽभिनिवेसेन वा प्रणयाद्वा स्वयममारयता, एतत्सर्वे यदि मारयंति ततस्ते न मारयामि, कशादिभिर्वा हन्यमानो तथापि नो तेहिं आरभे दंडं, एत्थ दिट्ठंतो--उज्जेणीए सागरस्स सुतो चोरेहिं हरिउं मालवके सूयगारस्स हत्थे विक्कीतो, लावगे मारयसु, ण मारयामीति, हत्थीपादत्तासणं सीसारक्खणकरणं चेति । स एवं प्राणत्यागेऽपि सत्त्वानपरोधी, मणसा वयसा कायसा चेव, मणेण सयं पाणाइवातं न करेति, एवं योगत्रयकरणत्रयेण नव भंगा भाणियव्वा ॥ उक्ता मूलगुणाः, तदुपकारीति उत्तरगुणा भवंति--ते च समितिगुप्त्यादयः (तत्र) गवेषणासमितिमधिकृत्योपदिश्यते-'सुद्धेसणाउ णच्चा'॥२१८-२९५॥शुद्धयन्ते शोभते वा शुद्धः, एषति एभिरित्येषणा, ततश्चैवं ज्ञात्वा तत्थ सुद्धेसणाओ सत्तण्हं पिंडेसणाणं जाव अलेवकडाओ, ताओ पुण उवरिल्लाओ चत्तारि, अथवा सव्वाओ चेव एसणाओ सुद्धाओ, तास्वेवात्मानं स्थापयेत्. ताहिं भिक्खं गेण्हतित्ति, इच्चेवं तासु अप्पा ठावितो भवति, तासु य ठावेंतिण संजमे अप्पा ठावितो भवति, तदप्येषणीयमेषित्वा 'जाताए घासमेसिज्जा' जाता

प्राणवध-त्यागः

॥१७४॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२०८-२२७|| दीप अनुक्रम [२०९-२२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ८ कापिलीया. ||१७५||

एषणा-समितिः अनियमितानामासुरत्वं

नाम यात्रा मात्रा, ग्रस्यते ग्रसत इति ग्रासः, अथवा जातग्रहणात् यत्प्रासुकजातं, तदपि भुंजानः 'रसगिद्धे न सिया भिक्खाए' न रसागिद्धो होज्जा, भिक्षां अकुः भिक्खाए, स्यात्-किमालंबणं ?, उच्यते--'पंताणि चेव सेविज्जा' ॥२१९ २९५॥ वृत्तं, प्रगतं अन्तं प्रान्तं, किं च तत् प्रान्तम् ?, उच्यते--'सीयपिंडं पुराणकुम्मासं, अदु बुक्कसं पुलागं वा' अदुवेत्यथवा, बुक्कसो णाम कुसणणिब्भाडणं च, अथवा सुरागलितसेसं बुक्कसो भवति, तत्थ सुक्कवेल्लूण पूतलियाओ कज्जंति, पुलागं णाम निस्साए णिप्फाए चणगादि यद्वा विनष्टं स्वभावतः तत् पुलागमुपदिश्यते, 'जवणट्ठा निसेवए मंथु' मथ्यते इति मंथुं सत्तुचुन्नाति, उत्तरगुणरक्षणाधिकारे प्रकृते इमेवि उत्तरगुणा एव, ते तु केचिदनुज्ञाय अपदिश्यंते केचित् प्रतिषेधतः 'तत्थ सुद्धेसणाउ पाच्चेति' एवं कर्त्तव्यमिति अनुज्ञा, प्रतिषेधस्तु 'जे लक्खणं च सुविणं च' ॥२२०-२९५॥ वृत्तं, ये इति अनुपदिष्टस्य निर्देशः, लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं, सामुद्रवत्, सुप्यते स्वप्नमात्रं वा स्वप्नं, स्वप्नाध्ययनमित्यर्थः, अंगतीत्यंगं, अंगविद्या नाम आरोग्यशास्त्रं, प्रयुंजतीति, लोकस्योपदिश्यन्ते--'ण हु ते समणा वुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं' कण्ठ्यः, एवं गृहाण्यपि हित्वा इंदियवसगा 'इह जीवियं अनियमित्ता'॥२२१-२९६॥वृत्तं,'इहे'ति इह लोके,जीवितं संजमजीवितं,न नियमित्ता अनियमित्ता, इंदियानियमेणं, नोइंदियनियमेणं,ये विविधैः प्रकारैर्वा भृशं भ्रष्टाः प्रभ्रष्टाः, समाधानं समाधिः योजनं योगः समाधियोगेहिं प्रभ्रष्टाः पब्भट्ठा समाधियोगेहिं, ते 'कामरसगिद्धा' काम्यन्त इति कामाः- इच्छाकामा मदनकामा य, भुंज्यंत इति भोगाः, रसास्तिक्तादयः, गृध्यते स्म गृद्धः, ते लक्षणादीनि कामभोगरसगाद्धर्यात् प्रयुंजेत्ता 'उववज्जंति आसुरे काए' उपपतनमुपपातः, उपपद्यन्ते स्म, असुराणामयं आसुरः, ते हि वा (बहिचा) रियसमणा असत्थभावणाभाविया असुरेसु उववज्जंति, अथवा असुरसदृशो भावः आसुरः, क्रूर इत्यर्थः, ||१७५।

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२०८-२२७||

दीप अनुक्रम [२०९-२२८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ८ कापिलीया० ||१७६||

'उववज्जंति आसुरे काए' त्ति रौद्रेषु तिर्यग्योनिकेषु उववज्जंति, 'तत्तोऽविय उवट्टित्ता' ||२२२-२९६|| वृत्तं, ततः असुरकायातो उव्वट्टित्ता, संसरतीति संसारः, बहुंति चउरासीतियोनिलक्षभेदः पुनः पुनः, अणुपरिंति परियडंति, बहुकम्मलेवलित्ताणं 'बहुं'ति अट्ठविधमवि कम्मं अणेगभेदं, अथवा 'बहुं'ति दीहकालट्ठितीयं, कम्ममेव लेपः अतस्तेन कर्म्मलेपेन, लिप्तानां बुद्धयते स्म बोधः सुष्ठु दुर्लभः सुदुर्लभः 'तेसिंति' असुरकायनिबद्धाणी, यदुक्तं सुचिरकालं संसारं भमिस्संति, स्याल्लक्षणादीनि किमर्थं प्रयुंज्यते ?, लोभार्थे, न लोभस्यान्तोऽस्ति, कथं ?–'कसिणंपि जो इमं लोयं'||२२३-२९७||वृत्तं, कसिणं-कृत्स्नं प्रतिपूर्णं, अपि पादार्थे, 'यो' य इति अनिर्दिष्टस्य निर्देशः, यः कश्चित् 'इम'मिति प्रत्यक्षं, लोक्यत इति लोकः विविधः ऊर्ध्वलोकादि, प्रतिपूर्णं नाम पूरयित्वा, 'एकस्ये'ति अन्यतमस्यासंयतस्य 'तेणावि से ण (सं) तुस्से 'इति दुप्पूरए इमे आया' इति उपप्रदर्शने, दुःखं पूर्यत इति दुप्पूरए, 'इमे' इति असंयतात्मा नः स्यात्-कथं लोकेनापि रत्नपूर्णेन न तुष्येत्, उच्यते-'जहा लाभो' ||२२४-२९७|| वृत्तं अत्र दृष्टान्तः, इदमेव ममेव हि 'दोमासकतं कज्जं' कण्ठ्यः, स्याद् वमित्वा मुनिः किमाकाङ्क्षते?, ननु स्त्रीविपयार्थं, उक्तंच-"कामश्च वित्तं च वपुः स्त्रियश्च०, तस्यैता मनुष्यराक्षस्यो, पिशितैरिव राक्षसः न शक्यन्ते वसुभिस्तोषयितुं इत्यतस्तासु नो रक्खसीसु० ||२२५-२९७|| वृत्तं 'नो' इति प्रतिषेधे, राक्षसीभिस्तुल्या राक्षस्यो, न गृध्येत, न लुभ्येत इत्यर्थः, गच्छतीति गंडं, गंडं नाम स्तनौ वक्षःसु गंडानि यासां ता भवंति गंडवक्षसः, अनेकानि चित्तानि यासां तेन भवन्त्यनेकचित्ताः.- कुर्वन्ति तावत् प्रथमं प्रियाणि, यावन्न जानन्ति नरं प्रसक्तं । ज्ञात्वा च तन्मन्मथपाशबद्धं, ग्रस्तामिषं मीनमिवोद्धरंति ||१|| अथवा- अन्नं भणंति पुरतो अन्नं पासेण वज्जमाणीओ । अन्नं च तासि हियए न जं खमं तं करेंति महिलाओ ||१|| 'जाओ पुरिसे पलोभित्ताणं' जाओत्ति अनिर्दिष्टस्य

लोभस्यानन्त्यं

||१७६||

निर्देशः, पुरुष उक्तार्थः, इत्येवं मत्वा नार्यः तासु, नारीसु नो पगिज्झिज्जा ॥२२६-२९८॥ वृत्तं. मानुषीष्वित्यर्थः, भृशं गृद्ध्येत प्रगृद्ध्येत्, 'इत्थीविप्पजहे अणगारे' स्त्रीभेददर्शनार्थं पुनरुक्तं, जेण तिरिक्खजोणित्थिओ णारीवइरित्ताओ तेण ण पुणरुत्तं, विविधेहिं पगारेहिं जहेज्ज विप्पजहेज्ज, स्यात्-कुओ न गृध्येत ?, उच्यते- 'धम्मं च पेसलं णच्चा' धारयतीति धर्मः, प्रियं करोतीति पेशलः, यथावत् ज्ञात्वा तत्रैवात्मानं स्थापयेत्, तमेवाचरेदित्यर्थः, 'इइ एस धम्मे अक्खाए'॥२२७-२९८॥ वृत्तं, इति उपप्रदर्शनार्थः, एष इति योऽयमुक्तः, धारयतीति धर्म्मः, 'अक्खाते' त्ति कहिते परूविते इत्यर्थः, केन?- कपिलेन, स कीदृशः ? 'विसुद्धपण्णेण' विसुद्धा प्रज्ञा यस्य स भवति विशुद्धप्रज्ञः तेन, केवलज्ञानवता, 'तरिहिंति जे तु काहिंति, ते एतं करिहिंति' तरिहिंति संसारौघं तेहिं आराहिया दुवे लोगुत्ति इह लोगे तावत् बहूणं सावयादीणं अच्चणिज्जो, परलोएवि णो आगच्छिस्संति हत्वद्धेव्वं(अहमदेवत्ता) वेदणादि, अहवा इहं अव्वासंगसुहाभिज्ञा सरिसमावित्तत्वाच्च सर्वलोक.स्तेनाराधितः परलोकेऽपि निर्वाणसुखमित्यतः तेन इहाराधिताः दुवे लोगात्ति, एवं ते सव्वे संबुद्धा इति बेमि । नयाः पूर्ववत्॥ कापिलिज्जं सम्मत्तम् ८॥

अलोलता उक्ता, इहमपि अलोलता एमेवऽधऽस्स चत्तारि अणुयोगद्दाराणि परूवेऊण णामणिप्फण्णे णिक्खेवे णमी पव्वज्जा य दुपदं णामं, तच्च 'णिक्खेवो उ णमिंमि' ॥२६०-२९९॥गाहा,णमी चउव्विहो-णामादि,दव्वणमी दुविहो-आगमतो णोआगमतो य,आगमतो जाणए अणुवउत्तो,णोआगमतो'जाणगसरीर'(२६१-२९९)जाणय०भवियसरीर०,तव्वइरित्तो तिविधो-एगभवियादि ३, भावणमी दुविधो-आगमतो णोआगमतो य, आगमओ जाणए उवउत्तो, णोआगमतो 'णमीआउणामगोत्तं (२६२-२९९) गाहा, ||१७७||

अध्ययनं -८- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -९- "नमिप्रव्रज्या" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९||

दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

कण्ठ्या, नमित्तिगतं, इदाणिं 'पव्वज्जाणिक्खेवो'(२६३-२९९) गाहा, पव्वज्जा चउव्विहा, णामादि, दव्वपव्वज्जा जाणयसरीर० वतिरित्ता अन्नउत्थियादीण, भावपव्वज्जा भव्वस्स य सावज्जारंभपरिच्चागो, सो जह केण कओ ?, उच्यते, 'करकंडु कलिंगेसु' ||२६४-३०६|| गाहा, कलिंगजणवए कंचणपुरं णगरं, तत्थ करकंडुराया, तस्स उप्पत्ती जहा जोगसंगहेसु जाव दहिवाहणो राया करकंडुयस्स रज्जं दाऊण पव्वइतो, करकंडू दोण्हवि रज्जयाणं सामी जातो । पंचालजणवए कंपिलपुरे णगरे दुम्मुहो णाम राया, विदेहजणवए मिहिलाए नयरीए नमी राया, गंधारजणवए पुरिसपुरे णगरे नग्गति णाम राया। एतेसिं संबोधकारणाणि इमाणि, तंजहा 'वसभे अ इंदकेऊ'||२६५-३०६||गाहा, तत्थ करकंडुस्स ताव भण्णति–सो करकंडू राया गोउलप्पिओ, तस्स अणेगाइं गोउलाइं, सो अन्नया सरयकाले गोउलं गतो, पेच्छइ वच्छगं थिरथोरगत्तं सेतं वण्णेणं, राइणा गोवालो भणितो मा एतस्स मातरं दुहेज्जह, जाहे य वड्ढितो होज्जा ताहे अण्णेसिंपि गावीणं दुद्धं पाएज्जह, तेहिं गोवेहिं तहेव कयं, सो वसभो महाका(ब)लो जातो, जूहाहिवो कतो, अन्नया राया कस्सइ कालस्स आगतो पेच्छति महंतं वसभपड्डएहिं घट्टिज्जंतं, भणति गोवे-कहिं सो वसहोत्ति?, तेहिं सो दाइतो, पेच्छंततो राया विसादं गतो, अणिच्चतं चिंततो संबुद्धो, 'सेअं सुजातं सुविभत्तसिंगं' || २७१-३०६ || गाहाओ तिन्नि, करकंडु संबुद्धो|| इदाणिं दुम्मेहो-जो इंदकेउं उस्सितं लोकेण महिज्जंतं पासइ, पुणो य महिमावसाणे विलुप्पंतं पडितं मुत्तपुरिसाण मज्झे, पासिऊण अणिच्चयं चिंततो संबुद्धो। 'जो इंदकेउं समलंकियं तु'||२७२-३०६||गाहा कण्ठ्या, इदाणिं णमिणामा, तत्थ गाहा—'महिलावइस्स णमिणो' ||२६६ ३०६|| भवंति गाहा, णमीति किं ताव तित्थकरो किं ताव अन्नो कोऽइत्ति ?, अत उच्यते-'दोन्निवि नमी विदेहा'||२६७-३०६|| गाहाओ तिन्नि कण्ठयाः, एत्थ बितिएण णमिणा अधिकारो, अस्सऽन्नया केनापि

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९||

दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

पुव्वकम्मोदएण दाहज्जरो संवुत्तो, विज्जा ण सक्कंति तिगिच्छितुं, एवं छम्मासा गता, तत्थ दाहोवसमणनिमित्तं देवीओ चंदणं घसंति, तासिं कलिगाणि खलखलेंति, सो भणति-कण्णघातोत्ति, देवीहिं एक्केक्कं अवणीयं, तथावि कण्णघातो, ततो बितियं, एवं जाव एक्केक्कयं ठियं, तेण भण्णति-कीस इदाणिं खलखलसद्दो नत्थि ?, ताओ भणंति-इदाणिं एक्केक्कगं वलयगं, तेण सद्दो णत्थि, एवं भणितो संबुद्धो, **'बहुआणं सद्दयं सुच्चा'**||२७४-३०६||गाहा कण्ठ्या, सो तेण दुक्खेण अब्भाहतो परलोगाभिकंखी चिंतेति-जइ एयाओ रोगाओ मुच्चामि तो पव्वयामि, कत्तियपुण्णिमा वट्टति, एवं सो चिंतितो पासुत्तो, पभायाए रयणीए सुमिणए पासति--सेयं नागरायं मंदरोवरिं च अत्ताणमारूढं, णंदिघोसतूरेण य विबोहितो, हट्ठतुट्ठो चिंतेइ--अहो पहाणो सुविणो दिट्ठोत्ति, पुणो चिंतइ-कत्थ मया एवंगुणजातितो पव्वतो दिट्ठपुव्वोत्ति, चिंतयंतेण जाती संभरिता, पुव्वं माणुसभवे सामण्णं काऊण पुप्फुत्तरे विमाणे उववण्णो आसि. तत्थ देवत्ते मंदरो जिणमहिमाइसु आगएण दिट्ठपुव्वोत्ति संबुद्धो पव्वतितो। एवमेते करकंडादी चत्तारिवि रायाणो पुप्फुत्तराओ चइऊण एगसमएण संबुद्धा, एगसमए केवलनाणं, एगसमएणं सिद्धिगमणंति । इदाणिं णग्गतिस्स **'जो चूअरुक्खं तु मणाभिरामं'**||२७५-३०६|| गाथा, सो आहेडएण णिग्गच्छंतो सो चूतपादवं कुसुमितं पासइ, तेण ततो एगा चूतमंजरी गहिता, ततो अन्नेणवि, जया अन्नेसिं ण य होंति ताहे अन्नेहिं पत्ताणि गहिताणि, एवं सो चूतो सपुप्फपत्तो कट्ठावसेसो कतो, राया तेणेव मग्गेण आयातो, अपेच्छंतो पुच्छति, अमच्चेण दाइतो कट्ठावसेसो, अणिच्चियं चिंतियंतो संबुद्धो पव्वइतो । एवमेते पव्वतिता समाणा विहरंता खितिपतिट्ठियनगरे गता, तत्थ णयरमज्झे चाउद्दारं देउलं, तं पुव्वेण करकंडू पविट्ठो, दुम्मुहो दक्खिणेण, किह साहुस्स अन्नतोमुहो अच्छामित्ति तेण वाणमंतरेण दाहिणपासेवि मुहं कतं, णमी अवरेणं, ततोवि कयं,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९||

दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

गंधारस्सवि उत्तरेण कयं, तस्स य करकंडुस्स आबालप्पभितिं सा कंडू अत्थि, तेण कंडूयगं गहाय मसिणं २ कण्णो कंडूइतो, तं तेण एगत्थ संगोवियं, तं दुम्मुहो पेच्छइ, सो भणइ-'जया रज्जं०' ||२७६-३०६|| सिलोगो कण्ठ्यः, जाव करकंडू पडिवयणं न देति ताव णमी वयणसमकं इमं भणइ—'जया ते पेतिते रज्जे०' ||२७७-३०६|| गाहा, किं एगस्स तुमं आउत्तगोत्ति नमी नग्गतिणा भण्णति, ताहे गंधारो भणति-'जया सव्वं परिच्चज्ज'||२७८-३०६|| गाहा कण्ठया, (ताहे) करकंडू भणति-'मुक्खमग्गपवण्णाणं (पवन्नेसु)' ||२७९-३०६|| गाथा कण्ठ्या, एत्थ पुण णमिणो अधिगारो, जेण णमिपव्वज्जत्ति भण्णति || गतो णामणिप्फण्णो, सुत्तालावगणिप्फण्णे सुत्तमुच्चारेतव्वं, तं च इमं सुत्तं-'चइऊण देवलोगाओ'||२२८-३०७|| सिलोगो,चइत्ता-चइऊण देवानां लोको देवलोकः तस्माद् देवलोकाद्, उत्पन्नवान् उत्पन्नः, माणुस्साणं लोगो मणुस्सलोगो. उवसंतमोहणिज्जो दंसणमोहणिज्जं चरित्रमोहणिज्जं च उवसंतं जस्स सो भवति उवसंतमोहणिज्जो, 'सरति पोराणियं जाइं' पोराणजातिं अन्नंमि माणुसभवग्गहणे संजमं काऊण पुप्फुत्तरविमाणे आसी तं पुव्वियं। 'जाइं सरित्तु भगवं'(*२२९-३०७)सहसा संबुद्धो सहसंबुद्धो, असंगत्तणो समणत्तणे, स्वयं,नान्येन बोधितः,स्वयंबुद्धः कुत्र?'अणुत्तरे धम्मे,पुत्तं ठवित्तु रज्जे' पुनाति पिबति वा पुत्रः,अभिनिक्खमति स्म अभिनिक्खमति, कश्चासौ ?, नमी राया, स्थादेतत्, कुत्रावस्थितः कीदृशान् वा भोगान् भुक्त्वा संबुद्धः ?, तत उच्यते 'सो देवलोगसरिसे' (२३०-३०७) स इति से नमी, देवानां लोगो देवलोगो तत्सदृशे, अंतेपुरवरगतो, अन्तःपुरम्-उपरोधः वरं-प्रधानं, पहाणे अंतेपुरे, अनन्यसदृशे इत्यर्थः, 'वरे भोगे'त्ति देवलोकसरिसे चेव वरे भोगे भुंजित्तु णमीराया भोत्तूण वा, केइ पठंति-बुद्धवान् बुद्धः, बुद्धा तु भोगे परिच्चयंति, 'महिलं सपुरजणवयं' || २३१-३०७ || सिलोगो, मिथिलं णगरं च अन्नेसिं च

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९|| दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ९ नम्यध्यय. ||१८१||

पुरवरेहिं सजणवएण, बलं चतुरंगिणीसेना, उरोधो अंतेउरं, परियणं सयणादि, 'सव्वं' ति अपरिसेसं 'चिच्चा' त्यक्त्वा अभिमुखं-निष्क्रान्तः 'एगंतमहिट्ठिओ भयवं' एगंतं नाम उज्जाणं, विजणमित्यर्थः, एगंतमहिट्ठितं जेण सो एगंतमहट्ठितो, अथवा एगंत-महिट्ठितो भगवं, एगंतं नाम-एकोऽहं, न च मे कश्चित्, नाहमन्यस्य कस्यचित् । न तं पश्यामि यस्याहं, (नासौ यो) मम दृश्यते ॥ १ ॥ एतं एगत्तमहिट्ठितं जेणाऽसौ एगंतमधिट्ठितो, एगंतेण वा अधिट्ठितो जो सो एगंतमहिट्ठितो, वैराग्येनेत्यर्थः 'भग' इत्याख्या, सा जस्स इति सो भगवं, 'कोलाहलग(प)ब्भूतं' ॥२३२-३०८॥ सिलोगो, आक्रंदितविलपितकूजिताद्याः शब्दा जनपदस्य कोलाहलभूता इति, सर्वमेव कोलाहलशब्देन आकुलीभूतमित्यर्थः, 'अब्भुट्ठियं रायरिसिं' ॥२३३॥ सिलोगो, अभि-मुखं स्थितं अब्भुट्ठितं, राजा एव ऋषिः राजर्षिः, ऋषीति धर्म्ममिति ऋषिः, प्रव्रज्या एव स्थानं प्रव्रज्यास्थानं, तदेवमुत्तमं पव्वज्जा-ठाणमुत्तमं 'सक्को माहणरूवेणं' शक्नोतीति शक्रः, से विण्णणणत्थं बंभणरूवं काऊण तस्स समीवं आगंतूण इममिति प्रत्यक्षं वचनं, अब्रवीत, उक्तवानित्यर्थः, 'किं नु भो अज्ज मिहिलाए' ॥२३४-३०८॥ सिलोगो, किमिति परिप्रश्ने, नुर्वितर्के, किंनु स्यात्?, भो इत्यामन्त्रणे, 'अज्ज मिहिलाए'त्ति अज्ज अहनि, मिथिलाए नयरीए कोलाहलयं नामाक्रंदितविलपितकूजितैः सम्यग् आकुला संकुला, शृण्वन्ति श्रूयंते वा सुव्वंति, दारयति दीर्यते वाऽनेनेति दारुणः, प्रसीदन्ति अस्मिन् जणस्य नयनमनांसि इति प्रासादः, गृह्णातीति गृहं, अतो ते हि 'सुव्वंति दारुणा सद्दा' पासादेसु गिहेसु या 'एतमट्ठं०' ॥२३५-३०९॥ सिलोगो, अट्ठेत्ति वा हेतुत्ति वा कारणंति वा एगट्ठं, एतं अट्ठं एयमट्ठं, निसामेत्ता श्रुत्वा, हिनोति हीयते वा हेतुः, करोति कारणं, चोदितं-पुच्छितं, ततो णमी रायरिसी देविंदं इणमब्बवी । 'मिहिलाए०' ॥२३६-३०९॥ सिलोगो, चीयत इति चेइयं, चित्तंति वा, ततः चेतनाभावो वा

दारुणाः शब्दाः

||१८१||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९|| दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

जायते चेतियं, अतो तंमि चेइए, 'वच्छे'त्ति रुक्खस्साभिधाणं, सुतं प्रियवायरणं वच्छा, पुत्ता इव रक्खिज्जंति वच्छा, अतो तेहिं वच्छेहिं, सीयला छाया कता जस्स स भवति सीतलच्छायो,एत्थ सिलोगभंगभया हिकारस्स लोवो कओ, मनांसि रमते मनोरमं, अतो तंमि मनोरमे उज्जाणे, पत्तेहिं पुप्फेहिं फलेहिं च उवेते पत्तपुप्फफलोवेतो बहूणं दुप्पयचउप्पयपक्खीणं च बहुगुणेति, वाइयोवेए पत्तोवेए पुप्फोवेए फलोवेए 'सदा' इति सव्वकालोवभुज्जति 'वाएण हीरमाणंमि' ||२३७-३०२|| सिलोगो, सो वातो सक्केण वेउव्वितो, 'हीरमाणे'त्ति तेण वातेण रुक्खेसु भज्जमाणेसु जे तत्थ उज्जाणे रुक्खेसु खगा ते दुहिता असरणा, अत्राणा इत्यर्थः, कंदंति–विलपंति, अस्माकं वृक्षप्रयोजनमिति, 'एतमट्ठं०' ततो णमिं सक्को भणति-स एव अग्गिणा णगरिं डज्झमाणं विउव्विऊण आह–'एस अग्गी अ वाओ अ' ||२३९-३१०|| सिलोगो, अगतीत्यग्निः, वातीति वातः, मंदिरं णाम णगरं, भगवं अंतेपुरं तेण 'कीस णं नावपिक्खह' कीस नावपेक्खसि–नावलोकयसित्ति । ततो णमी आह–'सुहं वसामो जीवामो' * २४१-३११|| सिलोगो, किंचणं दुविहं-दव्वे भावे य, सेसं कण्ठ्यं,'चत्तपुत्तकलत्तस्स'||२४२-३११||सिलोगो, कण्ठ्यः,'बहुं खु मुणिणो भद्दं' ||२४३-३११|| सिलोगो, भातीति भद्रं, मनुते मन्यते वा जगति त्रिकालावस्थाभावानिति मुनिः,द्रव्यादिमुनिप्रतिषेधार्थं अणगारस्स भिक्खुणो, अथवा स मुनिः योऽनगारः यो भिक्षुः, सव्वतो विप्पमुक्कस्स, कथं ?, 'एगंतमणुपस्सओ' एकत्वं नाहं कस्यचित्, अथवा एकान्तं निर्वाणं असंसारावासमित्यर्थः, शक्र उवाच-'पागारं०' ||२४६ ३१२|| सिलोगो, प्रकुर्वन्तीति प्राकाराः, गोभिः पूर्यत इति गोपुरं, 'उस्सूलए सयग्घीओ' उस्सूलगा णाम खातिआ उवाया जत्थ परबलाणि पडंति, शतं घ्नन्तीति शतघ्न्यः, सेसं कण्ठयं । नमिरुवाच-'सद्धं णगरिं किच्चा०' ||२४७-३१२|| सिलोगो, श्रद्धाऽस्यास्तीति श्रद्धी, नातिकरो विद्यत

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९|| दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

इति नकरं, अतस्तं 'सद्धं णगरं किच्चे'ति 'तवसंवरमग्गलं'ति तवो बारसविहो. संवरो दुविहो-इंदियसंवरो णोइंदियसंवरो य, 'खंतिं णिउणपागारं' खंती- खमा 'तिगुत्तं' मणोवायाकाएहिं 'दुप्पधंसयं'ति दुक्खं परीसहबलेणं विद्धंसिज्जति । 'धणुं परक्कमं किच्चा' ||२४८-३१२|| सिलोगो, घ्नन्ति तेन धारयंति वा धनुः, जीवा सेरियासमिती, धिर्ति च केयणं किच्चा, सिंगधणुअस्स मज्झे कट्ठसइओ मुट्ठीओ गृह्यंते येन तं पलिबंधणं कीरति तं केयणं वुच्चति, 'सच्चेण पलिकंथए' पलिकंथ्यते येन तं पलिकंथनं भवति, स च ण्हारुक्खा--'तवणाराय' ||२४९-३१२|| सिलोगो, नरं मुंचतीति नाराचः, तपोनाराचयुक्तः,भेत्तूणं कम्ममेव कंचुओ, तं च अट्ठपगारं कम्मं, 'मुणी विगयसंगामो' संग्रामत इति संग्रामः, भवनं स्थितिविभवः तस्मात् भवात् समन्तात् मुच्यते परिमुच्यते ॥ शक्र उवाच-'पासाद०' ||२५१-३१३|| सिलोगो, प्रासाद उक्तः 'वद्धमाणगिहाणि' णाम भवणप्पगारा अणेगविधा, वालग्गपोतिया णाम मूतियाओ, केचिदाहुः- जो आगासतलगस्स मज्झे खुड्डलओ पासादो कज्जति । 'संसयं खलु०' ||२५३-३१३|| सिलोगो, संशयनं संशयः, संशय्यते च अर्थद्वयमाश्रित्य बुद्धिरिति संशयः, कथं संशयो भवति ?, अनिर्द्धारणार्थः संशयः, न तेनावधारितं यथा मया इत्थं णमेतावतं कालं वसितव्वं, यदा सार्थं लप्स्यामस्तदा गमिष्याम इत्यतः संशयनं मनसि कृत्वा गृहमसावध्वाने करोति, अत्ति प्राणानित्यध्वा तं, एवं नित्याध्वाने--नित्यप्रस्थाने जीवलोके न गृह्णासि नित्यस्वर्गकर्त्तव्यानि 'जत्थेव गंतुमिच्छेज्ज' मोक्षगृहारम्भस्तु ज्ञानादिभिस्तस्य कार्यं इति । शक्र उवाच-'आमो (सेहिं) से०'||२५५ ३१३||सिलोगो, आमोक्खंतीत्यामोक्खा पंथमोषका इत्यर्थः, लोमाहारा णाम पेल्लणमोसगा, ग्रन्थिं भिंदंति ग्रन्थिभेदका, जुत्तिसुवण्णगादीहिं लोगं मुसन्तीत्यर्थः, तस्करो नाम चौरः, तदेवमेकं स्वयं करोति, एते (हिंतो) नगरस्य क्षेमं काऊण, नमिरुवाच-'असइं तु मणु-

प्रासादादिना नगर रक्षादिना च

||१८३||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९||

दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ९ नम्यध्यय. ||१८४||

सम्यक्त्व परीक्षा

स्सेहिं' ॥२५७ ३१४॥ सिलोगो, असकृद्-अनेकशः,मिच्छादण्डो नाम अनपराध इत्यर्थः, कोऽभिप्रायः?, लंचापाशैः(पक्षैः) कारकमपि मुंचति, सेसं कण्ठ्यं । शक्र उवाच--'जे केइ पत्थिवा०' ॥२५९-३१४॥ सिलोगो, पृथिवी अस्यास्तीति पार्थिवः, राजेत्यर्थः, जे वा पार्थिवा नानमंति, न वसे ते वर्तन्ते इत्यर्थः, सेसं कण्ठ्यं । नमिरुवाच-'जो सहस्सं०'॥२६१-३१४॥ सिलोगो, 'जे' त्ति अनिर्दिष्टस्य निर्देशः, सहस्सं सहस्सेण गुणितं, नमन्तं ग्रसतीति संग्रामः, दुक्खं जिणिज्जंतीति दुज्जयाः, अतस्ते दुज्जए जिणे, ण तेण किंचि जितमेवं जिणे, किंतु 'एगं जिणेज्ज अप्पाणं' कण्ठ्यः, परमः प्रधान इत्यर्थः, अथवा 'अप्पाणमेव०' ॥२६२-३१४॥ सिलोगो, कहं पुण अप्पा जितो भवति?, 'पंचेंदियाणि०' ॥२६३-३१४॥ सिलोगो, एते हि आत्मानुगता एव शत्रवः, एतान् जित्वा, पच्छद्धं कण्ठ्यं। शक्र उवाच-'जइत्ता विउले जन्ने०'॥२६५-३१५॥ सिलोगो, यजति तं यज्जा, तान् यज्ञान् अश्वमेधवाजपेयपोंडरीकादयः, तां यजित्वा विपुलानां कामभोगानां प्रक्रामशो दानं बहुसुवर्णकादयः 'भोएत्ता' भोजयित्वा समणा अदुव माहणा- धीयारा, दव्वं देज्जा, भोच्चा-भोक्त्वा स्वयं जट्ठा य यष्ट्वेत्यर्थः, यज्ञमिति वाक्यशेषः। नमिरुवाच-'**जो सहस्सं सहस्साणं मासे मासे०**' ॥२६७-३१५॥ सिलोगो, मीयते तमिति मासः, गच्छतीति गौः,'**तस्सावि संजमो सेओ**' जो सो मासे २ गवां शतसहस्सं ददाति तस्यापि संयम एव श्रेयः । किं घनं धनं प्रयच्छमानस्यापि?, तत आकिंचन्याश्रयवानथ संयमः ॥ शक्र उवाच- '**घोरासमं चइत्ताणं०**'॥२६९-३१६॥ सिलोगो, 'घुर सीमार्थशब्दयोः' घूर्णते अस्य भयं घोराः, दुक्खं हि यथावदनुपाल्यते, उक्तं हि -'या गतिः क्लेशदग्धानां, गृहेषु गृहमेधिनाम्। पुत्रदारं भरंतानां, तां गतिं व्रज पुत्रक ! ॥ १ ॥' आश्रयन्ति तमित्याश्रयाः, का भावना?, सुखं हि प्रव्रज्या क्रियते, दुःखं गृहाश्रम इति, तं हि सर्वाश्रमास्तर्कयन्तीत्यतः घोरः, सेसं कण्ठ्यं ॥ नमी उवाच- '**मासे मासे**'

||१८४||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९||

दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

सिलोगो, मीयतेऽनेनेति मासः, शेषं कण्ठ्यं, नवरं कामभोग इत्यभिधीयते, षोडशीमपि कलां नार्घन्ति । शक्र उवाच-'हिरण्णं सुवण्णं०' ।।२७३-३१७।। सिलोगो, हिरण्यं-रजतं शोभनवर्णं सुवर्णं, मन्यत इति मणिः-वेरुलियादि, मोत्तियं जलयं वेलयं च, कंसं कंसपत्रादि, दूसं वत्थपगारा, एताणि, सह वाहणेण सवाहणं, अस्सहत्थिमादि, सेसं कण्ठ्यं । नमिरुवाच-'सुवन्नरूप्पस्स' ।।२७५-३१७।। वृत्तं, सोहणं वर्णं सुवर्णं, रोचते तदिति रूपं, पर्वतीति पर्वतः, सियाऽणवधारणा, केलासो नाम मन्दरो, तत्समाः तत्तुल्याः, नास्य संख्या शक्यते तुलापरिमाणेन कर्तुं इत्यतः असंखता, सेसं कण्ठ्यं । 'पुढवी साली जवा चेव०'।।२७६-३१७।। सिलोगो, प्रथते पृथति वा तस्यां पृथिवी, सालियवा प्रसिद्धा, हिरण्यं रूप्यं, पश्यतीति पशुः– गोमहिष्यादि, पशुभिः सह, पडिपुन्नं नालमेगस्स, उत्तमसंपदुपेतान्यपि एतानि यद्येकस्य भवन्ति 'अलं पर्याप्तिवारणभूषणेषु' न अलं नालं पर्याप्तिक्षमानि स्युः, इत्युपदर्शनार्थे, इति ज्ञात्वा तवं चरे, चरेत्यनुमतार्थे।।शक्र उवाच-'अच्छेरगमब्भुदए०'।।२७८-३१८।। सिलोगो,अतीव भवत्यद्भुतं प्रतिभाति यस्तान् भवान् विद्यमानान् कामान् हित्वा असंते भोगे इच्छासि, संकप्पेण विह(न्न)सि, असत्संकल्पः तेण असत्संकल्पेन विहन्यसि, नेमिरुवाच-नाहं कामान् कामयामि, कस्माद् ?, उच्यते-'सल्लं कामा०' ।।२८०-३१८।। सिलोगो, शलति शूलयति वा शल्यं, जहा सल्लं देहलग्गं अणुद्धरिज्जंति दुक्खावेति, तुल्या कामा, वेवेष्टि विष्णाति वा विषं, जहा हलाहलं विसं मारणंतियं, एवंविधाः कामाः, आसी दाढा, दाढासु जस्स विसं स आसीविसो भण्णति, सो य सप्पो, आसीविसेण उवमा जेसिं कामाणं ते आसीविसोवमा कामा, सेसं कण्ठ्यं । 'अहे वयइ कोहेण०' ।।२८१-३१८।। सिलोगो, सक्को तं पव्वयंतं बहूहिं उवाएहिं विण्णासेउं खोभेउं असत्तो-'अवउ [इ] ज्झिऊण' ।।२८२-३१९।। सिलोगो, वग्गूणाम सोभणं, अहवा वाग्भिरेव वग्गू ।

||१८५||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२२८-२८९||

दीप अनुक्रम [२२९-२९०]

'अह ते णिज्जितो कोहो०' ||२८३-३१९|| सिलोगो, कण्ठयो, नवरं निरिक्कं नाम या पृष्ठी, पृष्ठतः कृत्वेत्यर्थः, 'अहो ते अज्जवं साहु०'||२८४ ३१९||सिलोगो,सेसं कण्ठयं|'इ [अ] हंऽसि उत्तमो०'||२८५-३२०|| सिलोगो,इहंऽसि उत्तमो राया,पुव्वा-परभवंमि, कहं ?, उत्तमं ठाणं, लोगुत्तमा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तस्य फलं परिनिर्वाणं अतो लोगुत्तमुत्तमं ठाणं सिद्धिं गच्छसि 'णिरओ' निष्कर्म्मा इत्यर्थः, 'एवं अभित्थुणंतो०' ||२८६-३२०|| सिलोगो, कण्ठ्यः,'नमी नमेइ अप्पाणं' सिलोओ, कण्ठ्यः 'एवं करेंति संपन्ना (संबुद्धा)०' ||२८९-३२०|| सिलोगो, एवंशब्दः प्रकारवचने, एवं करेंति एतेण प्रकारेण, पण्णा बुद्धिः सह पण्णाए संपन्नो, पंडिता विदुसा, पवियक्खणा प्राज्ञः, सपण्णा पंडिता पवियक्खणा, सुल्ल(पुण्ण)ति वेहेण उच्यते,सपण्णा इति कर्म-ण्यता दर्शिता, पण्डिता इति सा बुद्धिः परिकर्म्मिता जेसिं, पवियक्खणा वायाएवि परिग्रहणसमत्था, विणियट्टंति भोगेहिं, विसेसेणं निवर्त्तन्ति विणियट्टंति, भोगेहिं, जहा से णमी रायरिसी, येन प्रकारेण यथा, आसण्णं तमुदाहरणं तेण पत्थुतो णमी रायरिसी इति बेमि ॥ नयाः पूर्ववत् ॥ णमिपव्वज्जा णवममज्झयणं समत्तम् ९ ॥

अलोभ उक्तः, स तु अनित्यतां भावयता अलोभः करणीयः, तत्राध्ययनं दुमपत्तयंति, तस्स चत्तारि अणुयोगद्दाराणि, तत्थ णामनिप्फन्ने दुमपत्तयन्ति, दुमे पत्तं च दुपदं णाम, तत्थ दुमो चउव्विधो, 'णामंठवणा'गाथा (णिक्खेवो उ दुमंमी) ||२८०-३२१|| णामंठवणाओ गयाओ, दव्वदुमो दुविहो-(जाणग० ||२८१-३२१||) जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्तो तिविधो-एगभवियादि, भावदुमो 'दुमयाउनामगोयं०'||२८२-३२१|| गाथा कण्ठया, एतस्स पुण अज्झयणस्स उपोद्घातो जहा णिज्जुत्ति-गाहाहिं रायगिहपिट्ठचंपि सालमहासालाण णिक्खमणं तेसिं णाणुप्पत्ती भगवतो गोतमस्स अट्ठापदगमणं तावसपव्वज्जा पारणगं ||१८६||

अध्ययनं -९- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१०- “द्रुमपत्रक” आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२९०-३२६||

दीप अनुक्रम [२९१-३२७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १० द्रुमपत्रके ||१८७||

परमण्णेणं पच्चागतं भगवं अणुभासति, गोतमा!, चत्तारि कडा पण्णत्ता, तंजहा--सुंबकडे विदलकडे चम्मकडे कंबलकडे, अन्नत्तो णवविसं खाइज्जति(?),चम्मकडेसु महताविं जत्तेण सक्केति मोएउं, एवामेव गोतमा! चत्तारि सीसा पण्णत्ता, सुंबकडसमाणे४, तुमं च णं गोयमा! मम कंबलकडसमाणे, किंच- चिरसंसट्ठे सि गोतमा! चिरपरिचिते सि गोयमा! पन्नत्तीआलावगो जाव आविसेसमणाणत्ताए णं भविस्सामो, किंच-गोयमा! देवाण वयणं गेज्झं? आयो जिणाणं?, गोयमो भणति-जिणाणं, तो किं अधितिं करेसि?, तं सोऊण मिच्छामिदुक्कडं करेति, ताहे सामी गोयमनिस्साए दुमपत्तयं भणति ॥ णामणिप्फण्णो गतो, सुत्ताणुगमे सुत्तं उच्चारेयव्वं जहा-'दुमपत्तए पंडुयए०' ॥२९०-३३४॥ वृत्तं, दोसु मातो दुमो, दुमस्स पत्तं दुमपत्तं, पंडूणाम कालपरिणामेण आपंडुरीभूतं 'जहा' इति येन प्रकारेण 'पडति'त्ति, किं विलग्गं अच्छति?,'राती'ति राती, गणो नाम बाहोलं, अच्चए णाम ख(पू)या, एत्थ णिज्जुत्तिगतमुदाहरणं कप्पितं भण्णाति, किसलयपत्तेहिं सुकुमारताए सुवण्णयाए य हसातित्ति धासो, सासयमुदाएण,'पंडुपत्ताणि'त्ति ततो पंडुप्पत्तं'परियट्टियलावण्णं०'॥३०७ ३३५॥ गाथा, जो पण्णे सुकुमारतासुवण्णलावण्णविसेसो आसि ते(तं)परावत्तितं विगतलावण्णं चलमाणसव्वसंधिं वेंढं बंधणाओ टलंतं एवं पत्तं वसणपत्तं कालप्रासं भणति-'जह तुब्भे०'॥३०८-३३५॥ गाहा, जह तुब्भे संपत्तं किसलयभावे वट्टमाणाणि अम्हे हसह एवं अम्हे य किसलयभावो आसि, जहा य अम्हे संपयं कालपरिणामेणं विवन्नच्छवियाणि एवं तुब्भेवि अचिरकाला भविस्सह, मा तुज्झे ताव गव्वह, धुवा एसा खलु अणिचता, अणवत्थिताणि जोव्वणाणित्ति, अप्पाहणिया णाम उवेदसो, पुत्तस्सेव पितामातरं तो उवदिसति, एवं पंडुरपत्तं किसलयाण उवदेसं देति, 'णवि अत्थि०' ॥३०९-३३५॥ गाहा कण्ठ्या,'एवं मणुयाण जीवियं'ति एवमवधारणे,जहा पडुच्च चलाउं, एवं मणुयाउयंपि,मनोरप-

किसलयपत्रोदन्तः ||१८७||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२९०-३२६||

दीप अनुक्रम [२९१-३२७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १० द्रुमपत्रके ||१८८||

आयुषश्च- लत्वं

त्यानि मनुजा, जीव्यते येन तज्जीवितं, अनित्यं अध्रुवं चलमित्यर्थः, समं सम्यक्, अयं अस्मदीये समये, गोतम इति- गोत्रान्ते-नैवासौ, भगवानामंत्रणे, 'अमानोनाः प्रतिषेधे', प्रमादय, अथवा समयमात्रमपि मा प्रमादय, नित्यमेव मा प्रमादवान् भव, एवं सेत्स्यति आचिरात्, स्यात् किमर्थं अप्रमादः क्रियते ?, उच्यते, जीवितस्यानित्यत्वमेव ख्यापयति, यथा अतीव च दौर्बल्यमायुषः, तद्यथा-'कुसग्गे जह ओसबिंदुए०'॥२९१-३३५॥ वृत्तं, कुसो दब्भसरिसो, कुसस्स अग्गं कुसग्गं, अतस्तस्मिन् कुशाग्रे,यथा येन प्रकारेण, ओसा सरयकाले पडति, तीसे बिंदु कुसग्गे ठितं, तत् कुशो हि तनुतरो भवति दर्भात्, तेन तदा तद्ग्रहणं, दर्भाग्रेऽपि चिरं भवति, सहि आगलितः वातवशात् द्रव्येण वा संक्षोभितः अच्चेति इत्येष दृष्टान्तः॥ 'एवं मणुयाण जीवियं' कण्ठ्यः, यद्यप्युपचयविशेषैः किंचिन्नाम निरु[लो]पक्रमं स्यात् तदपि च न दीर्घकालमित्यतोऽपदिश्यते-'इह इत्तरियंमि आउए०'॥२९२-३३६॥ वृत्तं, इति उपदर्शनार्थं, इत्तरियं अल्पकालियं वर्षशतमात्रं, एति याति वा तामित्यायुः, जीव्यतेऽनेनेति जीवितं, तस्मिन् जीवितेऽनुकम्पा, जीवित एव 'बहुपच्चवायए' एतं प्रति अपायाः, तद्यथा--अज्झवसायनिमित्ते० यावद्वर्षशतं न पूर्यते यावद्वा ते अपाया नागच्छंति ताव 'विहुणाहि रयं पुरे(रा)कडं' विविहं सोहिविसेसेण वा धुणाहि, रज इति कर्म, पुराकृतं पुरेकडं, स कथं विधूयते ?, समये अप्रमादवदित्यर्थः, समयं इदं चालंबनं कृत्वा अप्रमादः कार्यः, कथं ?, तद्वक्ष्यामः—'दुलहे खलु माणुसे भवे०' ॥२९३-३३६॥ दुःखं लभ्यत इति दुर्लभः, मनुष्याणामयं माणुस्से, भवतीति भवः, 'चिरकालेणवि' अणंतकालेण इत्यर्थः, सव्वपाणिणं सव्वसद्दो अपरिसेसवाची, प्राणा एषां सन्तीति प्राणिनः, सर्वग्रहणं नास्ति अत्यन्तमनुष्य एव कश्चन बंधस्य, एकान्ते न सुलभं मानुष्यं 'गाढा य विवाय कंमुणो' गाढं चिक्कणा दृढा इत्यर्थः, विविधैः पाको विपाको मनुष्यत्वविघातीनि

||१८८||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२९०-३२६||

दीप अनुक्रम [२९१-३२७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १० द्रुमपत्रके ||१८९||

पृथ्व्यादि काय-स्थितिः

कर्म्माणि चिक्कणानि, अत्र त एव चोलकाद्या दृष्टान्ता वक्तव्याः, अस्माच्च कारणात् सुदुर्लभं मानुष्यं यस्मादन्येषु जीवस्थानेषु चिरं जीवोऽवतिष्ठते, मनुष्यत्वे तु स्तोकं कालमित्यतो दुर्लभं, तत्र तावत् पृथिव्यां 'पुढविकायमतिगतो०' ॥२९४-३३६॥ वृत्तं, पुढवि-भूमी कायो जेसिं ते पुढविकाइया, पुढविकाय एव वा पुढविकाइया, एत्थ कायसद्दो सरीराभिधाणे, पुढविकाए वा, तत्र पुढविकाइया पुढवीति, पृथु विस्तारे विच्छिण्णा इति पुढवी, अतस्तं पुढविकायमतिगतो-अणुपविट्ठो उक्कोसं तासां सर्व-उत्कृष्टं जीवो तु संवसे ,कालं संखातीतं, संख्यामातिक्रान्तामित्यर्थः, तत्थेव मरिउं उववज्जति असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी(अवसप्पिणी)तो कालतो, एसो य कालो खेत्ततो विसेसिज्जति-असंखेज्जाणं लोगाण जावइया आगासपदेसा एवत्तियाणि पुढविक्कायमरणाणि मरिउं तत्थेव तत्थेव च उववज्जइ, ततो खेत्ततो असंखेज्जा लोगा, एवतियं कालं पुढविक्काए उक्कोसेणं अच्छति। 'आउक्कायम-तिगतो०'॥२९५-३३६॥ वृत्तं, 'अप' इति आऊ, सो कायो जेसिं ते आउकाईया, आउक्काए वा भवा आउक्काइया, 'आप्लृ व्याप्तौ' इति आपः, अतो तं आउक्कायमतिगतो, जहा पुढविक्कायं, 'तेउक्कायमतिगतो०'॥२९६-३३६॥ वृत्तं, तेजो कायो जेसिं ते तेउ-क्काइया, 'तिज निशाने' तेउ, तहेव वा गतिगन्धनयोरिति वायुः तस्यवि तहेव, वन षण संभक्ताविति 'वणस्सइ०'॥२९८-३३६॥ एतस्य अणंतकालं अणंताओ उस्सप्पिणीतो कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वतो असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, सव्वपोग्गला जावतिएण कालेण सरीरफासअशनादीहिं फासेज्जंति सो पोग्गलपरियट्टो भवति, ते असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा वणस्सइकाए अच्छति,तस्स णं असंखेज्जस्स परिमाणं आवलियाए असंखिज्जतिभागो, आवलियाए असंखिज्जइमो भागो जावतिया समया एवतिया पोग्गलपरियट्टा वणस्सतिकाये अच्छति।। 'बेइंदिय०'॥२९९-३३६॥ 'तेइंदिय०'॥३००-३३६॥ 'चउरिंदिएसु०'॥३०१-३३६॥ संखे-

||१८९||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२९०-३२६||

दीप अनुक्रम [२९१-३२७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १० द्रुमपत्रके ||१९०||

पंचेन्द्रियकाय-स्थितिः नरत्वादि दुर्लभता

ज्जकालं|| 'पंचिंदिय०'||३०२-३३६|| तिरिक्खजोणिएसु सत्तट्ठ भवग्गहणाणि, 'देवणेरइएसु०'||३०३-३३६|| एक्केक्कं भवग्गहणं, एवं (भव) संसारे०||३०४-३३८|| वृत्तं, एवमनेन प्रकारेण, भवनं भूतिर्वा भवः, संसरणं संसृतिर्वा संसारः, भव एव संसारः भवसंसारः-नरकादिः, अन्ते भवसंसारे संसरति परीति गच्छतीत्यर्थः, सुभासुभाणि सातअसातादीणि, क्रियते इति कर्म्म, जीवत इति जीवः, पमादो मज्जपमादादि पंचविधो, बहुशः बहुलो, अतः समयमात्रमपि प्रमादं मा कुरु, यद्यपि कदाचित् तन्मानुष्यं लभति तदापि 'लद्धूणऽवि माणु (सत्तणं) सं' ||३०५-३३८|| वृत्तं, तत्रापि आर्यत्वं दुर्लभं, क्षेत्रार्यत्वं रायगिहमगहचंपादि, जतो बहवे दस्सुअमिलिक्खुया, दस्यति दस्सइति वा दस्युः-चोरा, ते हि प्रत्यन्तवासिनो धर्म्माधर्म्मबहिष्कृता, 'मिलेक्खुया' म्लेच्छा अनिस्पष्टभाषिणः अनार्यभाषाः, गम्यागम्यअपरिहारिणः शकयवनादयः, निःसंज्ञाः, तद्विधेन किं मनुष्यत्वेन? 'लद्धूणऽवि आरियत्तणं०' ||३०६-३३८|| पुव्वद्धं कण्ठ्यं, विकलानि इन्द्रियाणि यस्य स भवति विकलेन्द्रियः 'दीसंति'त्ति प्रत्यक्षमेव दसिंति, अपूर्णेन्द्रिया एव जायमानाः, जाता अपि च व्याध्यपराध्यादिभिरुपक्रमविशेषैर्विनाशमिन्द्रियानि प्राप्नुवन्ति इत्यतः 'विगलिंदियता हु दिस्सइ' अतो धम्मस्स अजोगा, तं जाव अविकलेंदियणीरोगो ताव समयं गोयमा 'अहीणपंचिंदियत्तंपि से लभे० ||३०७-३३०|| वृत्तं, यद्यपि अहीनेन्द्रियत्वं लभ्यते, तथापि 'उत्तमधम्मसुती हु दुल्लभा' उत्तमा-अनन्यतुल्या सर्वज्ञोक्ता धर्म्मस्य श्रुतिः, श्रवणं श्रुतिः, 'कुतित्थिणिसेवते जणे' तीर्यते तार्यते वा तीर्थं, कुत्स्यानि तीर्थानि शाक्यादीनां, तान्येव तु निषेवते भूयिष्ठो जनो इत्यतः 'कुतित्थिणिसेवए जणे', अत इदमस्मदीयं तीर्थं संसारार्णवतारणार्थमेव, गाहा, समयं गोयम मा प्रमादये 'लद्धूणवि उत्तमं सुइं सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा। मिच्छत्तणिसेवए जणे०||३०८-३३६|| मिच्छत्तं विवरीतग्गहो जहा अधम्मे धम्म-

||१९०||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२९०-३२६||

दीप अनुक्रम [२९१-३२७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १० द्रुमपत्रके ||१९१||

बलहानि:

सद्धा धम्मे अहम्मसद्धा एवमादि, अथवा जं अपत्थं इह च परत्र च तत्थेव चिन्तणीयमिति, उक्तं च–"प्रायेण हि यदपथ्यं तदेव चातुरजनाप्रियं भवति। विषयातुरस्य जगतस्तथाऽनुकूलाः प्रिया विषयाः॥१॥" अथवा इमं सुतिं कहेज्जमाणंपि स्वदोषोपहतत्वात् मिथ्यादर्शनभावितत्वाच्च न गृह्णन्ति, उक्तञ्च-जह घ(च)म्मकारसुणिया छेदप्पा(चम्मापिया)छेदगाण बहुयाणं। धाता मधुव्वत- जुतं परमण्णं णेच्छते मोत्तुं ॥ १ ॥ अहवा-जह पित्तवाहिगहितो तस्सुवसमणत्थमाणियं मधुरं। कडुगमिति मण्णमाणो ससक्करं निच्छए खीरं ॥ १ ॥ तदेवं तावत् श्रुतिमुत्तीर्य समतं गो०। 'धम्मंपि हु सद्दहंतया०'॥३०९-३३८॥ वृत्तं, तं पुण किं कारणं ण फासति ?, उच्यते–'इह कामगुणेहिं मुच्छिता' 'इहे' ति इह मनुष्यलोके कामगुणाः- शब्दादयः, मूर्च्छित इव मूर्च्छितः, जह पित्तमुच्छादिमुच्छितो इह लौकिके अपाये ण चिंतेति तथा श्रावकौघात्(घः), यावत् श्रद्धाऽस्ति ते धर्म्मे ताव कामेष्वनावृत्तो भूत्वा समर्थं, इतश्च अप्रमादः करणीयः, कुतः ?, शरीरदौर्बल्यात्, इदं हि–'परिजूरति ते सरीरयं०'॥३१७-३३९॥ वृत्तं, परि सर्वतो भावे, समन्ताज्जीर्यते परिजूरति, व्याधिज्वरादिभिरुपक्रमविशेषैः, शीर्यते शरीरं, क्लिश्यन्त्येभिश्च क्लिष्टाः, क्लेशयन्ति वा कामिनः क्लेशाः, ते तु पण्डुरा भवन्ति, तृतीयवर्णान्तरसंक्रान्ता इत्यर्थः, से सोयबले हायति, मंद मन्दं शृणोतीत्यर्थः, समयं गोयमा!, एवं चक्खुघाणजिब्भाफासा. से सव्वबले ते, सव्वबलं नाम एतेसिं चेव पंचण्हं इंदियाणं परिहाणीए सव्वबल- परिहाणी भवति, अथवा बलं तिविहं--सारीरं वाइयं माणसियं, सारीरं प्राणबलं स्थानचंक्रमणादि च, वाचिकं बलं स्निग्धनीहा- रिसुस्वरता, सा हीरमाना रुक्षा मंदा अल्पा बहुमायासा च भवति, माणसियमपि ग्रहणधारणाऽसामर्थ्यं भवति 'अरई गंडं विसूइया०' ॥ ३१६ ॥ वृत्तं, गच्छतीति गण्डं, सूचिरिव विदधतीति विसूचिका, विविधैर्दुक्खविशेषैरात्मानमङ्कयतीति आत- ||१९१||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२९०-३२६|| दीप अनुक्रम [२९१-३२७]

ङ्कः, तैश्चोदीर्णैः विहडति-विद्धंसति ते सरीरगं, समयं गोयमा ! । यतश्चैवं व्याध्यादीनामातंकानां सामान्यमथु(थि)रं च शरीरं तस्मात्-'वुच्छिद सिणेहमप्पणो०' ॥ ३१७ ॥ वृत्तं, विविधं छिंद वोच्छिद, स्निह्यत इति स्नेहः, 'अप्पणो'त्ति आत्मीये शरीरे, कमनीयं कुमुदं, शरदि जातं शारदिकं, पातव्यं पानीयं, 'ते सव्वसिणेहवज्जिए' सर्वस्नेहा नाम आत्मनि च बाह्येषु च वसु(स्तु)षु, सर्वे एव वर्जयित्वा समयं गोयमा।। 'जि(चि)च्चाण(य)धणं च भारियं०'॥३१८-३४०॥वृत्तं,'चिच्चा'त्यक्त्वा धणं-हिरण्णसुवण्णचतुप्पदादि, दधाति धीयते वा धनं, ध(भ)रयणीयासौ भार्या, 'पव्वइओ हु (हि) सि' प्रगतो गृहात् संसारातो वा पव्वइओ, अणगारियं नास्यागारं विद्यत इत्यनगारः अतः प्रव्राजितत्वं अणगारियं, मा वंतं पुणोवि आविए अमानोनाः प्रतिषेधे, वंतं मुत्तपडिग्गलितं मा तं पुणोऽवि आदिए-आपिब, पुलाग(गुणगे)ज्झसमाकुलमणस्स मन्नंत भुजगमण्णा वा। रोसवसविप्पमुक्कं ण पिबंति विसं (अगंधणया) ॥ १ ॥ विसाविवज्जियसीला । 'अवउज्झिय मित्तबंधवं०' ॥३१९-३४०॥ वृत्तं, 'अवउज्झिय'त्ति छड्डेउं, मेज्जति मज्जंति वा मित्रं, सहजाता भाया मित्ता, बांधवे हि अहिता निवर्त्तयंति, ते च पुव्वपच्छा संथुता, विपुलं विच्छिण्णं सुमहारासि संचयो हिरण्णस्स सुवण्णस्स चतुष्पदादेः कुवियस्य य मा तं बितियं गवेसए, समतं गोतमा ! ॥ इदं अनागतोभासितं सुत्तं-'ण हु जिणे अज्ज दीसइ०॥३२०-३४०॥' वृत्तं, यद्यप्येष्यत्काले आसन्ने न द्रक्ष्यन्ति तथापि तैरिदमालंबणं कर्त्तव्यं 'बहुमए दीसइ मग्गदेसिए' बहुमतो णाम पंथो, जहा णगरं अपेच्छमाणोवि पंथं पेच्छंतो जाणइ-इमेण पंथेण णगरं गंमति, एवं 'संपइ नेआउए पहे' 'संपति'त्ति साम्प्रतकाले, नयनशीलो नैयायिकः, पथ्यत इति पन्थाः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयः ते एवं भगवं असंदिग्धपन्था व्यवस्थितः सन् समयं गोयमा ! 'अवसोहिय०' ॥३२१-३४१॥ वृत्तं, दव्वकण्टकाः ||१९२||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२९०-३२६||

दीप अनुक्रम [२९१-३२७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १० द्रुमपत्रके ||१९३||

संयमशुद्धि प्रभृति

बब्बूलकण्टकादि अवसोधेउ जहा गम्मति, एवं भावकण्टका हि तावसचरकपरिव्राजकादि कुश्रुतिस्कन्धक, यथा तान् कुश्रुतिकण्टकान् अवसोहिय उत्तिन्नोसि एवं महालयं अवतीर्णस्त्वं, पथं सम्यग्दर्शनचारित्रमयं 'महालयं'ति आलीयन्ते तस्मिन्नित्यालयः, महामार्ग इत्यर्थः, 'गच्छसि मग्गं विसोहिया' यास्यसि मार्गं--सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयं विशोधयितुं, अतिचारविरहितं कृत्वेत्यर्थः, समयं गोयमा !॥ 'अबले जह भारवाहए०'॥३२२-३४१॥ वृत्तं, यथा अबलो भारवाहकः पर्वतं दुर्गं पन्थानमवगाह्य अबलत्वात्तं सुवर्णभारं भाण्डभारं वा प्रोज्झ्य स्वगृहं प्राप्तः, तैर्निर्धनत्वाद्विभवहीनः पश्चादनुतप्यते, तद्वदेव भवानपि संयमभारं मुक्त्वा स पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोतमा !॥ 'तिण्णो हु सि अण्णवं महं०'॥३२३-३४१॥ वृत्तं, तीर्णवान् तीर्णः तीर्यत इति वा, अतरणशीलो वा अण्णवो, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ?, द्रव्यार्णवः समुद्रः, भावार्णवस्तु संसार एव, उक्कोसट्ठितियाणि वा कम्माणि, तस्य भवार्णवस्य तीरं प्राप्तः, किमुक्तं भवति ?- उक्कोसट्ठितीयाणि सव्वाणि खवइत्ता थोवकम्मावसेस इत्यर्थः, अवसेसाणं अभितुर पारं गमेत्तए, समयं गोतमा !॥ 'अकलेवरसेणिमूसिया०'॥३२४-३४२॥ वृत्तं, कलेवरं नाम सरीरं, न कडेवरं २, श्रयंति तामिति श्रेणि, अशरीरश्रेणिरित्यर्थः, सा त संजमट्ठाणाणि सेणी, तं संजमट्ठाणसेणिं उस्सविय उवरिमाइं २ संजमट्ठाणाणि उवसरंतो सिद्धिं गोतम ! लोगं गच्छति, खेमं शिवं अणुत्तरं, णत्थि ततो अनुत्तरंति समयं गोतमा ! ॥ 'बुद्धे परिणिव्वुए चरे०'॥३२५-३४२॥ वृत्तं, धम्मे बुद्धो, परिणिव्वुतो णाम रागदोसविमुक्के, चरेदिति अनुमतार्थे, कुत्र चरे?, गामे णगरे तु, तत्र जो ता ग्रसति बुद्ध्यादीन् गुणानीति ग्रामः, नात्र करो विद्यत इति नकरं, सम्यग् यते, 'संतिमग्गं च वूहए' शमनं शान्तिः, शान्तेः मार्गः २, अथवा शान्तिरेव मार्गः शान्तिमार्गः, बृंहयेत बूहये, बुद्धः परानपि बोधयेदित्यर्थः, समयं गोतमा !॥ ततः स भगवान्

||१९३||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||२९०-३२६|| दीप अनुक्रम [२९१-३२७]

गौतम एतत् 'बुद्धस्स णिसम्म भासियं०'॥३२६-३४२॥वृत्तं, 'बुद्धस्स'त्ति भगवतो तीर्थकरस्य, निशम्येति श्रुत्वेत्यर्थः, भासितं शोभनं कथितं सुकथितं, अर्थपदैरुपशोभितं, अस्य फलं-रागं दोसं च छिंदिय, माया लोभो य रागो, क्रोध माणो य दोसो, 'सिद्धिं गतिं गतो'सिद्धानां गतिः सिद्धगतिः,सिद्धानां गतिं गतो गौतम इति बेमि। नयाः पूर्ववत्॥दुमपत्तयं सम्मत्तं दसमज्झयणं१०॥

को अणुसासेति ?, बहुस्सुतो, ततो तेणं अणुसासितेण बहुस्सुयस्स पूया कायव्वा, अहवा अप्पमादट्ठितेण बहुस्सुतस्स पूया कायव्वा, एतेण अभिसंबंधेण बहुस्सुतपुज्जं अज्झयणमागतं, तस्स चत्तारि अणुयोगद्दारा उवक्कमादी, नामनिप्फण्णे निक्खेवे 'बहुसूए पुज्जं०'॥३१०-३४३॥ति,तत्थ बहुं पूया य)णिक्खिवियव्वंति(दु)पदं णामं,तत्थ गाहा'बहुसुयपूया'गाहा ॥३१०॥ तत्थ बहुं चउव्विहं णामादि,दव्वबहुं जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्तं पंच अत्थिकाया, एत्थवि जीवा य पोग्गला य बहुगा चेव 'भावबहुगेण बहुगा' गाथा॥-३४३॥ताव बहुस्सुओ चोद्दसपुव्वी, अणंतगमजुत्तात्ति अणंतेहिं गमेहिं जुत्ते भावे जाणति, ज्ञेयानां भावानां पज्जवे जाणति, किहं पुव्वाणं अणंतगमा भवंति?, तत्थ णिदरिसणं मणुस्सा दव्वादि ४, दव्वातो तं चेव मणुस्सदव्वं जाणति, खेत्तओ जंमि खेत्ते, कालतो अणंतेहिं भवग्गहणेहिं जुत्तं तं मणुस्सदव्वं जाणति, भावतो कालादिपज्जाया स जाणाति, एवं सव्वं ज्ञेयं अणंतेहिं गमेहिं पज्जवेहि य संजुत्तं जाणति, गमा दव्वादि पज्जवा बालादि, भावे खओवसमिए सुतणाणं, खइयं केवलणाणं, बहुगत्ति गतं, इदाणिं सुतं-तं चउव्विहं णामादि, जाणगभवियसरीरवतिरित्तं दव्वसुतं पत्तयपोत्थयलिहितं, अथवा सुत्तं पंचविहं पण्णत्तं अंडयादि, भावसुतं दुविहं पं०,तंजहा-सम्मसुतं मिच्छसुतं च,तत्थ सम्मसुतं'भवसिद्धिया उ जीवा०'॥३१३-३४४॥गाथा, किं कारणं सम्मसुतं भणति ?, उच्यते, जम्हा कम्मस्स सोधिकरं। इदाणिं मिच्छसुतं, 'ता मिच्छदिट्ठी जीवा'॥ ३१४ ॥ गाथा,

अध्ययनं -१०- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -११- "बहुश्रुतपूजा" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३२७-३५८||

दीप अनुक्रम [३२८-३५९]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ११ बहुश्रुतपू० ||१९८||

बहुश्रुत-पूजानां निक्षेपाः

कम्हा मिच्छसुतं भण्णति ?, उच्यते--जम्हा कम्मस्स बंधणं भणियं, आदाणं नाम बंधणमित्यर्थः||सुतंत्ति गतं, इदाणिं पूया, सा चउव्विहा-नामादि, दव्वपूजा दव्वनिमित्तं दव्वभूता वा, तत्थ गाथा-'ईसर तलवर०'||३१५-३४४|| गाथा, दव्वनिमित्तं ईसरमाईणं विण्हुखंदरुद्दादीणं च, ण ते हि गुणेहिं जुत्ता तेण तेसिं दव्वपूजा,(भावपूया)अरहंतमाईणं जेण तेसिं संसाराओ उत्तारेतित्ति भावपूया,एत्थ चोद्दसपुव्विपूयाए अधिकारो,गतो नामनिप्फण्णो, सुत्ताणुगमे सुत्तं उच्चारेतव्वं, तं च सुत्तं इमं-'संजोगा विप्पमुक्कस्स०' ||*३२७--३४५||सिलोगो,पुव्वद्धं जहा विणयसुते,आयारं पाउक्करिस्सामि,(पूयत्ति वा विणओत्ति वा)आयारोत्ति वा एगट्ठं, 'जे यावि होइ निव्विज्जे०'||*३२८-३४५|| सिलोगो, य इत्यनुद्दिष्टस्य निर्देशः, नास्य विद्या निव्विज्जेऽपिशब्दात्सविद्योऽपि अविद्य एव भवति यः स्तब्धो भवति, उक्तञ्च-''ज्ञानं मदनिर्मथनं मायति यस्तेन दुश्चिकित्स्यः सः। अगदो यस्य विषायति तस्य चिकित्सा कुतोऽन्येन? ॥ १ ॥ लुब्धो आहारादिषु, तद्विपाकं न जानीते, अणिग्गहे अंकुशभूता विद्या तस्या अभावादनिग्रहः, अभिक्खणं- पुणो पुणो उल्लवतित्ति फुक्कंतेण अहिट्ठाणेण सुव्वति अम्हे पडिचोदेति, अविणीतो य भवति, केण?, जेण अबहुस्सुतो, यस्तु सविद्यो भवति सो ण थब्भति तं दोसं जाणंतो, अलुद्धो णिग्गहीतप्पा, विज्जा ठाणे उल्लवति विनीतो य भवति, बहुश्रुतत्वात्, तं च तं बहुश्रुतत्वं कथं ण लब्भाति ?, इमेहिं--'अह पंचहिं ठाणेहिं०' ||*३२९-३४५|| सिलोगो, अथेत्यानन्तर्ये, पंचेति संख्या, ठाणेहिंति प्रकारा, 'जेहिं' ति अणिद्दिट्ठाण णिद्देसो, मोक्खो, गहणसिक्खावि णत्थि, कतो आसेवणसिक्खा ?, कयरे पंचट्ठाणा ?, ||१९५||
उच्यन्ते--थंभा कोहा पमादा रोगा आलस्सा, तत्थ ते णो कोइ पाढेति, इयरो थद्धत्तेण ण वंदति, कोहा कोहणसीलो, पमादो पंचविधो, तंजहा--मज्जप० विसयप० कसायप० णिद्दाप० विगहापमादो, अत्याहारेण अपत्थाहारेण वा रोगो भवति, आलसिगो य

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३२७-३५८||

दीप अनुक्रम [३२८-३५९]

ण लब्भति । कथं लब्भति ?, तेसिं चेव त्रिवच्चासेण । अधवा इमेहिं लब्भति-'अह अट्ठहिं ठाणेहिं' ||※३३०-३४५|| सिलोगो, अथेत्यामन्त्रणे, शिक्षां शीलयतीति शिक्षाशीलो, गृह्णातीत्यर्थः, हसनशीलो हसिरो न हसिरोऽहसिरः, दंतो इंदियदमेण णोइंदियदमेण य, ण य मंमं उदाहरति आयरियाणं जेण दुम्मिज्जति, णोऽशीलो गृहस्थ इव, ण विशीलो भूतिकम्मादीहिं, ण सिया अवधूते अइलोलुए आहारविगतीहिं, अकोहणे ण रूसति, सच्चरतो ण मुसावादी, संजमरतो वा, सिक्खासीलो जस्स सिक्खयति एरिसं सीलं, अविणयस्स ठाणाइं-'अह चोद्दसहिं ठाणेहिं०'||※३३२-३४७||सिलोगो, कण्ठ्यः|'अभिक्खणं०'||※३३३-३४७|| पुणो पुणो रूसति, एवं च पकुव्वति-अच्चंतं कुव्वति, तहा मिज्जिज्जमाणो वमतित्ति जहा कोइ भायणादि रंगिउं ण याणेति, अन्नो धम्मसद्धाए अहं करेमित्ति, इयरो प्रत्युपकारभया णेच्छति, सुयं लद्धूण मज्जति अइबहुस्सुतोत्ति । 'अवि पावपरिक्खेवी०' ||※३३४-३४७|| सिलोगो, ण पावं परिक्खिवति, किंचि पडिचोदितो माइक्खवियाणि उग्गणेति, मित्ताणवि रुस्सति, सेसाणं च रुट्ठो चेव, जाव सुट्ठु पितो मित्तो तस्स परंमुहस्स अवन्नं भासति रहेत्ति, जाहे न सुप(ण)ति कोइ भणति, णाणादिसु उज्जुत्ते, सो इतरो पडिसो (यो) भवति, 'पइन्नवाई०'||※३३५-३४७||सिलोगो, अपरिक्खिउं जस्स व तस्स व कहेति, दुहणसीलो दुहिलो, महिसो वा दुहिलत्ति, थद्धे लुद्धे अनिग्गहे पुव्वभणिता, 'असंविभागी' आहारादिसु, अचियत्तोऽदरिसणो वा, अथवा तं तं भासति वद्ध(ड्ढ)ति वा जेण अचियत्तो भवति, अप्रिय इत्यर्थः, एवंगुणजातीओ अविणीओ । 'अह पन्नरसहिं ठाणेहिं०' ||※३३६-३४७|| सिलोयो, पुव्वद्धं कण्ठयं 'णीयवत्ति'त्ति' णीयावित्ती, कथं ?, उच्यते--'णीयं सेज्जं गतं(ति) ट्ठाणं, णयिं च आसणाणि य । णियं च पायं वंदेज्जा, णीयं कुज्जा य अंजलिं ॥ १ ॥' 'अचवले'त्ति चवलो चउव्विहो-गति१ट्ठाण२भासा३भावे, गतिचवलो दवदवचारी,

||१९६||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३२७-३५८|| दीप अनुक्रम [३२८-३५९]

ठाणचवलो जो चलंतो अच्छति, णिवण्णो ण अच्छाति,हत्थं वा पादं वा सीसं वा पो(लो)लिंतो अच्छाति,अथवा सव्वं अंगं चालेति, अबद्धासणो वा, भासाचवलो चउव्विहो, तंजहा–असप्पलावी असब्भप्पलावी असमिक्खपलावी अदेसकालप्पलावी, तत्थ असप्पलावी नाम जो असंतं उल्लावेति, असब्भप्पलावी जो असब्भं उल्लावेति, खरफरुसअक्कोसादि असब्भं, असमिक्खियपलावी असमिक्खिउं उल्लावेति, जं से मुहातो एति तं उल्लावेति, अदेसकालपलावी जाहे किंचि कज्जं अतीतं ताहे भणति–जति पकरेंति सुंदरं होंतं, मए पुव्वं चेव चिंतितेल्लयं, तो(भाव) चवलो, सुत्ते अत्थे य, सुत्ते उद्दिट्ठे असमत्ते चेव तंसि अन्नं गेण्हति,एवं अत्थेऽवि, 'अमाई'त्ति जो मायं न सेवति, सा य माया एरिसप्पगारा, जहा कोइ मणुन्नं भोयनं लद्धूण पंतेण छातेति 'मा मेयं दाइयं संतं दट्ठूणं सयमादिए' अकुतूहली विसएसु विज्जासु पावठाणत्ति ण वट्टतित्ति।'अप्पं च अहिक्खिवति०'॥३३७-३४७॥ सिलोगो, अल्पशब्दो हि स्तोके अभावे वा, अत्र अभावे द्रष्टव्यः, ण किंचि अधिक्खिवति, नाभिक्रमतीत्यर्थः, 'पबंधं च ण कुण(व्व)ति', अच्चंतरुट्ठो न भवति, मित्तिज्जमाणो भजति; प्रत्युपकारसमर्थः, उपकृतं वा जानीते, 'सुयं लद्धुं न मज्जति' तं दोसं जाणंतो, जो 'न च पावपरिक्खेवी०'॥३३८-३४७॥ सिलोगो,ण छिद्दाति मग्गति, णो चोइतो पमादक्खलियाइं उग्गणेति,ण य मित्तेसु कुप्पति, अण्णस्स न कुप्पति, किं पुण मित्तस्स ?, अप्पियस्साचि मित्तस्स रहे कल्लाणं भासइ सव्वस्सेव कल्लाणं भासइ, प्रियः अनुकूल इत्यर्थः, 'रहे'त्ति जइ कोइ परंमुहं किंचि भणिज्जा जहा णाणाइसु ण उज्जुत्तोत्ति तं पडिसेहेति । 'कलहडमर०' ॥३३९-३४७॥ कलह एव डमरं कलहडमरं, कलहेति वा भंडणेति वा डमरेति वा एगट्ठो, अहवा कलहो वाचिको डमरो हत्थारंभो, वज्जेति-ण करेति, बुद्धो धम्मे विणये य अभिजाणते; विणीतो कुलीणे य, ही लज्जायां, लज्जति अचोक्खमायरंतो, पडिसंलीणो

आचार्यसकासे इंदियणोइंदिएहिं, एतेहिं गुणेहिं उववेदो सुविणीतो वुच्चति--भवति, किं बहुना ?, जइ इमेहि गुणेहिं उववेतो-- 'वसे गुरुकुले निच्चं०'||३४०-३४८|| सिलोगो, आयरियसमीवे अच्छाति णिच्चं-सदाकालं, आह हि- "णाणस्स होइ भागी थिरयरगो दंसणे चरित्ते य । धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं न मुंचंति || १ ||" जइ जोगवं भवति, जोगो मणजोगादि संजमजोगो वा, उज्जोगं पठितव्वते करेइ, उवधाणवं जो जो सुयस्स जोगो तं तहेव करेति, पियं करोतीति पियंकरो, आधारउवाहिमादीहिं छन्दाणुलोमेहिं पाठविणयमादीहिं वा, 'पियंवादी' ण किंचि अपियं वदति, से सिक्खं लद्धुमरिहति, तंमि एवंगुणजातीते सीसे देति सुतं आयरिओ, सीसो पडिच्छंतो सोभति, विराजते इत्यर्थः, को दिट्ठंतो ?, उच्यते 'जह संखंमि पयं निहियं०' ||३४१-३५३|| सिलोगो, यथेत्यौपम्ये'संखंमि' संखभायणे पयं-खीरं णिसितं ठवियं न्यस्तमित्यर्थः, उभयतो दुहतो, संखो खीरं च, अहवा तओ खीरं व, खीरं संखे ण परिस्सयति ण य अंबिलं भवति, विरायति – सोभति, एवं उवसंहारे, अणुमाणे वा, बहुस्सुए सुयविसारओ जाणक इत्यर्थः, स एव भिक्खु, भायणे देंतस्स धम्मो भवति कित्ती वा, सो तहा सुत्तं अबाधितं भवति, अपत्ते देंतस्स असुतमेव भवति, अथवा इहलोगे परलोगे जसो भवति पत्तदाई(त्ति),अहवा एवंगुणजातीए भिक्खू बहुस्सुते भवति, धम्मो कित्ती जसो भवति, सुयं व से भवति, अथवा इहलोए परलोए विराजति, अथवा सीलेण य सुतेण य । भूयो बितिओ दिट्ठंतो-'जहा से कंबोयाणं०' ||३४२-३५३|| सिलोगो, जहा जेण पगारेण, सेत्ति णिद्देसो, कंबोतेसु भवा कंबोजाः, अश्वा इति वाक्यशेषः, आकीर्णे गुणेहिं सीलरूपबलादीहि य, कंथए, 'अस्सो' अस्सेत्ति अस्सेति असति य आसु पहातित्ति आसो, जवेण पवरोत्ति जवो हि सज्झो परमं विभूसणं जाती, जवोववेतोत्ति भणियं होति, जहा सो आसो जातीजवोववेतत्तणेण सेसेसु पहाणत्तं ||१९८||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३२७-३५८||

दीप अनुक्रम [३२८-३५९]

लभति, एवं बहुस्सुतोवि सीलसुततवोववेतत्ते पूजनीयो भवति। 'जहाऽऽइन्नसमारूढे०'||३४३-३५३||सिलोगो, आइण्णो भणितो, सम्यगारूढः समारूढः, सूरे दढपरक्कमो, दढपरक्कमो नाम आसणे दढो प(वव)हारे परक्कमो य, उभयो णंदिघोसेणं,उभयो दोहिं पासेहिं, अहवा आग्गितो पच्छितो य, णंदिघोसेत्ति णंदिघोसो तस्स, कतो य नंदिघोसो?, उच्यते, जे एरिसे अस्से दूरुहति तस्स णंदीवि भवति, जहा सो अप्पाणं परं च रक्खति सत्तुपक्खातो, एवं इमोऽवि परतित्थिएहिंतो रक्खति बहुश्रुतत्वात् ॥ 'जहा करेणुपरिकिण्णे०'||३४४-३५३|| सिलोगो,करेणु हत्थिणियाओ ताहिं परिकिण्णोत्ति कु-भूमी तं जरेती कुंजरं, हायणं वरिसं, सट्ठिवरिसे, परं बलहीणो, अपत्तबलो परेण परिहाति, बलं बलेण मत्तो अपडिहतोत्ति, अन्नेहिं सत्तेहिं ण हम्मतित्ति, एवं बहुस्सुतेऽवि परप्पवाईहिं न हम्मति। 'जहा से तिक्खसिंगे०'||३४५-३५३|| सिलोगो, तिक्खसिंगत्वात् जातस्कन्धत्वाच्च अन्नेहिं धसभेहिं णाभिद्दविज्जति शोभते च, एवं बहुस्सुतोवि परतित्थिय० अंगमत्तेण शोभति ॥ 'जहा से तिक्खदाढे०'||३४६-३५३||सिलोगो, उदग्गं पधानं शोभनमित्यर्थः, उदग्रं वयसि वत्तमानं, जहा सो सीहो सव्वेहिं दुप्पहंसणीयो, एवं बहुस्सुतोऽवि परतित्थियमियातीहिं दुप्पहंसणीयो । 'जहा से वासुदेवे०' ||३४७-३५३|| सिलोगो, जहा वासुदेवो सव्वत्थ अपराजिओ, एवं बहुस्सुतोवि कुतीत्थिएहिं अपराजितो ॥ 'जहा से चाउरंते०'||३४८-३५३||सिलोगो,चाउरंतित्ति तिहिं दिसाहिं समुद्दो एगतो पव्वतो,जहा सो चक्कवट्टी महड्डिए मणुसिद्धीए, अपराजितो य, एवं बहुस्सुतोऽवि महईए सुयविभूतीए, न तीरइ य परप्पवाईहिं पराजिणिउं, 'जहा से सहस्सक्खे०' ||३४९-३५३|| सिलोगो, सहस्सक्खेत्ति पंच मंतिसयाइं देवाणं तस्स, तेसिं सहस्सो अक्खीणं, तेसिं णीतिए दिट्ठमिति, अहवा जं सहस्सेण अक्खाणं दीसति तं सो दोहिं अक्खीहिं अब्भहियतरायं पेच्छाति, एवं बहुस्सुतोऽवि

||१९९||

सुतणाणेणं अणंते भावे जाणति ण पासति, जह य इंदो महन्तीए सुरविभूतीए वच्चति, एवं सोऽवि। 'जहा से तिमिरविद्धंसे०' ||३५०-३५३|| सिलोगो, तिमिरं-अन्धकारं तं विद्धंसति-विणासति, जाव मज्झण्णो ताव उट्ठेति, ताव से तेयलेसा वद्धति, पच्छा परिहाति, अहवा उत्तिट्ठंतो सोमो भवति हेमंतियबालसूरिओ, एवं जहा आइच्चो तेएण जलति एवं बहुस्सुतोऽवि तेजवान्। 'जहा से उडुवई चंदे०' ||३५१-३५३|| सिलोगो, उडूइं-णक्खत्ताइं तेसिं पती उडुपति, सो य अद्धपहे णिट्ठपरिवारो (अट्ठमी-आइसु णेट्ठपरिवारो) पडिपुण्णो हि पडिपुण्णमंडलो पुण्णमासीए अतीव सोभयति, एवं बहुस्सुतोऽवि चंद इव सोमलेसो सीस-परिवारितो सोभयति, एवं एक्केक्केण गुणेण दिट्ठंता भणिता। इमो अणेगेहिं भण्णति–'जहा से सामाइयाणं०'||३५२-३५३|| सिलोगो, जहा कोट्ठागारो णाणाविधाण धण्णाण सुपडिपुण्णो, एवं बहुस्सुतो णाणाविधाण सुतणाणविसेसाण सुपडिपुण्णो। 'जहा सा दुमाण पवरा०' ||३५३-३५३|| सिलोगो, जह जंबू अमितफला देवावासो य, एवं बहुस्सुतोऽवि सुयणाणअमियफलो, देवावि य से अभिगमणादीणि करेंति। 'जहा सा नईण पवरा०'||३५४-३५३|| सिलोगो, जहा सीता सव्वणदीण महल्ला बहूहिं च जलासतेहिं च आइण्णा, एवं चोद्दसपुव्वीविऽसेससुतणाणेण महान् प्राधान्ये वट्टति, अणेगे य णं सुतत्थी उवसप्पंति। 'जहा से णगाण पवरे०'||३५५-३५३|| सिलोगो, जहा मन्दरो थिरो उस्सिओ दिसाओ य अत्थ पवत्तंति, एवं बहुसुतोऽवि बहुसुयत्तणेणेव थविरो उस्सिओ य दव्वदिसाभावदिसापभावगो य || किं बहुणा ?—'जहा से सयंभुरमणे' ||३५६-३५३|| सिलोगो, जहा सयंभुरमणो समुद्दो अक्खयोदगे रयणाणि य अत्थि गंभीरो य, एवं बहुस्सुतोवि अक्खयसुयणाणजलो णाणादिरयणोववेतो सुत-णाणगुणोववेत्तणेण य गंभीरो, न हु उच्छुलो। 'समुद्दगंभीरसमा' ||३५७-३५३|| सिलोगो, जहा समुद्दो अवगाढत्तणेण गंभीरो ||२००||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३२७-३५८||

दीप अनुक्रम [३२८-३५९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १२ हरिकेशीये ॥२०१॥

एवं बहुस्सुतोऽवि गंभीरो, ण उत्ताणसोयणत्थितसलिलामिव बुलबुलेति. दुरासयात्ति ण सक्का आश्रयितुं परिसहेहिं परवादीहि च, यदुक्तं ण य सक्कंति ते एतेहिं छिड्डेउं, अच्चक्किया ण सक्किया केणइ, दुप्पहंसिया दुक्खं पधंसिज्जंतित्ति दुप्पहंसिया, यदुक्तं दुराधरिसा, कस्मात्?- सुतस्स पुण्णा, विउलस्स विपुलं चोद्दस पुव्वा, विमलं णिस्संकितं वायणोवगयं बहर्थं वा विपुलं, तात्ती आत्मपरोभयताती, ते हि भगवंतो तेण सुत्तेण तदुपदेशेण य 'खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया' अट्ठप्पगारं खवित्तु उत्तमा पधाणा सिद्धिगती तं गता, जम्हा एते गुणा सुत्तस्स 'तम्हा सुयमहिट्ठेज्जा०'॥३५८-३५४॥सिलोगो,तस्मात्कारणात् सुतं अहिट्ठेज्ज-सुत्ते ठाएज्ज, उत्तमो अट्ठो-मोक्खो तं उत्तमं अत्थं मोक्खं गवेसए, गुणो तस्स, 'जेणऽप्पाणं परं चेव' जेणंति सुत्तेणं, अप्पाणंति तस्स सुत्तस्स उवदेसं करेमाणो स्वयं, परस्सावि परस्स उवदेसं देसमाणो, सिद्धिं संपाउणेज्जासि तेण सुत्तेण करणभूतेण संपाउणिज्जासि इति बेमि । णयाः पूर्ववत् ॥ बहुस्सुतपुज्जं सम्मत्तं इक्कारसमं ११ ॥

स एव पूजादि अधिकारोऽनुवर्त्तते, जहा बहुस्सुतो पूइज्जति, सो य जहा जक्खेण हरिएसबलो पूइतो, अनेनाभिसम्बन्धेनायातस्य तस्य हरिएसिज्जस्स चत्तारि अणुओगदारा उवक्कमादी, तत्थ णामनिप्फन्ने निक्खेवे हरिएसिज्जं, एत्थ गाहा 'हरिएसे निक्खेवो'॥३१८-३५४॥ गाथा, सो हरिएसो णामाति चउव्विहो, तत्थ दव्वहरिएसो 'जाणगसरीर०'॥३१९-३५४॥ वतिरित्तो तिविधो-एगभवियादि, भावहरिएसो 'हरिएसनामगोयं०'॥३२०-३५४॥गाथा कण्ठ्या, तस्स हरिएसस्स उप्पत्ती इमा- ॥२०१॥ महुराए नयरीए संखो नाम राया, सो पव्वातितो, विहरंतो य गयपुरं गतो, तहिं च (भिक्खं) हिंडंतो एगं रत्थं पत्तो, सा य किर अतीव उण्हा मुम्मुरसमा, उण्हकाले ण सक्कति कोऽवि ताहे वोलेउं, जो तत्थ अजाणंतो उप्पदति सो विणस्सति, तीसे पुण

हरिकेशवृत्तं

अध्ययनं -११- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१२- “हरिकेशिय” आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४||

दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

णामं चेव हुयवहरत्था, तेण साहुणा पुरोहियपुत्तो पुच्छितो–एसा रथा निव्वहति?, सो पुरोहियस्स पुत्तो चिंतेति–एस डज्झउत्ति, भणति-निव्वहति, सो पट्ठिओ, इयरो य अलिंदट्ठिओ पेच्छति अतुरियाए गईए वच्चंतं, सो आसंकाए उइण्णो तं रत्थं, जाव सा तस्स तवप्पभावेणं सीयलीभूता, आउट्टो, अहो इमो महातवस्सी मए आसादितो, उज्जाणठियं गन्तुं भणति–भगवं! मए पाव-कम्मं कयं, कहं वा तस्स मुंचेज्जामि ?, तेण भणति–पव्वयह, पव्वइतो, जातिमयं रूवमयं च काउं मओ, देवलोगगमणं, चुओ संतो मयगंगाए तीरे बलकोट्टा नाम हरिएसा, तेसिं अहिवई बलकोट्टो नाम, तस्स दुवे भारियाओ--गोरी गंधारी य, गोरीए कुच्छिसि उववण्णो, सुमिणदंसणं, वसंतमासं पेच्छति, तत्थ कुसुमियं चूयपायवं पेच्छइ, सुमिणपाढयाणं कहियं, तेहिं भण्णति–महणो ते पुत्तो भविस्सति, समएण पसूया, दारगो जाओ कालो विरूओ पुव्वभवजाइरूवमयदोसेणं, बलकोट्टेसु जाउत्ति बलो से नामं कयं, भंडणसीलो असहणो, अन्नया ते छणेण समागया भुंजंति सुरं च पिबंति, सो अप्पियाणि करेइत्ति निच्छूढो अच्छति समंतओ पलोएंतो, जाव अही आगतो, उट्ठिया सहसा सव्वे, सो अही णेहिं मारिओ, अणुमुहुत्तस्स भेरुंडसप्पो आगतो, भेरुंडो नाम दिव्वगो, भीया पुणो उट्ठिया, णाए दिव्वगोत्तिकाऊण मुक्को, बलस्स चिंता जाया–अहो सदोसेण जीवा किलेसभागिणो भवंति, तम्हा--"भद्दएणेव होयव्वं, पावति भद्दाणि भद्दओ। सविसो हम्मती सप्पो, भेरुंडो तत्थ मुच्चति ॥ १ ॥" एवं चिंतेंतो संबुद्धो, पव्वतिओ, विहरंतो वाणारसिं गओ, उज्जाणं तेंदुयवणं, तेंदुगं नाम जक्खायणं, तत्थ गंडी तेंदुगो नाम जक्खो परिव सति, सो तत्थ अणुण्णवेउं ठितो, जक्खो उवसंतो, अण्णो जक्खो अण्णहिं वणे वसति, तत्थवि अण्णे बहू साहुणो ठिया, सो य गंडीजक्खं पुच्छति–ण दीससि पुणाइ तं, तेण भणियं--साहुं पज्जुवासामि, तत्थ य तेंदुए दिट्ठाऽणेणं साहवो, सोऽवि उवसंतो, सो ||२०२||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४||

दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १२ हरिकेशीये ||२०३||

यज्ञपाटके हरिकेश्या गमनं

भणति-ममवि उज्जाणे बहवे साहू ठिया, एहि ते पासामो, ते गया, ते य[साय] समावत्तीए साहुणो विकहं कहेमाणा अच्छंति, सो भणति--"इत्थीण कहऽत्थ वट्टइ, जणवयरायकहऽत्थ वट्टई । पडिगच्छह रम्म तेंदुगं, अइसहसा बहुमुंडिए जणे ॥१॥" अह अण्णया जक्खाययणं कोसालियरायधूया भद्दानाम पुप्फधूवमादी गहाय अच्चिउं निग्गया, पयाहिणं करेमाणी तं दट्ठूण कालं विगरालं छित्तिकाऊण निट्ठूहति, जक्खेण रुट्ठेण अण्णाइट्ठा कया, णीया घरं, आवेसिया भणति ते--णवरं मुंचामि जइणं तस्सेव देह, तं च साहति-जहा एईए सो साहू बु(निच्छू)ढो, रण्णावि जीवउत्तिकाऊण दिण्णा, महत्तरियाहिं समं तत्थाणीया,रत्तिं ताहिं भण्णति-वच्च पतिसगासंति, पविट्ठा जक्खाययणं, सो पडिमं ठिओ णेच्छति, ताहे सरिता, ताहे जक्खोवि इसिसरीरं छाइऊण दिव्वरूवं दंसेति, पुणो मुणिरूवं, एवं सव्वरत्तिं विलंबिया, पभाए णेच्छएत्तिकाऊणं पविसंती सघरं पुरोहिएण राया भणिओ--एसा रिसि-भज्जा बंभणाणं कप्पइत्ति, दिण्णा तस्सेव । सो य जण्णे दिक्खिज्जिउकामो, सा अणेण लद्धा, सावि जण्णपत्तित्तिकाऊण दिक्खिया । गतो णामणिप्फण्णो, सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेतव्वं, तं च सुत्तं इमं-'सोवागकुलसंभूओ०' ॥३५९-३५९॥ सिलोगो, शयति श्वसिति वा श्वा श्वेन पचतीति श्वपाकः तेसिं कुले संभूतो, गुणं अनुत्तरं धारयतीति अणुत्तरगुणधरो, मनुते मन्यते वा धर्म्माधर्म्मानिति मुनिः, हरिएसबलो नाम हरति ह्रियते वा हरिः हरिं एसतीति हरिएसो 'बलो' बल इति संज्ञा, नयति नीयते वा नाम, आसीत्, भिक्खु भणति, जियाइं इंदियाणि जेण सो जिइंदिओ । 'इरिएसणभासाए'॥३६०-३५९॥सिलोगो, पुव्वद्धं कण्ठ्यं, 'जओ आयाणणिक्खेवे' यत्नवान्-यतः, आदीयत इत्यादानं, निक्षिप्यत इति निक्षेपः, संमं यतो संयतो,संजमजोगेसु सम्ममाहितो समाहिओ । 'मणगुत्तो०'॥३६१-३५९॥सिलोगो, पुव्वद्धं कण्ठ्यं, भिक्खट्ठा भिक्खनिमित्तं, बंभणाण जण्णं इज्जत इति इज्जं तं ||२०३||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४||

दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

चेव तस्स पुरोहितस्स जण्णवाडमुवट्ठितो । 'तं पासिऊणामिज्जंतं०'||३६२-३५९||सिलोगो,तं तवेण परिशोषितं, बहिरंतश्च शोषितः, 'पंतोवहिउवगरणं' उपदधाति तीर्थं उपधिः, उपकरोतीत्युपकरणं, तं नाम जीर्णमलिनं उवहसन्ति, न आर्या अनार्याः । 'जाइमयं पडिथद्धा०'||३६३-३५९||सिलोगो कण्ठ्यः,ते पुरोहितसिस्सा जेते जण्णत्थमागता ते भणंति-'कयरे तुमं एसिध दित्तरूवे' अथवा ते अन्नमन्नं भणंति--'कयरे आगच्छति दित्तरूवे'त्ति, दीप्तरूपं प्रकारवचनं, अदीप्तरूप इत्यर्थः, अथवा विकृतेन दीप्तरूपो भवति पिशाचवत्, कालो वर्णतः, विकरालो दंतुरः, फोक्कणासो नाम अग्गेपूलनासो ओनयणासो, पाउए लक्खीयत इति, चेलं, ओमं नाम स्तोकं, अचेलओवि ओमचेलओ भवति, अयं ओमचेलगो असर्वांगप्रावृतः जीर्णवासो वा, पश्यति पाश्य(शय)ति वा पांशुः, पिशितासः पिशाचः, पांशु पिशाचभूतः पांशुपिशाचभूतः, पांशुपिशाचवत् (स) कालो वर्णतः विकरालो दन्तुरः, पुनश्च पांशुभिः समभिध्वस्तः, एवमेषोऽपि, 'संकरदूसं परिहरिय कंठे' तृणपांशुभस्मगोमयादीनामुक्करः संकरः, तत्थ दूसं संकरदूसं, उक्कुरुडियासिचयमित्यर्थः, स भगवान् अनिक्षिप्तोपकरणत्वात् यत्र यत्र गच्छति तत्र तत्र तं पंतोवकरणं कंठे ओलंबेत्तुं गच्छइ यतस्तेन आह-संकरदूस परिहरिय कंठे । सन्निकृष्टं ते तमूचुः-'कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे०'||३६५-३६०||द्रष्टव्यो दर्शनीयः न दर्शनीयः अदर्शनीयः, आशंसति तमित्याशा, पुनरपि यः तथैवोचुः 'ओमचेलगा पंसुपिसायभूया गच्छ व खलाहि' खल इति परिभवगमननिर्देशः, तद्यथा--'खलयस्सा उच्छज्जा', अथवा अवसर अस्मात् स्थानात्, 'किमिहं ठितोऽसि' 'इहे'ति इह द्वारांगणे, इत्युक्तः स तैस्तूष्णीं आयातः भगवान्, स च भगवान् यत्र यत्र गच्छति तत्र तत्रांतर्हितो भूत्वा स यक्षः तेन्दुकवृक्षवासी तमनुगच्छति, अथासौ 'जक्खो तहिं तिंदुय०'||३६६-३६०|| वृत्तं, तस्स तिंदुगठाणस्स मज्झे महंतो तिंदुगरुक्खो, तहिं सो भवति

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४|| दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

वसति, तस्सेव हिट्ठा चेइयं, जत्थ सो साहू ठितो, सव्वतेण उट्ठितो, **'अणुकंपतो तस्स महामुणिस्स'** महंतं मुणातीति महामुणी **'पच्छादयित्ता णियतं सरीरं'** दिव्वप्पभावेण साधुसरीरमणुप्पविसइ, इमाणि वयणाणि उक्तवान्, वचनीयानि वाक्यानि, **'समणो अहं संजओ बंभयारी०'** ||३६७-३६०|| सिलोगो, संजतबंभचारिग्रहणं चरकादिप्रतिषेधार्थं, समणो अहं संयतः, वृंहति बृंहितो वा अनेन धर्म इति, प्रचरणशीलो वा, अथवा कः श्रमणः?, यः संयतः, कः संयतः?, यो ब्रह्मचारी, विरतो धनसयनपरिग्गहाओ,दध्या(धा)ति तं धीयते धीयन्ते वाऽनेनेति प्राणिन इति धनं, पचनं पाकः,परिग्रहो-हिरण्णादि, **'परप्पवित्तो(वित्तस्स)'** परार्थप्रवृत्तः जत्तत्थं किमिधं आगतोत्ति?, तदुच्यते-अन्नस्स अट्ठा इहमागओमि, इदं च **'वियरिज्जइ खज्जई पिज्जाति(भुज्जई) य०'**||३६८-३६०||सिलोगो, वियरिज्जति णाम अनुज्ञायते दीयते वा,खाइमं खज्जति वा भोज्जं भुंजति,वा, प्रभूतं अमितं,**'भवतापन्नेयं'**ति आमुष्मिकमेतत्, अप्येवं विशेषतः जाण धम्मं, **'जायणजीविणु'**त्ति जीवते येन याचितुं जीवति याचितेन वा जीवति जायणजीविणं, अहवा जाण धम्मं, यथैषा जायणजीविणोत्ति, **सेसावसेसं** यदत्र भुक्तशेषं || इत्युक्तेऽध्यापक आह-**'उवक्खडं भोयण०'** ||३६९-३६१|| वृत्तं, **'उवक्खडं'**ति उपसंस्कृतमित्यर्थः, **'अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं'** आत्मार्थं सिद्धं **'इहे'**ति इह यज्ञे, एगपक्खं नाम नाब्राह्मणेभ्यो दीयते, उक्तं हि--"न शूद्राय बलिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविः कृतम् । न चास्योपदिशेद् धर्मं, न चास्य व्रतमादिशेत् || १ ||" यतश्चैवं बंभणा **'ण तु वयं एरिसमन्नदाणं, दाहामो तुज्झं किमिहं ठिओऽसि!'** पात्रभूतेभ्यस्तद्दीयते ब्राह्मणेभ्य इति । ततो यक्ष उवाच--यदि पुण्यार्थे दीयते तेन ममापि दीयतां, कस्मात् ?, जतो--**'थलेसु बीयाइं०'** ||३७०-३६२|| वृत्तं, तिष्ठति तस्मिन्निति स्थलं, कृषंतीति कर्षका, निन्नं नाम हेट्ठा, आसशा नाम जीविष्यामः, अनेन यदा सुवृष्टि-

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

भवति तदा थलो[वा]सानां व्रीहिणां संपद्यतेति, मन्दवृष्टौ त्वधस्तनानां, यद्यपि भवतां विप्रबुद्धिरात्मनः तथापि थलभूते ममावि दीयतां, ननु द्वावपि हितौ भविष्यतः, यतः- 'आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं'। 'खेत्ताणि अम्हे एहं वितियाणि लोए०' ||३७१-३६२|| वृत्तं, पुव्वद्धं कण्ठ्यम्, 'जे माहणा जाइविज्जोववेया' जननं जायते वा जातिः, वेद्यतेऽनेनेति वेदः, वेदउपवेता, बंधानुलोम्यात् विज्जोववेया, ताइं तु खित्ताइं तानि तु ब्राह्मणसमानि, क्षीयत इति क्षेत्रं, सुट्ठु पेसलाणि सुपेसलाणि, शोभनं प्रीतिकरं वा, यक्ष उवाच-'कोहो य माणो य०'||३७२-३६३|| वृत्तं, पुव्वद्धं कण्ठ्यं, कोहमाणग्गहणेण चत्तारिवि कषाया घेप्पंति, यत्र ते क्रोधाद्याः अशुभा भावा भवंति ते ब्राह्मणजातीयेष्वपि 'ते माहणा जाइविज्जाविहीणा', कथं हीणो ?, जो हि अनार्याणि कर्माणि करोति तस्य किं जात्या वेदेन वा?, भवंतश्च हिंसादिकर्म्मप्रवृत्ता एवं ताइं तुब्भे खेत्ताइं सुपावगाइं- सुट्ठु पावगाइं। स्यादेतत्, ननु वेदवेदाङ्गधरा विप्राः पात्राणि भवंति, उक्तं हि–"सममब्राह्मणे दानं, द्विगुणं ब्रह्मबन्धुषु । सहस्रगुणमाचार्ये, अनन्तं वेदपारगे ॥ १ ॥" अत्रोच्यते-'तुब्भित्थ भो! भारहरा०'||३७३-३६३|| वृत्तं, भारं धारयंतीति भारधरा, गीयते गिरति गृणाति वा गिरा, तुब्भे केवलमेव गिराभारं धरेह अधीत्य वेदान्, येन हि वो वेदेषूक्तं–"नह वै सशरीरस्यावसतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, असरीरं वा वसंतं प्रियाप्रिये ण स्पृशती"ति एवमादीनां भवन्तः पठन्तोऽपि अर्थं न जाणंति, केवलमेव हिंसार्थं उपदिशन्ति, न च हिंसया शरीरित्वं निवर्त्यते, ये तु हिंसकाः ते तु ऊषरखलक्षेत्रतुल्याः, जे पुण 'उच्चावयाइं मुणिणो चरन्ति' उच्चावयं नाम नानाप्रकारं, नानाविधानि तपांसि, अहवा उच्चावयानि शोभनशीलानि, मनुते मन्यते वा मुनिः, 'ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं' पुण्यनिष्पादनसमर्थानीत्यर्थः, ततस्तमध्यापकं ते छात्रा णिर्मुखं दृष्ट्वोचुः–'अज्झावयाणं पडिकूल-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४|| दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

भासी०' ||३७४-३६४|| वृत्तं, अध्यापयतीति अध्यापकः, यद्यपि प्रभूतमेतदन्नं 'अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं, न य णं दाहामु तुमं नियंठा' नियंठा नाम निर्ग्रन्थो, यक्ष उवाच– 'समितिसु (हिं) मज्झं सुसमाहियस्स०' ||३७५-३६४|| वृत्तं, कण्ठ्यं, एवं यक्षेणोक्ते अध्यापक आह–'के इत्थ खत्ता०'||३७६-३६४||वृत्तं,क्षत्रा नाम क्षत्रियपुत्राः, ज्योतिषः समीपे(उप)ज्योतिषो, अध्यापका नाम ये तत्रान्ये अध्यापकाः, धोकाः, चट्टा छात्रा इत्यर्थः, एनं दण्डेन फलेन हत्वा, दण्ड्यतेऽनेनेति दण्डः कोप्पराभिघातः, फलं तु पार्ष्णीघातः। 'अज्झावयाणं वयणं सुणित्ता०'||३७७-३६४||वृत्तं, काम्यतिऽसौ काम्यति वा क्रीडत इति कुमारः, 'दंडेहिं' दण्ड्यतेऽनेनेति दण्डः, वित्त इति संज्ञा, शक (कश) तीति शक्यः (कशः) समागताः, ऋषति धर्म्ममिति ऋषिः। 'रण्णो तहिं कोसलियस्स धूया०' ||३७८-३६५|| वृत्तं, कोसलायां भवः कोसलिकः, भयते भाति वा भद्रा, अथवा भद्रेति वा संज्ञा, अज्यतेऽनेनेति अंगं, अनिंदितान्यंगानि यस्याः सेयमनिंदितांगी। 'तं पासिया संजय हम्ममाणं' कण्ठ्यः, 'देवाभिओगेण निओइएण०'||३७९-३६५|| वृत्तं, देवानामभियोगः २, अभिमुखं ध्याता अभिध्याता, मनसः अभिमता इत्यर्थः, नोऽप्रियेतिकृत्वा राज्ञा अहमस्मै दत्ता, तथापि जेनं भगवता नरिंददेविंदऽभिवंदितेण 'जेणामि वंता इसिणा स एसो' एष ग्रहणं यो हि णाम देवैरपि पूज्यते स कथं भवद्भिर्निरस्यते?, न भवंतो एयं जाणंति, अहमेतं वेद्मि,'एसो हु सो उग्गतवो महप्पा०'||३८०-३६५|| वृत्तं, सो इति पूर्वोद्दिष्टस्य निर्देशः, संतप्यते येन संतापयति वा तपः, उग्गं-उग्रं तपो यस्य स भवत्युग्रतपः, महानात्मा यस्य स महात्मा, जितानि इन्द्रियाणि येन स भवति जितेन्द्रियः, सम्मं जतो२, बृंहति बृंहितो वा अनेनेति ब्रह्मः, ब्रह्मेण ब्रह्म वा चर्यं चरतीति ब्रह्मचारी, 'जो मे तया निच्छइ दिज्जमाणीं' कण्ठ्यं, 'महाजसो०'||३८१-३६५|| वृत्तं, कण्ठ्यं, महंति तमिति महान्, अश्नुते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४||

दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

सर्वलोकेष्विति यशः, महान् यशो यस्य स भवति महायशाः, अणुभाव णाम शापानुग्रहसामर्थ्यं, घूर्णत इति घोरः, परतः क्रामतीति पराक्रमः, परं वा क्रामति, 'मा एयं हीलेह अहीलणिज्जं' 'हिड्ड (हील) विबाधायां' सेसं कण्ठ्यम्, 'एयाइं तीसे०' ||३८२-३६८|| वृत्तं, पाति तामिति पत्निः, सोभणाणि भासिताणि सुभासिताणि, इसित्ति वा रिसित्ति एगट्ठं, 'वेयावडियट्ठाए' विदारयति वेदारयति वा कर्म्म वेदावडिता, नैति क्षयमिति यक्षाः, अन्येऽपि चास्य यक्षाः सहायकाः, काम्यतेऽसौ कामयति वा क्रीडनकानि कुमारः, विविधं(नि)पातयंति विति(नि)पातयन्ति । 'ते घोररूवा ठिअ अंतलिक्खे०'||३८३-३६८|| वृत्तं, घोराणि रूपाणि जेसिं ते घोररूपा, अंतलिक्खमाकाशं अंतलिक्खत्थं, असुरे भवा आसुरा, 'तहिं' ति तस्मिन् जन्नवाडट्ठाणे 'ते जणं' छात्रजणं ताडयन्ति-हणंति, ते च ब्राह्मणास्तैस्ताडिताः सन्तः भूमौ निहितविदारितदेहा रुधिरमलमलस्स धम्मेमाणा क्रन्दन्ति, ततस्ते भिन्नदेहाः, भिन्नो देहो जेसिं ते भिन्नदेहाः, इति भणंतो उचा रुधिरं वमंतो-मुखेन उग्गिरंतो 'पासेत्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो' । 'गिरिं नहेहिं खणह०'||३८४-३६८|| सिलोगो, गिरिरिति गृणाति गिरंति वा तस्मिन् गिरी, न क्षीयंति नखाः, गिरी णाम पव्वतोत्ति, तं गिरिं णहेहिं खणध, अयत्तीत्ययः, दस्यते एभिरिति दन्ताः, अयं-लोहं तं लोहं दंतेहिं खायह, जात एव तेओ जम्मकाल एव सो जायतेया-अग्गी, णतु जहा उदीतो सोमो(सूरो), मज्झण्हे तिण्हे, पज्जतेऽनेनेति पादः, अतो ते(तुब्भे)जाततेयं पादेहिं हणह जे भिक्खु अवमन्नह । 'आसीविसो०' ||३८५-३६८|| वृत्तम्, 'आसीविसो' दाढासु विसं जस्स स भवति आसीविसो, स च पन्नगः, किं भणितं होति ?, जहा सो आसीविसो आगलिते सितोवि णासाय, एवं सोवि भगवं, उग्गं तपो यः स भवति उग्रतपाः, प्रधानतपा इत्यर्थः, महांतं एसतीति महेसी, निर्वाणमित्यर्थः, घोराणि व्रतानि यस्य घोरव्रतः, दुरनुचरानित्यर्थः, घोरः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४|| दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १२ हरिकेशीये ||२०९||

पराक्रमो यस्य स भवति घोरपराक्रमः, अनन्यसदृश इत्यर्थः, तं एवंगुणसंपन्नं तुब्भे 'अगणी व पक्खंद पयंगसेणा' अग्गणं अग्गी, भिसं आदितो वा खंदे पक्खंदे, पंतं पतंतीति पतंगा, सिनोति सीयते वाऽसिना वाऽसौ दानमानसक्कारादिभिः सेना, यथा तस्याः पतङ्गसेनायाः अग्निं प्रस्कन्दन्त्या विनाशो भवति एवं भवतामपि 'जे भिक्खुं भत्तकाले वहेह'। ततस्ते तयाऽनुशास्ताः किं कुर्म्मे इदानीं ?, सा चेव तानुवाच-'सीसेण एयं०'||३८६-३६८|| वृत्तं, श्रिता तस्मिन् प्राणा इति शिरः, अतो तेण सीसेण, एतदिति एतं साधुं, सरणं उवेह-उवागच्छह, सम्यगागता समागताः, सव्वजणेण तुब्भे जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा, एसो हु कुविओ वसुहं डहिज्जा, उक्तं च-"न तद्दूरं यदस्त्रेषु, यच्चाग्नौ यच्च मारुते। विषे च रुधिरप्राप्ते, साधौ च कृतनिश्चये ॥ १ ॥" वसूनि निधत्ते इति वसुधा। ततस्ते-'अवहेडिय०' ||३८७-३६८|| वृत्तं, स्पृशंति तां स्पृश्यते वाऽसाविति पृष्ठिः, उत्तमं अंगं उत्तमंगं, अवतोडितानि पृष्ठिं प्रति उत्तमंगानि येषां ते एते 'अवहेडियपिट्ठिसउत्तमंगा', पसारिया बाहु निकम्मचिट्ठे, णिब्भेरियच्छे, णिब्भरितं-निर्गतमित्यर्थः, अश्नोतीत्याक्षिरुच्यते, वमंते रुधिरं, उड्ढमुहे निग्गतजीहणित्ते, खन्यते तत् खनंति वा तत् मुखं, जायते जयति जिनीति वा जिह्वा, नयतीति नेत्रं, 'ते पासिया०' ||३८८-३६८|| वृत्तं, खंडयन्तीति खण्डिका, कश्यतीति काष्ठं,'विमणो विसन्नो अह माहणो सो, इसिं पसादेति सभारियाओ' भरणी भार्या, (या) 'हीलं च निन्दं च खमाह भंते!। बालेहिं मूढेहिं०'||३८९-३६८|| वृत्तं, अव्यक्तवयसो बाला वेदश्रुतिविमूढधीः, अत एव अजाणगा,'जं हीलिया तस्स खमाह भंते!' भयस्य भवस्य वा अन्तं गतः भवंतः 'महप्पसादा इसिणो भवंति' महप्पसादो जेसिं ते महप्पसादा २ नाम समाहिमि(प)त्ता, 'ण हु मुणी कोवपरा' मन्यते मनुते वा मुनिः, ततः स भगवान् तदातृशंकया मुनिराह-'पुव्विं च पच्छा व

अध्यापककृता प्रसत्तिः ||२०९||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४||

दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १२ हरिकेशीये ||२१०||

मुनिकृत उपदेशः

(इण्हिं च) अणागयं च०' ||३९०-३६९|| वृत्तं, पुव्विं णाम पूर्वकाले, विहेडनपूर्वकालात्, परतः पश्चाद्विहेडनकालात्, 'समोज्जाति' विहेडनकाल एव, मनः प्रदुष्यत इति मणप्पओसो न मे अत्थि कोई,'जक्खा मु(हु)वेयावडियं करेंति,यान्ति क्षयमिति यक्षः, विदारयति वेदारयति वा कम्मं वेदावडियं, 'तम्हा' तस्मात् एते निहताः कुमाराः। तत उपाध्यायप्रमुखा ब्राह्मणा ऊचुः-- 'अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा०' ||३९१-३६९|| वृत्तं, इयर्ति रक्षति वा अर्थः, शुभाशुभकर्म्मविवागं रागद्वेषविपाकं वा धारयतीति धर्म्मः, सुतधम्मं चरित्तधम्मं च, अहवा दसविहं समणधम्मं, विशब्द नानाभावे, अनेकप्रकारं जाणमाणा, नित्यं आत्मनि गुरुषु च बहुवचनं। 'तुब्भे नवि कुप्पह भूइपण्णा' भूतिं मंगलं वृद्धिः रक्षा, प्रागर(गेव) ज्ञायते अनयेति प्रज्ञा, तत्र मङ्गले सर्वमंगलोत्तमाऽस्य प्रज्ञा, अनन्तज्ञानवानित्यर्थः, रक्षायां तु रक्षाभूताऽस्य प्रज्ञा सर्वलोकस्य सर्वसत्त्वानां वा, पच्छद्धं कण्ठ्यं। 'अच्चेमु ते महाभाग०'||३९२-३६९|| वृत्तं, अर्चनीयं अच्चिमो, भुंजाहि सालिमं शालितीति शालिः शालिभ्यो जाता शालिमः, नानाप्रकारैर्व्यञ्जनैः संयुतः नानाव्यंञ्जनसंयुतं। 'इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं०'||३९३-३६९|| वृत्तं, कण्ठ्यं, प्रतिलाभिते तस्मिन् पंच दिव्वाणि पाउब्भूयाणि, 'तहियं गंधोदयपुप्फवासं०'||३९४-३६९|| वृत्तं, गन्धोदकवर्षं पुष्पवरिसं, वसूनि [मास] रत्नानि वसूनां धारा, पुप्फसवला पपात, पहताओ देवदुंदुहिओ, आगासे सुरेहिं अहोदाणं घुट्ठं। अथ ते ब्राह्मणा ऊचुः-'सक्खं खु दीसइ०' ||३९५-३७०|| वृत्तं, साक्षात् दृश्यते तपःप्रसादः, अथ तान् मुनिराह-'किं माहणा! जोइ समारभंता' ||३९६-७३२|| वृत्तं, किंसद्दो खेवे पुच्छाए य वट्टति, खेवो निंदा, एत्थ निंदाए, किं माहणा जोइसमारभंता, द्युतते द्योतिः, सर्वभावेन आरभंता समारभंता, अग्निरित्यर्थः, अग्निसमारंभं करेंता, 'उदएण सोहिं बहियावि मग्गहा' उदकं-पानीयं, शुद्धत इति शोधिः, अतः तेन ||२१०||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४||

दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

उदकेन या शोधिः सा बाह्या, उक्तं च--दुविधा सोधी- दव्वसोधी भावसोधी य, दव्वसोधी मलिनं वस्त्रादि पानीयेन शुद्ध्यतो, भावसोधी तवसंजमादीहिं अट्ठविहकम्ममललित्तो जीवो सोधिज्जति, अदव्वसोधी भावसोधी, बाहिरियं जं तं जलेण बाहिरसोधी मग्गह, 'ण तं सुदिट्ठं कुसला वयंति' न तं सुदिट्ठं कुसला वयंति, सुट्ठु दिट्ठं सुदिट्ठं कुसला वयंति, कुसा दुविहा-दव्वकुसा भावकुसा य, दव्वकुसा दब्भा, भावकुसा अट्ठप्पगारं कम्मं, ते भावकुसे लूनंतीति कुसला, इतस्ते कुशला वदंति, इतश्च 'कुसं च जूवं च०'||३९७-३७२|| वृत्तं, कुसा--दब्भा, युवंति तेनात्मानः समुच्छ्रितेन यूपा, तृणेढि तृण्वंति वा तमिति तृणं, कत्थतीति काष्ठं, सोयं नाम पात्री, प्रातः-पूर्वाह्णे अग्निं जुहुवंत इत्यर्थः, 'पाणाइं भूयाइं विहेडयंता' प्राणनं प्राणाः, जम्हा तिसु कालेसु भवन्ति अतो भूतानि, वहेडनं विनाशनं, भुज्जोऽवि पुनः पुनः, मन्दा मन्दबुद्धयः पकरिसेण करेइ, पातयंतीति वा पापं, कर्म्मेत्यर्थः, अथेत्यानन्तर्ये । ब्राह्मणा पप्रच्छुः-'कहंचरे भिक्खु०'||३९८-३७२|| वृत्तं,कथमिति केन प्रकारेण, भिक्षो इत्यामन्त्रणं,'वयं जयामो'वयमिति आत्मनिर्देशः,वयं जिन(त)वन्तः,सेसं कण्ठ्यं,मुनिराह-'छज्जीवकाए असमारभंता०'||३९९-३७२|| वृत्तं, इंदियणोइंदिएहिं। 'सुसंवुडो पंचहिं संवरेहिं०'||४००-३७२|| वृत्तं, सुट्ठु संवुडे पंचहिं संवरेहिं-अहिंसादीहिं'इहे'ति इह मानुष्यलोके जीवितं असंजमजीवितं 'अणवकंखमाणो' 'वोसट्ठकाए' विविधमुत्सृष्टो विशिष्टो विशेषेण वा उत्सृष्टः कायः-शरीरं, शुचिः अनाश्रवः, अखण्डचरित्र इत्यर्थः, त्यक्तदेह इव त्यक्तदेहो २ नाम निष्प्रतिकर्म्मशरीरः 'महाजयं' जयतीति जयः, प्रधानो जयः महाजयः, जयंते यजंति वा तमिति यज्ञः स यज्ञानां श्रेष्ठः,आह-'के ते जोई के व ते जोइठाणा०'||४०१-३७४||वृत्तं, संतप्यतेऽनेनेति तापयति वा तपः, जीवो जोतिट्ठाणं, ज्योतत इति ज्योतिं ज्योति स्थानं२, ज्योतिते ज्योतिं, [उत्तररूपमेतद् व्या-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४|| दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

रूयानमिति न चार्वेतल्लिखनं,अत्र तु ज्योतिस्तत्स्थानस्रुक्कारीषाङ्गैधःशान्तिहोमप्रश्नपरं सूत्रं] मुनिराह-'तवो जोई०' ॥४०२-३७४॥ वृत्तं, संतप्यतेऽनेनेति तापयति वा तपः, जीवो जोइट्ठाणं, ज्योतत इति ज्योतिः, ज्योतेः स्थानं ज्योतिस्थानं, अग्निहोत्रमित्यर्थः, मनोवाक्काययोगा श्रुक्, शरीरं कारिषांगं, क्रियते इति कर्म्म, कर्म्मैधाः कर्म्म द्रष्टव्यं, संयमयोगाश्च, शान्तिः सर्वजीवानां आत्मनश्च,एतद् होमं जुहोम्यहं 'इसिणं पसत्थं' ऋषति धर्ममिति ऋषिः, एतदृषीणां, प्रशस्यते येनासौ प्रशस्तः, तीर्थमित्यर्थः, अव्याबाधस्तु मखप्रयोजनं गुणेषु च । भूय आहुः-'के ते हरए०'॥४०३-३७४॥ वुत्तं, हरतो नाम इट्ठो, 'संतितित्थे'त्ति शमनं शान्तिः, शान्तिरेव तीर्थः, अथवा सन्तीति विद्यन्ते, कतराणि संति तित्थाणि?, सेसं कण्ठ्यम्। मुनिराह-'धम्मे हरए०'॥४०४-३७४॥ वुत्तं, अहिंसादिलक्षणो धर्मः, स एव ध्रवः (हरः), बृंहति बंहते बंहिते तेन धर्म्म इति ब्रह्म, तच्च ब्रह्माष्टादशप्रकारं, शमनं शान्तिः, तित्थं दुविहं- दव्वातित्थं भावतित्थं च, प्रभासादीनि द्रव्यतीर्थानि, जीवानामुपरोधकारीनीतिकृत्वा न शान्तितीर्थानि भवंति, यस्तु आत्मनः परेषां च शान्तये तद्भावतीर्थं भवति ब्रह्म एव शान्तितीर्थं, अणाइले अकलुषं--मिथ्यात्वकषायकलुषरहितं, आत्मनः, प्रशान्तोपशान्तलेसो, पीतशुक्लाद्या लेश्याः, आत्मनः ग्रहणं न शरीरस्य तीर्थः, शरीरलेश्यासु हि अशुद्धास्वपि आत्मलेश्या शुद्धा भवंति, शुद्धा अपि शरीरलेश्या भजनीया, अथवा अत्त--इति या इष्टाः, ताश्च पीताद्याः, ताश्च शुद्धाः, अनिष्टास्तु अणत्ताओ, उक्तं हि—'अत्ता इट्ठा कंता पिया मणुण्णा',अत्ता एव प्रसन्ना, अत्ताश्च प्रसन्नाश्च अत्तपसन्नलेसे,जहिं सि ण्हातो विगतोऽस्य मल इति विमलः, विगतं पापमस्येति विगतपापः, सुसीइभूतो भवति-भृशः जहामि दोसमिति पापं । एतं 'सिणाणं कुसलेण(हिं) दिट्ठं०'॥४०५-३७४॥ वुत्तं, एतदिति यदुक्तं सिणाणं, महासिणाणं णाम सव्वकम्मक्खओ, तं महासिणाणं इसिणं

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||३५९-४०४||

दीप अनुक्रम [३६०-४०५]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १३ चित्र-संभूतीयं ||२१३||

चित्रसंभूत-पूर्ववृत्तं

पसत्थं, जहिं सि ण्हाता अहिंसादिलक्षणे धम्मे हरते विगतमला विमला, विगतमलत्वाच्च विशुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाणं- सिद्धिं पत्ता इति बेमि । नयाः पूर्ववत् ॥ इति हरिकेशीयं बारसमं अज्झयणं समत्तं १२ ॥

इदाणिं चित्तसंभूइज्जं, तस्स चत्तारि अणुओगदारा उवक्कमादि, तत्थ णामनिप्फन्ने णिक्खेवे चित्तसंभूइज्जंति, तत्थ गाहा–‘चित्ते संभूअंमि अ०’॥३२८-३७६॥ गाथा, चित्तसंभूताणं णामादि चउव्विहो णिक्खेवो, णामठवणाओ गयाओ, दव्व-चित्तसंभूता जाणगभवियादि तिविधा, भावचित्तसंभूता ‘चित्तेसंभूआउं वेअंतो०’॥३३०-३७६॥ गाथा कण्ठ्या, एतेसिं उप्पत्ती-इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे कोसलाजणवते साएते णगरे चंडवडंसओ णाम राया, तस्स धारिणीए देवीए मुणिचंदो णाम कुमारो, अण्णया चंडवडिंसओ नाम राया मुणिचंदकुमारं रज्जे अभिसिंचिऊण णिक्खंतो, विधुयकम्ममलो य परिणिव्वुतो । अण्णया सागरचंदणामा आयरिया बहुसिस्सपरिवारा साएते णगरे समोसरिता, परिसा णिग्गया, राया विणिग्गतो, धम्मकथा य, मुणिचंदो राया रज्जे पुत्तं अभिसिंचिऊण पव्वतिओ, तओ सागरचंदायरिया अन्नया अद्धाणं पवण्णा, मुनिचंदो य भत्तपाणनिमित्तं एगागी पच्चंतं गाममणुपविट्ठो, पट्ठिता साधुणो, गहियभत्तपाणो य अडविपहेण पट्ठितो, पम्हुट्ठदिसाभागो य रुक्खलतागुच्छ-गुम्मगहणं अणेगसद्दूलसीहपवरं णिण्णुण्णतचलणिपंकबहुलं सावतसउणरुद्दसद्दसाणुणाति महंतीं विंझाडवीमणुपविट्ठो, तत्तो गिरिदरीसु हिंडमाणो उत्तणेसु पादवच्छादितेसु वणेसु सुमहल्लअच्छमल्लकुरंगारिगि(जु)तेसु गिरिणियंबेसु हिंडमाणो तदिदे दिवसे उत्तिण्णो अडविं, तिसापरिगतसरीरो य सोक्खोट्ठकंठतालुगो एगाए रुक्खच्छायाए मुच्छावसणट्ठचेट्ठो संगि (विट्ठि)तो, तिण्हं(?)च णाइदूरे गोउलं, ततो चत्तारि गोवालदारगा गोरसभावितेसु उदगं घेत्तूण गोरक्खणणिमित्तं णिग्गता सोताणि(आगता),तेहिं साधू पवड- ||२१३||

अध्ययनं -१२- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१३- “चित्रसंभूतिय” आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४०५-४४०||

दीप अनुक्रम [४०६-४४१]

माणो दिट्ठो, ततो अणुकंपापरेहिं तुरितं गंतूण परिसित्तो सो साधू तेण सितियपाणएण, विइतो वत्थप्पंतेण, समासत्थो य पज्जितो, तं उत्तिति(प्पाडि)य णीतो गोउलं, पडि[ट्टि]यरितो य तेहिं पराए भत्तीए, तेणवि जिणदेसियं धम्मं गाहिता, तत्थ गाहा-'तण्हाछुहाकिलंतं०'॥ ३३२ ॥ गाहा, उक्तार्था, 'तत्तो दुन्नि दुगुंछं काउं०' ॥३३३-३३६॥ गाथा, तेसिं गोवाणं दो गोवा साधुदुगुंछाए णीतागोयं कम्मं णिव्वत्तेंति, साधुअणुकंपाए सावगत्तणेण य तेवि चत्तारिवि मरिऊणं देवलोगं गता। ततो जे ते अदुगुंछिणो ते कतिंवि भवंतरियातो सुसुमारपुरे माहणदारगा जाता, दुगुंछिणो पुण दसन्नाजणवते एगस्स माहणस्स दासा जाता, एवं सव्वा बंभदत्ती हिंडी भाणितव्वा। गतो णामणिप्फण्णो, सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेयव्वं, तं च इमं सुत्तं-'जाईपराजिओ खलु०' ॥४०६-३७६॥ सिलोगो, जाई चंडालजाती पुव्वं आसीत्, अथवा संसारजातयः गोपालदासाद्या, तेहिं दुक्खेहिं पराइतो कासि नियाणं तु हत्थिणपुरंमि णगरंमि गतो, देवलोगं गतो, ततो चुतो कंपिल्लपुरे णगरे बंभस्स रण्णो भारियाए चुलणीए बंभदत्तो आयातो पउमगुम्मातो विमाणातो, 'कंपिल्ले संभूओ०' ॥४०७-३८३॥ सिलोगो, चित्तो पुण पुरिमताले णगरे इब्भकुले पुत्तत्ताए पच्चायातो, तहारूवाणं थेराणं अंतियं धम्मं सोऊण पव्वतितो, विहरंतो कंपिलपुरमागतो। तत्थ-'कंपिल्लंमि अ नयरे०' ॥४०८-३८३॥ सिलोगो कण्ठ्यः। 'चक्कवट्टी०'॥४०९-३८४॥ सिलोगो, महायसोत्ति, अस्सुते सर्वलोकमिति यशः, भायरं बहुमाणेण, बहुमानग्गहणे मानेन, न कृतकेन उपचारमात्रेण, काले(न) स्वार्थे इति श्रेष्ठः, इदं वचनमब्रवीत्— 'आसिमो भायरा दोऽवि०' ॥४१०-३८४॥ सिलोगो कण्ठ्यः, 'दासा दसन्नये आसी '॥४११-३८४॥ सिलोगो कण्ठ्यः, दसण्णाजणवते दासा आसि, मृग्येते इति मृगः, मिगा कालिंजिरे णगे, न गच्छतीति नगः, पर्वत इत्यर्थः, 'हंसा मयंगतीराए' हसन्तीति हंसाः, गां गच्छतीति गंगा,

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४०५-४४०||

दीप अनुक्रम [४०६-४४१]

मतगंगा-हेट्ठाभूमीए गंगा, अण्णमण्णेहिं मग्गेहिं जेण पुव्वं वोढूणं पच्छा ण वहति सा मतगंगा भण्णति, तस्यास्तीरं मतगंगातीरं, तरंति तेणेति तीरं 'सोवागा कासिभूमिए' श्वयति स्वसिति वाचा पुनः पचंतीति श्वपाकाः, काशीजनपदभवंति, 'देवा य देवलोगंमि०'।।४१२-३८४।। सिलोगो कण्ठ्यः, ततः अहमसौ त्वया विना राजकुले जातः, राज्यं प्राप्य जातिमनुस्मृत्याचिंति-यन्मया तावत् पूर्वं-'सच्चसोअप्पगडा०'।।४१४-३८५।।सिलोगो, सद्वचो हितं सत्यं, शुद्ध्यतेऽनेनेति सोयं,अथवा अमायमासोऽयं शुद्धो वा व्रताभ्युपगमः, अथवा सत्यमिति संयमः, शौचमिति तपः, कम्मा पगडा ते इति पूर्वोक्ता मासोपवासादयः तेषां फलं देवलोकेऽनुभूय इहापि ते अद्यापि भुंजामि, 'किं नु चित्तेवि से तहा' किमिति परिप्रश्ने, नु वितर्के, किं नु चित्रस्यापि एवंविधा ऋद्धिर्यथा। स मुनिराह-ननु राजा 'सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं०'।।४१५-३८५।। वृत्तं, संसर्त्ति धावति वा सर्वं, शोभनं चीर्णं सुचीर्णं, सह फलेन सफलं, 'कडाण कम्माण' बद्धपुव्वा णिधत्तणिकाइयाणं ण मोक्खो अत्थि, यतः-'अत्थेहि कामेहि अ उत्तमेहिं' उत्तमाः-सर्वप्रधानाः, 'आया ममं पुण्णफलोववेओ। जाणाहि संभूय०!' ।।४१६-३८५।। वृत्तं, यथा त्वमात्मानं एवं मन्ये हे सम्भूत! 'महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं चित्तंपि जाणाहि तहेव रायं!' तावदयं पुरा भ्राता आसीत्, तत्कथं आत्मोपमया देव! न जानीये 'इड्ढी जुत्ती तस्सवि अप्पभूआ' स्याद् बुद्धिः- कथमहं श्रेष्ठिश्रियं विहाय प्रव्रजितः ?, उच्यते-पुरिमतालसमोसरिताणं थेराणं 'महत्थरूवा वयणं०' ।।४१७-३८५।। वृत्तं, महंत्यर्थपदरूपाणि महत्थरूवा, उक्तिर्वचनं, प्रभूतग्रहणं विकल्पशः एकैकमर्थं कथयन्ति, स्याद्वादो न दृश्यते तेन रूपग्रहणं न कर्त्तव्यं, तत उच्यते-ते हि भगवन्तः पूर्वापरदोषविशुद्धाणि रूपाणि(निरूपणानि) वचनानि दर्शयन्ति, उक्तं हि-"नानामार्गप्रग०" महन्ती रूपाण्यङ्गानि गच्छन् शक्तन्तु, गाथा तत्र गुणति वा व्यावृत्तः खेदं

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४०५-४४०||

दीप अनुक्रम [४०६-४४१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १३ चित्र-संभूतीयं ||२१६||

भोग-प्रार्थना

नैति शान्तिं तां गीयते वाऽसौ गाथा, अनु पश्चाद्भावे स्तोके वा, पूर्वजिनैस्तच्छिष्यैश्च गीतान्यनुगायंति गाहाणुगीवा, नृत्यत इति नरः, समूहः संघातः, समूहग्रहणं न एकशः कथयंति विगृह्य, नरसंघमज्झत्था स्वगुणवाचा अवदातवाचं कथयंति, यतश्च यथैव कथयन्ति तथैव चरन्तीत्यतः 'जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया' यस्माच्छीलमेव गुणः 'इहे'ति इह प्रवचने, इह आर्यवत्वे, तेन तत्सकाशे श्रमणोऽहं जातः, क्वचित्तु पठन्ति 'इहऽज्जवं ते समणोऽम्हि जाओ' यस्माद्भिक्षवः शीलगुणोववेया आर्यत्वावस्थिता इत्यतोऽहं तान् दृष्ट्वा पृष्ट्वा च तत्सकाशाद्धर्मं श्रुत्वा सुमनो जातः, प्रसन्नमना इत्यर्थः, राजोवाच–साधु भगवन् ! यत् प्रव्रजितः, किन्तु मया दीयमानान् भोगान् भुङ्क्ष्व, इमेसु पंचसु पासादएसु लल तावत्॥ तंजहा-'उच्चोदए०'||४१८३८६|| वृत्तं, अथवा ममैते पंच प्रासादा तेषु तावद्विद्यन्ते, तंजहा–उच्चोदए महू कक्के मध्ये ब्रह्मा 'प्रवेदिता आवसधा य रम्मा' देवैर्वर्द्धकिपुरःसरैः प्रवेदिता इत्यर्थः, आवसंति तेष्वित्यावसहा, ते च नान्यभवनप्रकाराः, सव्वे ते, कामकमा नाम यत्र मम रोचते तत्र भवन्ति, अथ स्थितं तु 'इमं गिहं चित्त गिहोववेदं' इममिति यन्नगरस्य मध्ये, गृह्णातीति गृहं, धनं--हिरण्यादि वित्तं तदेव सर्वलोकोपभोज्यं नवभ्यो महानिधिभ्यो आनीतं, पंचालानाम जनपदः तद्गुणान् विषयान् पञ्चलक्षणान् तैरुपपेतं तास्मिन् गृहे, बत्तीसतिबद्धेहिं नाडगसहस्सेहिं 'णट्टेहि गीतेहि य०'||४१९-३८६|| वृत्तं, णारीहि य आभरणविभूसियाहिं परिवारयंतो, सेसं कण्ठयं, 'तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं०'||४२०-३८७||वृत्तं, कण्ठयं,चित्र उवाच-'सव्वं विलवितं गीतं०'||४२१-३८७||वृत्तं,गीयं रुण्णजा[णि]तियं विलापपायमितिकृत्वा सव्वं विलवितं गीतं, अथवा तथा कायि इत्थिया पवसितपतिया पतिणो (गुणे) सुमरमाणी तस्स समागमकंखिया समरंती य भत्तुणो गुणे वित्थरओ पदोसपच्चुसेसु दुहिया विलवति, भिच्चे वा पभुस्स कुवियस्स पसाद-

||२१६||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४०५-४४०||

दीप अनुक्रम [४०६-४४१]

गीतादीनां विला-पत्वादि

णाणिमित्तं जाणि वयणाणि भासति, पणओ दासभावे अप्पाणं ठवेऊण, सोवि विलावतो, ते चेव इत्थी पुरिसो वा अण्णोण्णसमागमभिलासी कुविदपसादणणिमित्तं वा जाओ कायमणोवातियाओ किरियाओ पउंजत्ति ताओवि विजातिणिवि(ब)द्धाओ गीतंति वुच्चति, तं पुण चिंतह किं विलावपक्खे न वट्टति?, अथवा यथा कारणा कारिज्जमाणो रोगाभिभूता वा इष्टवियोगार्त्ता वा विलपति, तद्वदेवासौ छउमेण कारणा कारेज्जमाणो रागवेदणाभिभूतो विषयप्रयोगे वा गायन् विलपत्येव, अथवा कारणे कार्यवदुपचारात् कृत्वा सर्वं विलवितं गीतं, यदेतद्गीयते अस्य हि ध्रुवो नरकादिषु विलापः, इदाणिं 'सव्वं णट्टं विडंबणा' इति, इत्थी पुरिसो वा जो जक्खाइट्ठो परावरुद्धो वा मज्जपीतो वा जाओ कायविक्खेवजातीओ दंसेति जाणि वा वयणाणि भासति विडंबणा, जइ एवं तो जोऽवि इत्थी पुरिसो वा पहुणो परिओसणिमित्तं णिउंजितो धणपतिणो वा विदुमजणणिबद्धं विविधमणुसासितो पाणिपादसिरणयणाधराति संचालेति सावि विडंबणा, परमत्थेण आभरणा भारात्ति गहेयव्वाणि, जो सामिणो णियोगेण मउडादीणि आभरणगाणि मला(त्थय)गताणि वहेज्जा, सो अवस्सं पीलिज्जति भारेण, जो पुण परविम्हावणणिमित्तं ताणि चेव जोग्गेसु सरीरत्थेसु संनिवेसिताणि सो रागेऽपि भारं वहेज्ज, णो से परिस्समो, भावेमाणो कज्जगरुयताए ण मंणेज्जा व भारं, तस्सवि भारो परमत्थतो, 'सव्वे कामा दुहावह'त्ति कामा दुविहा-सद्दा रूवे य, तत्थ सद्दमुच्छितो मिगो सद्दसुहंमि पुण्णमणो मूढताए वधबंधणविणिवातो-वधबन्धमरणाणि पावेति, तहेव इत्थी पुरिसो वा सद्दाणुवाती सद्दे साधारणा मम बुद्धी, तस्स हेउं सारक्खणपरो परस्स कलुसहियतो पदुस्सति, ततो रामवसपंथपडितो रयमादियति, तन्निमित्तं वा संसारे दुक्खभायणं भवति, तहा रत्तो रूवमुच्छितो साधारणे विसए मम बुद्धी रूवरक्खणपरो परस्स पदस्सति, संकिलिट्ठो सुचिन्तो य पावकम्ममज्जिणते, तप्पभवं भवं

||२१७||

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १३ चित्र-संभूतीयं ||२१८||

संसरमाणो दुक्खभाषणं भवति, एगग्गहणे तज्जातीयग्गहणं, एवं भोगेसुवि गंधरसफासेसु सज्जमाणो परंमि य पदुस्संतो मूढत्ताए कम्ममादियति, ततो जाइजरामरणबहुलं संसारं परियट्टति, तेण दुहावहा कामभोगा परिच्चयितव्वा सेयत्थिणा ॥ 'नरिंद ! जाती०' ॥४२३-३८८॥वृत्तं, नरिंद इति तस्सेवामंतणं हे नरिंद !, जाती अधमा णाम सव्वजहण्णा, शुनः पचंतीति श्वपाकाः, 'दुहतो'त्ति दोऽवि जणा गता आसीत्, पच्छद्धं कण्ठयं, 'सोवागनिवेसणाणि'त्ति सोवागघराणि । 'तीसे अईइह उ पावियाए०'॥४२४-३८८॥ वृत्तं कण्ठयम् । 'सो दाणि सिं राय ! महाणुभागो०'॥४२५॥ वृत्तं, 'सो दाणि'त्ति स भगवान् पुरा सम्भूतः अणगारो आसीत् 'दाणिं सि राय ! महाणुभागो' कण्ठचानि वाक्यानि, तत्पुनरपि एताइं जहित्तु भोगाइं असासयाइं, आदाणमेवं अणुचिंतयाहि, अथवा आदाणहेउं अभिणिक्खमाहि, आदाणं णाम चारित्तं, तद्धेतुं अभिणिक्खमाहि। 'इह जीविए राय०'॥४२६-३८९॥ वृत्तं, पुव्वद्धं कण्ठ्यं, 'से सोअई मच्चुमुहोवणीए' मरणं मृत्युः, खन्यते वा तत् खनंति वा तमिति, मृत्योर्मुखमुपनीतः, सेसं कण्ठ्यं। 'जहेह सीहो०'॥४२७-३८९॥ वृत्तं, येन प्रकारेण यथा, 'इहे'ति इह मनुष्यलोके, म्रियते इति मृगः, हि(म्रि)यमाणो न सिंहाय अलं तद्वद्वयमपि न मृत्यवे अलं,येऽपि वा मात्राद्या ज्ञातयः तेऽपि मतस्स कालंमि तंमंसहरा भवंति, अंशो नाम दुःखभागः तमस्य न हरन्ति, अहवा स्वजीवितांशेन ण तं मरंतं धारयंति। 'न तस्स दुक्खं०' ॥४२८-३८९॥ वृत्तं, कण्ठ्यं, स तान् बन्धून् विक्रोशतो हित्वा 'चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च०' ॥ ४२९ ॥ वृत्तं कण्ठयं, 'तं इक्कगं तुच्छसरीरगं०' ॥४३०-३९०॥ वृत्तं, तुच्छं णाम शून्यमित्यर्थः, केन तुच्छं ?, जीवेन, रहितमित्यर्थः, चीयत इति चितिका, 'भज्जा य पुत्तावि य नायओ य' कण्ठ्यं, 'दायारमन्नं अणुसंकमंति' ददातीति दाता, य एषां तद्विहीनानां वृत्तिं ददाति, सोगो वा

राज्ञे-उपदेशः

||२१८||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४०५-४४०|| दीप अनुक्रम [४०६-४४१]

अवणिज्जइ 'उवणिज्जइ जीवियमप्पमायं०' ॥ ४३१-३९० ॥ वृत्तं, तस्मै उपनीयते मृत्यवे परलोकभयेनेत्येवोववण्णं, जरा वण्णो-अवदातादि, सर्वार्थिकोऽन्यथा भवति, पंचालराया ! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं (णि) महालयाइं (णि) अनन्तानीत्यर्थः, दुर्म्मोचकत्वाच्च चिरस्थितीयानि। 'अहंपि जाणामि जहेह साहू०'॥४३२-३०९॥ वृत्तं, कण्ठयं, जो एत्थ सारो भोगेसु य सारो कदलीगर्भजलबुद्बुदसान्निभैः। किन्तु 'भोगा इमे संगकरा भवंति' संगं कुर्वन्तीति संगकराः, जे पुव्वं ता अम्हारिसेहिं अज्जो असिद्धिधा (या) नाम अविनीततृष्णा, आर्य इति साधोरामन्त्रणं, स्यात् कथं दुस्त्यजान् ?, पूर्वनिदानदोषात्, 'हत्थिणपुरंमि चित्ता०' ॥४३३-३९१॥ श्लोकद्वयं कण्ठ्यं, कामभोगे सक्तत्वात् इच्छन्नपि न शक्नोति कामपंकादुत्तर्तुं, दृष्टान्तः– 'नागो जहा पंकजलावसन्नो०' ॥४३५-३९१॥ वृत्तं, नास्य किंचिदगमं नागः, स्थालायालं स्थली, सेसं कण्ठ्यं, साधुराह-यदि भोगान् न शक्नोति त्यक्तुं भिक्षुमार्गमनुयातु, तेऽपि च भोगा बह्वन्तराया, तत्र मूलान्तराय एव मृत्युकालः, स चायं–'अच्चेइ कालो०'॥४३६-३९१॥ वृत्तं, अति एति अत्येति–त्वरितं यान्ति, रात्रयो 'न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा' भूत्वा न भवन्ति रोगादिविघातैश्च, 'उविच्च भोगा पुरिसं जहंति' उपेत्य भुज्जंत इति भोगाः, पुरुष उक्तार्थः, जहंति–त्यजन्ति भाग्यहीनं, दिट्ठंतो-दुमं जहा खीणफलं व पक्खी। 'जईऽसि भोगे चइउं असत्तो०'॥४३७-३९२॥ वृत्तं, अज्जाइं णाम आयरियाणि, धम्मे ठितो अणगारधम्मे 'सव्वपयाणुकंपी'त्ति छज्जीवणिकायाणुकंपगो, ता होहिसि देवो 'इतो' इति अस्माद् मनुष्यभवादनन्तरं 'विउव्वी' वैक्रियशरीर इत्यर्थः, 'ण तुज्झ भोगे०'॥४३८-३९३॥ सिलोगो, (वृत्तं) पुव्वद्धं कण्ठ्यं, मया तु मोहं कओ, मोहो णामानर्थक एव, वीचारप्रलापो विलापो विप्रलापो। 'गच्छामि रायं! आमंतिओऽसि' तमामन्त्र्य यथासुखं प्रविजहार इति।

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४०५-४४०||

दीप अनुक्रम [४०६-४४१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १४ इषुकारीये ||२२०||

'पंचालरायाऽविय बंभदत्तो०'||४३९-३९३|| वृत्तं, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो,अप्पतिट्ठाणे इत्यर्थः। 'चित्तोऽवि कामेहिं विरत्तकामो०'||४४०-३९४|| वृत्तं, उदत्तं नाम प्रधानं, तस्य चारित्रं तपो यः स उदत्तचारित्ततपः, महांतं एसतीति महेसी, ता अणुत्तरं संजमं पालयित्वा, वीतरागसंजममित्यर्थः, अणुत्तरं सिद्धिगइं गओत्ति बेमि। नयाः पूर्ववत् ॥ चित्तसंभूइज्जं तेरसमं अज्झयणं समत्तं ॥

सम्बन्धो-णिदाणदोसो तेरसमे, चोद्दसमे पुण अणियाणगुणा, एतेणाभिसंबंधेणायातस्स चोद्दसमज्झयणस्स चत्तारि अणुओगद्दारा उवक्कमादी, ते परूवेऊण णामणिप्फण्णे णिक्खेवे उसुयारिज्जंति, तत्थ गाहा-'उसुआरे निक्खेवो०' ||३५९-३९६|| गाथा, उसुयारो चउव्विहो-णामादि, णामउसुयारो जहा उसुयारपज्जातो, जस्स वा उसुयारेत्ति नामं, ठवणा अक्खणिक्खेवो, दव्वतो उसुयारो दुविधो-आगमओ णोआगमओ य, आगमओ जाणए अणुवउत्तो, णोआगमतो 'जाणग०' ||३६०-३९६|| गाथा, जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्तो तिविधो-एगभवियादि, भावओ उसुआरे इमा गाथा-'उसुआरनाम गोए(तं)०'||३६१-३९६|| गाथा, कण्ठ्या, उसुयारस्स इमा उप्पत्ती—जे ते दोन्नि गोवदारया साहुअणुकंपयाए लद्धसंमत्ता कालं काऊण देवलोगे चउपलिओवमट्ठिइआ देवा उववन्ना, ते तओ देवलोगाओ चइउं खिइपइट्ठियनयरे उववन्ना, दोऽवि भायरो जाया, तत्थ तेसिं अन्नेवि चत्तारि इब्भदारगा वयंसया (जाया), तत्थवि भोगे भुंजिउं तहारूवाणं थेराणं अंतिते धम्मं सोऊण पव्वइया, सुचिरकालं संयमं अणुपालेऊण भत्तं पच्चक्खाइउं कालं काऊण सोहम्मे कप्पे पउमगुम्मे विमाणे छावि जणा चउपलिओवमठितिया देवा उववण्णा, तत्थ जे ते गोववज्जा चत्तारिवि देवा ते चइऊण कुरुजणवए उसुयारपुरे नयरे एगो उसुयारो णाम राया जातो, बीओ तस्सेव

इषुकार-निक्षेपः ||२२०||

अध्ययनं -१३- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१४- "इषुकारिय" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३|| दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

महादेवी कमलावई नाम संवुत्ता, ततिओ तस्स चेव राइणो भिगुणाम पुरोहितो संवुत्तो, चउत्थो तस्स चेव पुरोहियस्स भारिया संवुत्ता वासिट्ठी गोत्तेण जसा नामं। सो य भिगु अणवच्चो गाढं तप्पए अवच्चनिमित्तं, उवयाणए देवयाणि पुच्छइ नेमित्तिए। ते दोऽवि पुव्वभवगोवा देवभवे वट्टमाणा ओहिणा जाणिउं जहा अम्हे एयस्स भिगुस्स पुरोहियस्स पुत्ता भविस्सामो, तओ समणरूवं काऊण उवनया भिगुसमीवं, भिगुणा सभारिएण वंदिया, सुहासणत्था य धम्मं कहेंति, तेहिं दोहिवि सावगवयाणि गहियाणि, पुरोहिएण भण्णति—भगवं! अम्हं अवच्चं होज्जत्ति?, साहूहिं भण्णति—भविस्संति वो दुवे दारगा, ते य डहरगा चेव पव्वइस्संति, तेसिं तुब्भेहिं वाघाओ ण कायव्वो पव्वयंताणं, ते सुबहुं जणं संबोहिस्संतित्ति भणिऊण पडिगया देवा, णातिचिरेण चइऊण य तस्स पुरोहियस्स भारियाए वासिट्ठीए दुवे उदरे पच्चायाया, ततो पुरोहितो सभारितो नगराओ विणिग्गतो, पच्चंतगामे ठितो, तत्थेव सा माहिणी पसूया, दारगा जाया, तओ मा पव्वइस्संतित्तिकाउं मायावित्तेण वुग्गाहिज्जंति--जहा एए पव्वइयगा दिव्वरूवाइं घेत्तुं मारंति,पच्छा तेसिं मंसं खायंति,तं मा तुब्भे कयाइं एएसिं अल्लियस्सह। अन्नया ते तंमि गामे रमंता बाहिं निग्गया इओ य-अद्धाणपडिवण्णा साहू आगच्छन्ति,तयो ते दारगा साहू दट्ठूण भयभीता पलायंता एगंमि वडपायवे आरूढा, साहुणो समावत्तीए गहियभत्तपाणा तंमि वडपायवहिट्ठे ठिया, मुहुत्तं च वीसमिऊणं भुंजिउं पयत्ता, ते वडारूढा पासंति साभावियं भत्तपाणं, नत्थि मंसंति,तओ चिंतिउं पयत्ता--कत्थ अम्हेहिं एयारिसाणि रूवाणि दिट्ठपुव्वाणित्ति?,जाई संभरिया,संबुद्धा,साहुणो वंदिउं गया अम्मापिउसमीवं,मायापितरं संबोहिऊण सह मायापितेण पव्वइया,देवी संबुद्धा,देवीए राया संबोहिओ,ताणिवि पव्वइयाणि,एवं ताणि छावि केवलणाणं पाविऊण णिव्वाणमुवगयाणित्ति ॥ णामणिप्फण्णो णिक्खेवो गतो, सुत्ताणुगमे सुत्तमुच्चारेयव्वं, तं च इमं सुत्तं-‘देवा भवित्ताण०’

पुत्रयुगलं

||२२१||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १४ इषुकारीये ॥२२२॥

पुत्रयोर्वैराग्योक्तिः

॥४४१-३९७॥सिलोगो,'पुरे भवंमी'त्ति अणंतरे भवे 'केयी'त्ति तेसिं छण्हं जणाणं, पूर्यंत इति पुरं, पुराणं-चिरंतणं, उसुआर नाम, उसुकारपुरमित्यर्थः, 'ख्यातं' प्रथितं समृद्धं बहिरन्तश्च सारेण सुरलोगसरिसं सुइन्न(त)त्तणेण, काणणुज्जाणवाविपुक्खरणीहिं देवलोगरम्मं,'सकम्मसेसेण०'॥४४२-३९७॥ वृत्तं, 'सकम्मसेसेण'त्ति देवलोगाओ अवसिट्ठएण 'पुराकएण'त्ति पुव्वं कतेणं संजमेणं, कुलेसु सुदत्ते-उग्गे पसूया। उदत्ताइं जाइं जाईए कुलेण धणेण य, उक्तं च-"जाइं इमाइं कुलाइं भवन्ति-अड्ढाइं दित्ताइं०," संसार एव भयं संसारभयं तस्स णिव्विण्णो, जहाय भोगे मातापित्रादयश्च 'जिणिंदमग्गो' णाम णाणदंसणचारित्ताणि, सरणं पवन्ना, अज्जु च्चु)ए गता इत्यर्थः, 'पुमत्तमागम्म कुमारबोधी०'॥४४३-३९७॥ वृत्तं, तत्थ पूर्वभवे वयंसया'पुमत्तमागम्म'त्ति माणुस्सं, देवलोगं, देवलोगा पुण माणुस्संति, तंमि माणुसे खेत्ते दोवि कुमारा तेसिं पिता पुरोहितो, तस्स पत्तीवि जसा णामतो, विच्छिण्णकित्ती-विशालकीर्त्तिं, राया उसुयारो, ता देवी कमलावइत्ति। 'जाईजरामच्चु०'॥४४४-३९८॥ वृत्तं, जायत इति जातिः, जीर्यंत इति जरा, जाती च जरा च जातिजरा, मृत्योर्भयं २, अतस्तथा जातिजरया मृत्युभयेन च अभिभूतो लोको, बहिं विहारो मोक्खो तस्स हेऊ णाणादीइ तम्मि अभिनिवेसितं, दिचं, संसारचक्कं छव्विहं, तंजहा--जाती जरा सुहं दुक्खं जीवितं मरणं, तस्य विमोक्षार्थं, विपक्षभूतं दृष्ट्वा कामतो ते सुविरत्ता, के ते ?, उच्यते-'पियपुत्तगा०'॥४४५-३९८॥ वृत्तं, पुरस्य हितः तथा 'सुचिण्णं'ति, ण णिदाणोवहतं, सेसं कण्ठयं। 'ते कामभोगेसु०'॥४४६-३९८॥ वृत्तं, कामा दुविहा-सद्दा रूवा य, भोगा तिविधा-गंधा रसा फासा, 'ते' इति ते दारया असज्जमाणा, मणुस्सता ताव खेलासवादी, दिव्वावि विधुला चयणधम्मा य, कथं ण सज्जंति ?, जेण मोक्खाभिकंखी, अत्यर्थं तीव्रा श्रद्धा, तातं उवागम्म इमं उदाहु- 'असासयं०' ॥४४७-३९८॥ वृत्तं, शश्वद्भवतीति शाश्वतं ॥२२२॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १४ इषुकारीये ||२२३||

पुरोहितोक्तिः

न शाश्वतं अशाश्वतं,अतो ते दट्ठुं 'इमं' इति मणुस्सभवे,विहरणं विहारः,भोगा इत्यर्थः,जतो भन्नति 'भोग भोगाइं भुंजमाणो विहरति' 'बहुअंतराए' त्ति ते भोगा अंतरायबहुला, व्याध्यादिभिरुपद्रवविशेषैः 'ण य दीहमायुं' 'तम्हा' तस्मात् 'गिहंसि न रइं लभामो' 'आमंतयामो' त्ति आपुच्छणा, चरिस्सामो मोणं जताणि उपशमं करिष्यामः, मुणिभावो मौनं, संयममित्यर्थः, 'अह तायओ०'||४४८-३९९||वृत्तं, अथेत्यानन्तर्ये, तवस्स वाघायकरं वयासी, सुक्खतो दरिसणओ य, जहा 'इमं वयं वेयविओ वयंति, जहा न होई असुआण लोगो' इमामिति प्रत्यक्षीकरणे 'वय' मिति वाग्, 'विद् ज्ञाने' विदंति तमिति वेदः, विऊ जाणगा, वेदं जाणंतीति वेदविदु, किं वदन्ति?-अथ अपुत्रस्य लोक एव नास्ति, तस्मात् 'अहिज्ज वेए०' ||४४९-३९९|| वृत्तं, अधीत्य वेदान् श्राद्धादिषु च भोजयित्वा विप्रं पुत्रांश्च जनयित्वा तांश्च गृहेषु स्थापयित्वा, वीवाहयित्वेत्यर्थः, भोगाँश्च भुक्त्वा स्त्रीभिः सार्द्धं, पच्छा अंतकाले वणप्पावेसं तावसादीणं एतत्प्रवेशस्तं प्रशस्तं प्रशस्यतो वा, नातो विपर्ययेनेति। 'सोअग्गिणा आयगुणिंधणेणं०'||४५०-४०१|| वृत्तं, शोक एवाग्निः शोकाग्निः अतस्तेन शोकाग्निना, आत्मगुणा-रागादयः त एव च इंधनं 'मोहानिलापज्जलणाहिएणं' महाणगरदाहातोवि अधिअतरेण संतत्तभावो जस्स सव्वतो तप्पमाणं बहिरन्तश्च लोलुप्पमाणं लोलुप्पमानं भरणपोसणकुलसंताणेसु य तुब्भे भविस्सहत्ति, बहुधा-पुनः पुनः बहुं च-बहुप्पगारं । 'पुरोहियं तं कमसोऽणुणंतं०'||४५१-४०१||वृत्तं, अधिज्जवेदादिएहिं जहक्कमं कामओ गुणेहिं सद्दादि भोच्चा सुतप्पदाणं च काउं, कुमारगा तस्स तं वयणं सुणित्ता इदमुक्तवन्तः-'वेदा अधीता न भवंति ताणं' ||४५२-४०१|| वृत्तं, कस्माद् ?, हिंसकत्वात्, उक्तं च--'अकारणमधीयानो, ब्राह्मणस्तु युधिष्ठिरः । दुश्शीलेनाप्यधीयन्ते, शीलं तु मम रोचते ॥ १ ॥' तथा--'शिल्पमध्ययनं नाम, वृत्तं ब्राह्मण- ||२२३||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३|| दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १४ इषुकारीये ||२२४||

लक्षणम् । वृत्तस्थं ब्राह्मणं प्राहुर्नेतरान् वेदजीवकान् ।। २ ।।" 'भुत्ता दिया णिंति तमं तमेणं'ति अजिइंदिया हि भोजिता (नमो) णरगो ततोवि जं तमतमो तंमि णिंति, 'जाता य पुत्ता न भवंति ताणं' जहा- सट्ठि पुत्तसहस्साइं, सगरो किर मेदिणिं । पमोत्तूण सो समणो पव्वतितो, इह खलु पुत्ता ण ताणाए, को नाम ते अणुमन्निज्ज वाक्यं?, एतदुक्तं त्वया-अधीता(त्य) वेदा, जे य कामगुणा त एवंविधा'खणामित्तसुक्खा०'।।४५३-४०१। वृत्तं,खणमिति कालः सो य सत्त उस्सासणीस्सासा एस थोवो एस एव खणो भवति, तावत्कालं सौख्यं विषयेषु, बहुकालदुक्खा, कामभोगासक्ता हि नरकेषूपपन्ना, अनेकानि पल्योपमानि सागरोपमाणि दुक्खमणुभवंतित्ति बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा पज्जत्तियदुक्खा, अणिकामसोक्खा ण णिकामं, अपर्याप्तसौख्या इत्यर्थः, संसारसोक्खस्स विपक्खभूता, प्रत्यनीकभूता इत्यर्थः, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा, खनिः-आकरो य एकार्थं 'परि० ।।४५४-४०१।। वृत्तं, परिव्वयंतित्ति याति यौवनं 'अणियत्तकामो' अणियत्तइच्छो 'अहो य रातो परितप्पमाणो'परि-समंतात्, सर्वतस्तापः परितापः, त्रिभिर्वा योगैः तापः परितापः, असंपत्तीए सद्दादीणं, अण्णप्पमत्तो आहारार्थं सु-भृशं मत्तो-मुच्छितो गिद्धे-गहिते अज्झोववन्ने, अथवा सरीरापत्यदारादिषु प्रसभं मुच्छितो, धणं-हिरण्णादि तं एसमाणे उवज्जिणमाणे उवज्जिए वा अपरिभुंजिउं चेव प्राप्नोति मृत्युं पुरिसा जरं च प्राप्नोति, पश्चान्न शक्नोति तदुपभोक्तुं, व्यर्थकमेवोपार्जनं भवति, अथवा एवं परितप्पति-'इमं च मे अत्थि०'।।४५५-४०१।। वृत्तं, इमं च मे अत्थि सरीरे महिलाए, गृहोपभुज्जं वा, इमं च णत्थि,तो तं उवज्जिणामि, इमं कतं इमं करेमि, अथवा अच्छउ वा तं इमं अद्धकयं, इमं ताव करेमि, तंमि दरनिट्ठविते तं चेव, तं एवमेवमत्यर्थं लालप्यमाणं हरतीति हरः, मृत्युरित्यर्थः, किं बाहिरा मृत्युना?, नित्युच्यते, हरंतीति हराः-व्याधयः मुहुत्तदिवससंवच्छरा वा आयुं

कुमारोक्तिः

||२२४||

हरंति, उक्तं च--किं तेसिं ण बीभेया आसकिसोरीहिं सिग्घलग्गाणं । आयुबलमोडयाणं दिवसाणं आवडंताणं? ।। १ ।। एवं णच्चा कहं पमातो करेयव्वो धम्मेऽपि ता?, 'धणं पभूतं०'।।४५६-४०२।।वृत्तं कण्ठ्यं। कुमारगाह-'धणेण किं धम्मधुराहि०'।।४५७-४०२।। वुत्तं, धम्मधुरा-संजमधुरा, सयणो पुव्वसंथुयादि, कामगुणा सद्दादि, उक्तं च-"छड्डेतूणं गम्मइ सारं दारं च पुत्रदारं च । अतिणियगंपि सरीरं छड्डेउमवस्स गंतव्वं ।। १ ।।" 'समणा भविस्सामु गुणोहधारी' गुणोहो-अट्ठारस सीलंगसहस्साणि धारंता 'बहिं विहारा अभिगम्म भि[हि]क्खं' बहिर्विहारे स्थित्वा भिक्खारा भविस्सामो, बहिर्विहारो णाम अप्पडिबद्धविहारोपि ता। आह-यदप्युक्तं प्राक् 'णिव्वाणमग्गस्स विपक्खभूता' प्रत्यनीकभूता तं निर्वाणमेव नास्ति, कुतः ?, बंधाभावात्, कथं बन्धो नास्ति ?, जीवाभावात्, कथं जीवो नास्ति?, 'जहा य अग्गी अरणीउऽसंतो०'।।४५८-४०२।। वुत्तं, येन प्रकारेण यथा, अंगतीत्यग्निः, उत्तराराणिसंयोगात् मध्यमानोऽभूत्वा सम्भवति, विद्यते उपलभ्यत इत्यर्थः, भूत्वा चोत्तरकालं न भवति, इत्येवं जीवोऽभूत्वा भवति, उक्तं च--'एतावानेव पुरुषो, यावानिन्द्रियगोचरः । भद्रे! वृकपदं ह्येतद्यद्वदन्ति बहुश्रुताः ।। १ ।।' तथा क्षीरेऽपि कालान्तरपरिमाणात्,तथाऽनाथेयपुरुषप्रयत्नाच्च सर्पिरुत्पद्यते अभूत्वा, उत्तरकालं च न भवति यथा, एवमात्माऽपि'एवमेव जाता!' एवमवधारणे,जाता इति पुत्रा, सरीरंमि सत्ता संमुच्छिस्संति अजसंघातवत्, णासतित्ति प्रलयमेति एवमात्मापि, एवं तैक(ल)मपि, एवमेव ह्यात्मा, तथाविधनाशोपलब्धौ भस्म विशुद्धं क्लेदात(प्रेक्षित)मिति, चित्तमात्र आत्मा, कुमारकावाहतुः, यदुक्तं-नास्त्यात्मा तदभावाच्च निर्वाणवैफल्यमिति, अत्रोच्यते--(अस्ति निर्वाणं) कुतः ?, स्वभावव्यवस्थितत्वात्, इह यो भावः येन भावेन व्यवस्थितः सोऽस्ति, को दृष्टान्तः ?, यथा घटः स्वेन भावेन व्यवस्थितः, तस्मात् स्वभावव्यवस्थानात् पश्यामः जीवोऽस्तीति, इतश्च

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

नास्तिक पक्ष तत्खडनं च

जीवोऽस्ति, कुतः ?, प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतेन्द्रियान्तराविकारसुखदुःखोपलब्धेः इत्यात्मनि एते भावा भवन्ति, को दृष्टान्तः?-यथा वायुः, शाखाभङ्गैः करणैरप्रत्यक्षोऽप्यस्मदादिभिरुपलभ्यते, तथा चात्मा प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतेन्द्रियांतरविकारसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नप्रभृतिभिः प्रत्यक्षैरनुमीयते अस्ति स जीवो एषां भावानां कर्त्तेति, तस्मात् प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियांतरविकारसुखदुःखोपलब्धीरपि पश्यामः, जीवोऽस्तीति, इतश्च जीवोऽस्ति, कुतः ?, पूर्ववृत्तार्थस्मरणात्, को दृष्टान्तः ?, यथा घटः पूर्ववृत्तस्मर्त्ता न भवति न च तथाऽऽत्मा, आत्मा हि इहलोकवृत्तानामर्थानां कश्चिच्च परलोकवृत्तानामप्यर्थानां जातिस्मर्त्ता भवति, तस्मात् पूर्ववृत्तस्मरणात् पश्यामः जीवोऽस्ति, यद्यस्तीति कथं निस्सरन् प्रविशन् वा नोपलभ्यते ?, उच्यते-'नोइंदियग्गिज्झु०' ||४५९-४०३|| वृत्तं, णोइंदियग्राह्यः, कथं नोइंदियग्राह्यः?, उच्यते, अमूर्तत्वात्, नोइन्द्रियं मनः, मनश्चात्रैव, अतः स्वप्रत्यक्ष एवायमात्मा, कस्मात् ?, उच्यते-त्रैकाल्यकार्यव्यपदेशात्, तद्यथा-कृ(ज्ञा)तवानहं जानेऽहं ज्ञास्येऽहमिति योऽयं त्रिकालकार्यव्यपदेशहेतुः अहंप्रत्ययोऽयमानुमानिको न, नागमिकः, किं तर्हि ?, स्वप्रत्यक्ष एवायं, अनेनैवात्मनां प्रतिपाद्यत्वात्, नायमनात्मके घटादावुपलभ्यते, इहेन्द्रियातिरिक्तो विज्ञाता तदुपरमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात्, यो हि तदुपरमेऽपि तदुपलब्धमनुस्मरति स तस्मात् अर्थान्तरमुपलब्धा दृष्टः, यथा-पंचवातायनोपलब्धार्थानुस्मर्त्ता देवदत्त इति, अतः णोइंदियगिज्झु अमुत्तभावादिति, अमूर्त्तत्वाच्च नित्यः, आह--आकाशस्येव नित्यस्यामूर्त्तस्य कथं जीवस्य बन्धो भवति ?, उच्यते, 'अब्भत्थहेउं णितलस्स बंध' आत्मानं प्रति यद्वर्त्तते तदध्यात्मं, तच्च रागद्वेषमोहमिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाः, 'हेउ'त्ति हेतुः कारणं तु, अपदेशः-निमित्तं, अस्मात् कारणात् नित्यत्वामूर्त्तत्वसामान्येऽपि आकाशस्य सति वैशेषिको

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १४ इषुकारीये ||२२७||

अनित्यता

धर्मः अध्यात्मकृतो बन्धहेतुः जीवस्य संसारहेतुः, कथं बन्धमाहु?:- 'जहा वयं धम्ममजाणमाणा०'||४६०-४०३|| वृत्तं, येन प्रकारेण यथा, वयमित्यात्मनिर्देशः, जैनं धर्ममजानमानाः, पातयन्ति पासयति वा पापं रागद्वेषोद्भवं साधुषु उद्वेजननिमित्तकं पुरा- प्रथमं क्रियत इति कर्म अकार्षीत्, ओरुज्झमाणा जं तुब्भेहिं धणियं समं लभंता, परिरक्खिवज्जंता साधु एलका (संपका) तं णेव भुज्जोऽवि समायरामो पावं गिहवासे चरेंति, किमर्थं गृहवासे रतिं न लभह?, तेणंति |'अब्भाहयंमि०'||४६१-४०३|| सिलोगो, वायुरादिट्ठंतेणं, जहा मिगजूहं वाहेण अब्भाहयं-वागुराए परिक्खित्तं असोहणाणि पहरणाणि पडंति, तव्वध्यानि भूमीए वा पडंति, एवं अभ्याहते लोके गिहवासे न रमामो। पुरोहित आह-'केण अब्भाहओ लोओ०' ||४६२-४०४|| सिलोगो, कण्ठ्यः, पुच्छाए कुमारकाह- 'मच्चुणऽब्भाहओ लोओ०' ||४६३-४०४|| वृत्तं, पुव्वद्धं कण्ठ्यं, अमोहा रयणी, किं दिवसतो ण मरति ?, उच्यते-लोकसिद्धं यन्मरतीति (रत्ति) वाहरंती य, अहवा सो न दिवसे विणा (रत्तीए) तेण रत्ती भण्णाति, अपच्छिमत्वाद्वा णियमा रत्ती, कहं मारेती ?, उच्यते-'जा जा वच्चइ रयणी०' ||४६४-४०४|| सिलोगो, 'जा जा' इति वीप्सा, सेसं कण्ठ्यं, 'जा जा वच्चइ रयणी०'||४६५-४०४||सिलोगो, कण्ठ्यः| आह-सत्यमेतत्, किन्तु, किंचिकालं(संवस) अतो एगट्ठा चेव पव्वयामो, उच्यते-'एगओ संवसित्ताणं०'||४६६-४०५||सिलोगो, 'एगतो' त्ति एगट्ठा, किंचिकालं संवसित्ताणं 'दुहओ'त्ति अम्हे दोऽवि जणाइं 'संमत्तसंजुत्त'त्ति तुब्भ पज्जयं धम्मं गहाय पच्छा जाया ! गमिस्सामो, अणियत्तवासी गामे एगरातीओ णगरे पंचरातीयो भिक्खाहारा, आह-'जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्खं०' ||४६७-४०५|| सिलोगो, 'जस्स'त्ति णिद्देसे 'अथ' इति आमन्त्रणं, सख्यं-मित्रता, जस्स होज्ज मच्चुसक्खं दिट्ठं तेणं, जस्स किल जमो मित्तो सो तेण णिज्जमाणो भणति-किंचिकालं सह

||२२७||

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

वेक्खह, न य तेण उव्विक्खितं, वच्च जेहिं ता णिलुक्को जणो घेप्पति, जो वा जाणति अयरामरोऽहं'सो हु कंखे सुए सिया' जहा कल्लं जहामोत्ति 'अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो०'||४६८-४०५||सिलोगो, अद्येव साम्प्रतं, धम्मो-समणधम्मो,पडिवज्जामो अभ्युपगच्छामो, न पुणब्भुवगच्छामो संसारं,'अणागयं नेव य अत्थि किंचि' जं अम्हेहिं न भुत्तपुव्वं अणंते संसारे देविंदचक्कवट्टित्तणे देवेसु, अथवा नास्ति मृत्योः कुत्रचिदगमः, न विद्यते किंचिदस्याज्ञातं, न भवति, अणागयं नेव य अत्थि किंची, एवं ज्ञात्वा श्रद्धाक्षेमं श्रेयःकिन्नो विणइत्तु रागं, रागो-ममत्तभावो, उक्तं च- "अयं णं भंते ! जीवे एगमेगस्स जीवस्स माइत्ताए पियत्ताए भाइत्ताए भगिणित्ताए पुत्तत्ताए धूयत्ताए सुण्हत्ताए भज्जत्ताए सुहिसयणसंबंधसंथुयत्ताए उववण्णपुव्वे ?, हंता गोयमा ! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो"त्ति। ततो तं पुरोहितं पव्वज्जाभिमुखं स्थितं ज्ञात्वा तस्य बंभणी धम्मविग्घं करेति, ततो पुरोहितो भणति-'पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो०'||४६९-४०६||सिलोगो, पहीणपुत्तस्स उ णत्थि वासो, गृहे इति वाक्यशेषः.'वासिट्ठि'-त्ति आमन्त्रणं, भिक्षोः चर्या भिक्षुचर्या, भिक्खाचारियाकालो पुरश्चरणकाल इत्यर्थः, उक्तंच--'प्रथमे वयसि नाधीतं, द्वितीये नार्जितं धनम् । तृतीये न तपस्तप्तं, चतुर्थे किं करिष्यति ? || १ ||' दिट्ठंतो जहा दारुस्स सहाओ छायं (थाणुं) सो तं सारक्खणं सहायकृत्यं च कुर्वन्ति, छिन्नो हि गम्मा विणासं च पावंति, तहेव वाहं थाणुभूतो, अन्नोवि दिट्ठंता—'पंखाविहूणो व जहेव पक्खी०' ||४७०-४०६|| वृत्तं, पंखविहीणो पक्खी पलायणे ण समत्थो मज्जारादीहिं विणासं पावति, संगामे वा उवट्ठिते भिच्चविहूणो राया सत्तूहिं णासिज्जति, सारो धणं, विवन्नसारो वणिज इव समुद्दमज्झे पोतविणासेण पहीणपुत्तोमि तहा अहंपि, माहणी आह-'सुसंभिया०'||४७१-४०६||सिलोगो, सुट्ठु संहिता सुसंहिता, सुसंस्कृता द्रव्यादिभिरुपकरणेहिं कामगुणाः-शब्दादयः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

इमे इति ये साम्प्रतं गृहे वर्तन्ते, संपडिताः, सम्यक् पण्डिताः, अग्गरसानां-सुखानां वराः प्रधानाः प्रभूता-बहुकाः, त एवं-गुणजातीए भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पज्जत्तियं कामं, गमिस्सामु पहाणमग्गं पहाणमग्गो णाम ज्ञानदंसणचरित्ताणि, दसविधो वा समणधम्मो, पहाणं वा मग्गं पहाणमग्गं, तीर्थकराणामित्यर्थः, पुरोहित आह-'भुत्ता रसा०'॥४७२-४०७॥ वृत्तं, के ते भुत्ता ?, रसा भोगा इत्यर्थः, हे भवति जहाति तव यौवनमित्यर्थः, न असंजमं, संजमट्ठा जीवियणिमित्तं पजहामि भोगे, लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं संचिक्खमाणो सहमाण इत्यर्थः, करिस्सामि मोणं मुनिभावो मौनं, संयममित्यर्थः, माहणी आह-'मा हू तुमं०'॥४७३-४०७॥वृत्तं, मा पडिसेधे,हू पूरणे, समणो सोदरिया भाताति कामभोगा (वा) जुन्नो व हंसो णदीए पडिसोयं गंतुं अचायंतो अणुसोतमेव गच्छति, एवं तुमंपि दुरणुचरसंजमभारवहणअसमत्थो भायादीणं भोगाणं वा सुमरिहिसि, अतो 'भुंजाहि' कण्ठ्यं, पुरोहित आह-'जहा य भोई०'॥४७४-४०८॥ वृत्तं, येन प्रकारेण यथा हे भोती! 'तनुजः' तनुः-शरीरं, भुजाभ्यां गच्छतीति भुजङ्गः 'निम्मोअणिं' कंचुकं 'हिच्चा' छड्डेत्ता 'पलाइ' गच्छति, मुत्तित्ति णिरवेक्खो, अपडिबद्ध इत्यर्थः, 'एमेए'त्ति एवमेते भुजङ्गवत् 'जाया' इति पुत्रा 'पयहंति भोए' अत्यर्थं चयंति पयहंति, तेऽहं कहं नाणुगमिस्समिक्को, एगो रागद्दोसरहितो अहं सयणादी अवहाय, कहं वा अहं एगो अच्चीहामि?, 'छिंदित्तु जालं०'॥४७५-४०९॥ वृत्तं,जालं मच्छ-जालं अबलं दुब्बलमितियावत् रोहिता मच्छा, एवं वयं मोहजालं छिंदित्तु धूरि वहति धुर्यः संयमधुरावहणसीला तपांसि उदा- ॥२२९॥
राणि-उत्तमानि वीरास्तपेश्वराः भिक्षोश्चरिया भिक्खुचरिया अतो तं धीरा हु भिक्खायरियं चरंति, 'एवमेए'त्ति पुत्तेसु संजमणिट्ठितमतीसु 'नहे व कुंचा०'॥४७६ ४०९॥वृत्तं, णभे-आकासे कोंचाण पंतीओ आगच्छंतीओ तताओ-विततओ दलेत्तु-

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

छिंदेत्तु वोलेत्तु(न्ति)एवं सति'पुत्ता य'कण्ठ्यं। सव्वाइं 'पुरोहितं तं ससुयं०'॥४७७ ४०९॥वृत्तं, पुव्वद्धं कण्ठयं,कुडुंबसारो हिरण्णादि विउलं-बहुगं उत्तमं--पहाणं, अन्नभोगेहिंतो तं राया गेण्हिउमारद्धो, पच्छा तेऽवि अभिक्खं-पुणो पुणो, सम्मं उवाय समुवाय, किमुवाच ?, उच्यते---'वंतासी पुरिसो रागं०!' ॥४७८-४०९॥ वृत्तं, वंतं असिउं शीलं यस्यासौ वन्ताशी, पुरिसो उक्तार्थः, हे राजन् ! ण सोहति पसंसितो, कहं वंतासी भवति?,जेण माहणेण परिच्चत्तं धणं,कण्ठ्यं।'सव्वं जगं जइ तुहं(तव)०' ॥४७९-४०९॥ सिलोगो, कंण्ठ्यः, णवरं णेव ताणाय तं तवत्ति परलोए, उक्तंच-'अत्थेण णंदराया ण ताइओ गोहणेण कुइअन्नो । धन्नेण तिलयसेट्ठी पुत्तेहिं न ताइओ सगरो ॥ १ ॥' किंच-'मरिहिसि रागं ! जया०' ॥४८०-४०९॥ सिलोगो, अवस्स यदा तदा दिवा रात्रौ वा, उक्तंच-'धुवं उड्डं तणं कट्ठं धुवभिन्नं मट्टियामयं भाणं। जातस्स धुवं मरणं तूरह हितमप्पणो काउं ॥ १ ॥' मनो रमयन्तीति मनोरमाः, कामगुणा सद्दादयो, अत्यर्थं जहाय-पहाय, ण ते अणुगच्छंतित्ति भणितं होति । 'इ(ए)क्को हु धम्मो नरदेव! ताणं' एक्को-रागदोसरहितो, अथवा स एव एक्को धम्मो, नराणं देव नरदेव ! ताणं भवति, नान्यः कश्चित्ताणं भवति स्वजनादि, एवं स्वजनधनादि असरणादि णाउं 'णाहं रमे पक्खिणि पंजरे वा०'॥४८१-४११॥ वृत्तं, पंजरो दुक्खभूतो, एवं संसारो दुक्खभूतो, णेहसंताणं छिंदिउं चरिसामि मोणं, मुनिभावो मौनं, संजममित्यर्थः, किंचणं दव्वे भावे य, दव्वकिंचणं हिरण्णादि, भावकिंचणं कोहादि, 'उज्जुकडा' अमायी, णिरामिसा अहिरण्णसुवण्णिया, परिग्गहारंभकतेसु दोसेसु णियत्तत्वात्, 'दव्वाग्गिणा जहा रण्णे० ॥ ४८२ ॥ सिलोगो, पुव्वद्धं कण्ठ्यं, अन्ने सत्ता पमोयंति एरिसं जंति वाहादयो, दोसं गच्छंति जे तत्थ डज्झंति, सत्ता रागद्वेषवसगा संतो, दह्यमानेषु, 'एवमेव वयं मूढा०'॥४८३-४११॥ सिलोगो,कण्ठ्यः॥ भोगे भु(भो)च्चा०'॥४८४-४११॥ ॥२३०॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १४ इषुकारीये ||२३१||

राज्ञीकृत उपदेशः

सिलोगो, भोगान् भुक्त्वा इदाणिं वमित्ता-छड्डेत्ता लहु-वातो वाह्ये भूता लहुभूता, जहा सो वातो अप्पडिबद्धो सदा गच्छत्येव एवं अप्पडिबद्धविहारिणो आमोदमाणा मुदहरा, सो संजमे णंदिं मन्नति, दिया इति दो वारा जाता द्विजाः, पक्षिण इत्यर्थः, एक्कासिं अण्डजत्वेन पच्छा अण्डयं भित्वा जायंते पक्षिणो, कामतः, कामंति स्वेच्छया इत्यर्थः, एवं लहुभूतविहारिणो आमोदमाणा विहग इव विप्पमुक्का जण्णं २ दिसं इच्छंति ते तण्णं दिसं अप्पडिबद्धा गच्छंति-'इमे य लद्धा फंदंति०'||४८५-४११|| सिलोगो, 'इमे' इति प्रत्यक्षं लद्धा-प्राप्ताः, के ते ?, शब्दादयो विषयाः, फंदंतीति(फंदा)चला-अणिच्चा, मम इति आत्मनिर्देशः, हत्थपत्ता, अज्ज इति आमन्त्रणं अथवा अज्ज दिवसे संपदुपपेता, वयं च सत्ता एतेसु कामेसु चलासु, एते असासए, णिव्वाणं, छड्डिहामो जहा इमेहिं छड्डिता । स्यात् किमर्थं छड्डिज्जंति?, उच्यते-'सामिसं कुललं दिस्सा०'||४८६-४११||सिलोगो, सह आमिसेण सामिसो, कुललो-गिद्धो सउलिया वा, मंसपेसीए गहिताए अन्नाहिं सउलियाहिं वाहिज्जंति, चत्तए ण वाहिज्जंति, अतो 'आमिसं सव्वमुज्झित्ता' कण्ठ्यः। 'गिद्धोवमे य णच्चा०'||४८७-४११||सिलोगो, गिद्धेण वा उवमा जेसिं कामाणं ते इमे गिद्धोवमा, जहा सो गिद्धो सामिसो बावज्जति, णिरामिसो ण वावज्जति, कामभोगसंपन्नो तद्वित्तनिमित्तं वा धिज्जातिदाईयादीहिं, अतो गिद्धोवमे भोगे णच्चाणं, संसारं वड्ढेतित्ति संसारवड्ढणे, 'उरगो सुवण्णपासिव्व' उरेण गच्छतीति उरगः, सप्पो-सुवण्णो गरुडो उरओ तस्स पासे, अब्भासे समीपे इत्यर्थः, संकमाणो-बीहमाणो तणुं-मंदं चरति, एवं विसयकसाएसु तणु अंब(संच)रे 'नागुव्व(नागो वा) बंधणं छित्ता०'||४८८-४११|| सिलोगो,जहा हत्थी वारीतो बंधणाइं छेत्ता वसहिं अप्पणो वए, तस्स वसहिं अडवी, वनमित्यर्थः, एवं सद्धं वसहिं वए 'इति'त्ति यदुक्तं 'एतं पत्थं' एतत् पथ्यं, यत् स्नेहपासं छेत्ता, हे महाराय ! उसु- ||२३१||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४४१-४९३||

दीप अनुक्रम [४४२-४९४]

राज्ञीकृत उपदेशः

आरात्ति मे सुतं, इति उपप्रदर्शनार्थे 'मे' इति मया श्रुतं, ज्ञातमित्यर्थः, किमुक्तं भवति ?-नाग इव स्नेहबन्धनं छित्त्वा आत्मानं सद्धं वसहिं नय, एतत् पथ्यं हे महाराजा!, एतत् मया श्रुतं साधुसमीपे। 'चइत्ता विपुलं रज्जं०'॥४८९-४११॥सिलोगो, त्यक्त्वा विपुलं-विस्तीर्णं राष्ट्रं-राजं, काम्यंत इति कामाः, प्रार्थ्यन्त इत्यर्थः, भुज्यंत इति भोगाः, अतस्ते भोगा दुःखं त्यज्यन्त इति दुस्त्यजाः, णिव्विसया-सद्दादिविसयरहिया णिरामिसा-धणामिसेण रहिता निण्णेहा-पुत्तदाराइसु णिम्ममत्ता णिपडिग्गहा दुपदादिसु। 'सम्मं धम्मं वियाणित्ता०'॥४९०-४११॥ सिलोगो, 'सम्मं' जहावस्थितं संसारे सब्भावो धम्मो तं सम्मं वियाणित्ता जहा कामभोगा सयणधणादि वा न परित्राणाय अतो चिच्चा कामगुणे वरे, वरे-प्रधाने, तवं परिगृह्य इत्यर्थः, प्रकर्षेण गृह्य प्रगृह्य, 'अहक्खातं'ति यथा ख्यातं तथा प्ररूपितं, अथवा कामं वीतरागचरितमित्यर्थः, घोरं-भयानकं, कातराणां दुरनुचरं, घोरो परक्कमो जेसिं ते घोरपरक्कमा, दुरनुचरपराक्रमा इत्यर्थः।'एवं ते कमसो बुद्धा०'॥४९१-४११॥ सिलोगो, एवमनेन प्रकारेण कमसो-परिवाडीए बुद्धा संबुद्धा सव्वे-छावि जणा धम्मपरायणा-धर्म्मोद्घाता 'जम्ममच्चुभउव्विग्गा' जननं जन्म, मरणं मृत्युः,जन्मश्च मृत्युश्च जन्ममृत्यू तावेव भयं जन्ममृत्युभयं तस्स, भयस्सुव्विग्गो भीतो-त्रस्तः दुरनुचरः 'दुक्खस्संतगवेसिणो' दुक्खस्स अंतो-मोक्खो तं गवेसंति मार्गतीत्यर्थः,'सासणि विगत०'॥४९२-४११॥ सिलोगो,'शासु अनुशिष्टौ' शास्तीति शासनं, विगतमोहो-केवलणाणी तेसिं सासणे 'पुव्विं भावणाभाविया' पुव्वभवे संजमवासणाए भाविता, विसेसिता इत्यर्थः, पुव्वद्धं कण्ठ्यं। इदाणिं तेसिं णामुक्कित्तणा किज्जइ-'राया सह देवीए०'॥४९३-४११॥ सिलोगो, राया उसुयारो णाम सह कमलावतीए महादेवीए, माहणो भिगू पुरोहितो, माहणी जसा, ते य दारगा, सव्वेवि एते परिणिव्वुता,निव्वाणं निर्वृतिः,परि- ॥२३२॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४९४-५०९|| दीप अनुक्रम [४९५-५१०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १५ सभिक्षु ||२३३||

निव्वुए इति बेमि । णयाः पूर्ववत् ॥ चोद्दसण्हं उत्तरज्झयणाणं चुण्णी सम्मत्ता १४ ॥

उक्तं चतुर्दशमध्ययनं, इदानीं पंचदशमुच्यते—तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, सम्बन्धो वक्तव्यः, स च त्रिविधः, तद्यथा—सूत्र-प्रकरणाध्यायसम्बन्धस्त्रिविधः स्मृतः। केचित्तु अविशेषेण, अतः सम्बन्ध इष्यते ॥ १ ॥ केचित्तु आचार्या अविशेषेण-एकविधमेव सम्बन्धं व्याचक्षते, तद्यथा—सूत्रस्य सह सूत्रेण सम्बन्धः, यथा चतुर्दशमे धर्म्मकर्म्मसूत्रं एते परिणिव्वुतेति, पंचदशमस्य आदि-सूत्रं-'मोणं चरिस्सामि'त्ति, परिनिर्वाणं च मुनेरेधतीत्येष सम्बन्धः, तथा प्रकरणसम्बन्धो यथा चतुर्दशमे धर्मकथाप्रकरणं व्यावर्ण्यते एवं पञ्चदशमेऽपि धर्मकथैव वर्ण्यते, तथा अध्ययनसम्बन्धः-चतुर्दशमेऽध्ययने अनिदानस्य गुणा व्यवर्णिताः, एवं पञ्चदशमेऽपि अनिदानगुणसंपन्न एव भिक्षुर्भवति, अथवा सामान्येनाध्ययनसम्बन्ध एव वर्ण्यते, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्य-यनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं-उपक्रमो निक्षेपः अनुगमो नय इति, 'क्रमु पादविक्षेपे' उपक्रमणमुपक्रमः उपक्रम्यते वाऽनेनेत्युपक्रमः, तथा निक्षेपः 'क्षिपू प्रेरणे' निक्षेपणं निक्षेपः, तथा अनुगमः 'गमॄ सृ पृ गतौ' अनुगमनमनुगमः, अनुगम्यते वाऽनेनेत्यनुगमः, अनुग-म्यते वाऽनेने(स्मादि)त्यनुगमः, तथा नयः 'णीञ् प्रापणे' नयनं नयः, नीयते वाऽनेनेति नयः, उपक्रमो णामादिकः षड्विधः, भावो द्विविधः-गुरुभावोपक्रमः शास्त्रोपक्रमश्च, अयं गुरुभावोपक्रमः—जो जेण पगारेणं तुस्सति करेति णयाणुवित्तीहिं । आराहणाए मग्गो सोच्चिय अब्भाहतो तस्य ॥ १ ॥ शास्त्रोपक्रमः आनुपूर्व्यादिकः षड्विधः, स च पूर्वोक्त एवमनुयोगद्वारे, निक्षेपस्त्रिविधः, ||२३३|| ओघनिष्पन्नः नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति, ओघनिष्पन्नः पूर्वोक्तः, नामनिष्पन्ननिक्षेपः सभिक्षुकामिति भिक्षुशब्दस्य निक्षेपः— 'निक्खेवो भिक्खुंमी चउव्विहो०'॥३७३-४१३॥गाथा, इत्यादि, नामस्थापने पूर्ववत्. द्रव्यभिक्षुर्द्विविधः—आगमनोआगमाभ्यां,

संबन्धः

अध्ययनं -१४- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१५- "सभिक्षु" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४९४-५०९|| दीप अनुक्रम [४९५-५१०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १५ सभिक्षु० ॥२३४॥

भिक्षु निक्षेपाः

आगमतः पूर्वोक्तः, नोआगमतस्त्रिविधः-ज्ञशरीर० भव्यशरीर० व्यतिरिक्तो, व्यतिरिक्तश्च निह्नवादि, मोक्षाधिकारशून्यत्वाद्, द्रव्यं कुकर्म्मग्रहस्तं भिनत्ति असौ भावभिक्षुः, अथवा भेत्ता भेदनं भेत्तव्यं वेति द्रव्ये भावे च, द्रव्ये भेत्ता रहकारादि भेदनं परश्वादि भेत्तव्यं काष्ठादि, भावतः भेत्ता साधुः भेदनं तपादि भेत्तव्यानि अमूनि रागद्वेषौ दण्डास्त्रयः गौरवास्त्रयः विकथाश्चत्वारः (तस्रः) संज्ञाश्चत्वारः (तस्रः) कषायाश्चत्वारः प्रमादाः पंच एवमादीनि भेत्तव्यानि, भिन्दं तु भावभिक्षुर्भवति, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः। इदानीं सूत्रालापकनिष्पन्नो निक्षेपः(स च) अवसरप्राप्तोऽपि न निक्षिप्यते, कुतः?, सूत्राभावात्, असति सूत्रे कस्यालापकाः?, सूत्रं सूत्रानुगमे, सूत्रमुच्चारणीयं, सोऽनुगमो द्विविधः-सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च, सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं अस्खलितादि, निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः-निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमः उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमश्चेति, निक्षेपनिर्युक्त्यनुगतैव नामस्थापनादिप्रपञ्चेन, उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः इमाहिं दोहिं मूलदारगाहाहिं अणुगंतव्वो 'उद्देस०'॥ गाथा,'किं कतिविधं०'॥ गाथा, एवमवस्थिते सूत्रस्पर्शिकादि चतुष्टयं युगपद्गच्छन्ति, तथा चोक्तं-'एत्थ य सुत्ताणुगमो सुत्तालावगकतो य निक्खेवो। सुत्तफासियणिज्जुत्ती णया य पतिसुत्तमायोज्या ॥ १ ॥' सूत्रानुगमे सूत्रं, तच्चेदं-'मोणं चरिस्सामि०' ॥ ४९४ ॥ वृत्तं, मन्यते तिकालवस्थितं जगदिति मुनिः, मुनिभावो मौनं, चरिस्सामो 'चर गतिभक्षणयोः' मुनित्वमाचरिष्यामः, 'समिच्च धम्मं' सं एत्य समेत्य 'इण् गतौ' धर्म्मं प्राप्य इत्यर्थः श्रुतधर्मं, चारित्रधर्मं चरिस्सामो, ज्ञानदर्शनचारित्रतपोभिः 'उज्जुकडे' ऋजुभावं कृत्वा 'सोधी उज्जुयभावस्से'ति, 'णियाणाछिण्णे'त्ति 'दाव् लवने' प्राणातिपातादिबन्धकरणरहितः छिन्नबन्धनोऽभिधीयते, अप्रमत्तसंयत इत्यर्थः, 'संथवं जहिज्ज' संस्तवो द्विविधः-संवाससंस्तवः वचनसंस्तवश्च, अशोभनैः सह संवासः, वचनसंस्तवश्च तेषा- ॥२३४॥

मेव यः तत्परित्यजेत्, 'अकामकामे' अकामः-अपगतकामः, कामो द्विविधः-इच्छाकामो मदनकामश्च, अपगतकामस्य या इच्छा तां कामयति, सा च कामेच्छा मोक्षं कामयतीति, प्रार्थयतीत्यर्थः, 'अण्णायएसी परिव्वए' अज्ञातैषी, अज्ञातमज्ञातेन एषते-भिक्षते असौ अज्ञातैषी, निश्रादिरहित इत्यर्थः, परिव्रजेत्-समन्ताद् व्रजेत्, सर्वप्रकारं सर्वभावेनेत्यर्थः, य एवंगुणाविशिष्टः स भिक्षुर्भवति। 'राओवरयं चरिज्ज लाढे०'।।४९५-४३०।। इत्यादि, रात्रादुपरतं चरेत्, किमुक्तं भवति?, रात्रौ न भुङ्क्ते, रात्रौ गतादि क्रियां न कुर्यात्, विरते विरतीभावात्, विरतिग्रहणाच्चारित्रं गृह्यते, पंच महाव्रतादिकं कर्म्मचयरिक्तीकरणे चारित्रं, वेदं वेत्तीति वेदवित्, वेदः श्रुतज्ञानं, संपन्नो भवेदित्यर्थः, अत्ता रक्षितो चारित्रात्मरक्षितो भवेत्, प्राज्ञो-विदुः, संपन्नो आयोपाय-विधिज्ञो भवेत्, उत्सर्गापवादद्रव्याद्यापदादिको य उपायः, 'अभिभूय परीसहान्' अभिभूय तिरस्कृत्य, 'सव्वदंसी' आत्मवत्सर्वदर्शी भवेत्, 'जे कम्हिवि न मुच्छिए' यः कस्मिँश्चिदपि न मूर्छितो भवति, न रागं गच्छतीत्यर्थः, प्रतिपक्षेण द्वेषं न गच्छतीति स भिक्षुरिति।।'अक्कोसवहं०'।।४९६-४२०।। इत्यादि, एवं वक्ष्यमाणेषु रागद्वेषविप्रमुक्तेन भवितव्यं, यदि कश्चिदाक्रोशयति बन्धं वा करोति, तद्विचिंतयित्वा आलोच्य धीरो भवेत्, न क्षोभः करणीयः, कथम्?- आक्रोशति मां बालः तत्र लाभ एव मन्तव्यः, दिष्टया वा यद् मां न ताडयति, ताडयत्यपि बाले लाभ एव मन्तव्यः, दिष्ट्या च यन्मां जीवितान्न व्यपरोपयति, एवमादि, तथा च "आक्रुष्टेन मतिमता तत्त्वार्थविचारणे मतिः कार्या। यदि सत्यं कः कोपः? स्यादनृतं किन्नु कोपेन ?।। १ ।।" मुनिर्भूत्वा गच्छेत्, ज्ञानी भूत्वा संयमं अव्यग्रमनाः चरेत्, यापयन्नित्यमात्मगुप्तः, सचारित्रात्मको गुप्तो भवेत् इति, अव्यग्रमनसा असंप्रहृष्टेन च भवितव्यं, कथं?, दुःखे समुत्पन्ने न शोकार्त्तेन भवितव्यं, सुखे च समुत्पन्ने न प्रहृष्टेन भवितव्यं, एवं सर्वमपि ||२३६||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४९४-५०९||

दीप अनुक्रम [४९५-५१०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १५ सभिक्षु ||२३६||

भिक्षु-लक्षणं

रागद्वेषात्मकं यः सहते क्षमते स भिक्षुर्भवति । 'पंतं सयणासणं०'||४९७-४२०||इत्यादि, एषु च कारणेषु अरक्तद्विष्टेन भवितव्यं, पंतं-निकृष्टं अशोभनं शयनासनानि भजित्वा-सेवित्वा 'भज् सेवायां' शीतोष्णं च सेवित्वा, नानाप्रकारं च दंसमसकादि प्राप्य, नानाप्रकारं मत्कुणपिशुकषट्पदादि, अव्यग्रमनसा असंप्रहृष्टेन भवितव्यं, रागद्वेषविप्रमुक्तेनेत्यर्थः, य एतत् कृत्स्नं परीसहजातं सहते स भिक्षुर्भवति||'नो सक्कियमिच्छइ०'||४९८-४२०|| इत्यादि, एषु च सत्कृतादिषु रागो न करणीयः, यदि कश्चित्सत्कारं करोति, अभ्युत्थानादिकं, न तदिच्छेत्-न प्रार्थयेत्, शोभनो कारः सत्कारः, स च न पूजामिच्छति, वस्त्रादिकं, न वन्दनकमिच्छति, किमुक्तं भवति ?-एषु क्रियमाणेष्वपि रागं न गच्छतीत्यर्थः, सः संयतः सुव्रतस्तपस्वी च भवति, यश्च ज्ञानादिसहितः चारित्रात्मगवेषी च स भिक्षुर्भवति||'जेण पुणो जहाइ जीवियं०' ||४९९-४२०|| इत्यादि, 'ओहांक् त्यागे' येन प्रकारेण संयमजीवितं परित्यजति तन्न करोति, येन मोहनीयः कर्म बध्नाति तच्च न करोति, कृत्स्नं-सम्पूर्णं, कृष्णं च अशुभमित्यर्थः, 'नियच्छति' प्राप्नोति बध्नातीत्यर्थः, तच्च न, जहाति, नरनारीप्रहाणार्थं परित्यागः, यच्च कौतुकं न गच्छति स भिक्षुर्भवति । 'छिन्नं सरं भोमं०'||५००-४२०|| इत्यादि, एतानि च जानन्नपि न प्रकाशयेत्, छिन्नमिति वस्त्रच्छेदः काष्ठादीनां वा छेदान्, शुभाशुभं न प्रकाशयेत्, अधिकरणमितिकृत्वा, एवं सर्वत्र अप्रकाशता, पुरुषः दुंदुभिस्वरो काकस्वरो वा एवमादिस्वरव्याकरणं, भौमादित्वात् भौमः, अकाले जं पुप्फफलं, स्थिराणां चलनं, प्रतिमानां जल्पनादि, अन्तरिक्षादिग्दाहपांशुवृष्ट्यादयः, ||२३६|| दिव्या ग्रहयुद्धादि, 'सुविणं' स्वप्नलक्षणं, तथा पुरुषस्त्रीहस्त्यश्वादिलक्षणं, दण्डो यो यस्मिन् अपराधे भवति, 'वत्थुविज्जा' वास्तुलक्षणं, पुरुषादीनां अंगविकारः, कस्य कीदृशं अंगं शोभनं भवति ?, बहु ऋषभगन्धारादीनां स्वराणां विजयः-अभ्यास

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४९४-५०९||

दीप अनुक्रम [४९५-५१०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १५ सभिक्षु ॥२३७॥

भिक्षु-लक्षणं

इत्यर्थः, एवमादिभिर्विद्यादिभिर्यो न जीवति स भिक्षुर्भवति। 'मंतं मूलं०'॥५०२४२०॥ इत्यादि, मन्त्रान् साधुकरणान् ज्ञात्वापि न प्रकाशयेत्, एवं मूलानि, तथा विविधान् वैद्यचिन्तान् वमनविरेचनधूमनेत्रस्नात्रादिकान् न प्रकाशयेत्, तथा आतुरशरणं विचिकित्सार्थं न कुर्यात्, तं जाणणापरिण्णाए परिजाणिऊं अणंतरं पच्चक्खाणपरिन्नाए प्रत्याख्यानं करोति स भिक्षुर्भवति। 'खत्तियगण०'॥५०३-४२०॥इत्यादि, क्षत्रिया–राजानः,गणा–मल्लगणादयः,'उग्गा'दण्डपाशिकादयः,राजपुत्रा ब्राह्मणभोगिका, विविधाश्च शिल्पिनः, एतेषां निःशीलानां प्रशंसां पूजनं वा न करोति स भिक्षुर्भवति। 'गिहिणो०' ॥ ५०३ ॥ इत्यादि, गृहस्था ये प्रव्रजितेन दृष्टाः अप्रव्रजितेन वा, तेषां निःशीलानामिहलोकफलार्थं यः संस्तवं न करोति स भिक्षुर्भवति। 'सयणासण०' ॥५०४-४२०॥इत्यादि, शयनासनपानभोजनानि, परकीयं यदि तं परो न ददाति प्रतिषेधयति वा, प्रतिषेधितो वा निर्वृत्तः सन् यः प्रद्वेषं न करोति स भिक्षुर्भवति।'जं किंचाहार०'॥५०५-४२०॥इत्यादि, यत्किंचिदाहारं परतो लब्ध्वा यस्तेन आचार्योपाध्यायादि त्रिविधेन नानुकम्पति, 'जइ मे अनुग्गहं कुज्जा, साधू होज्जामि तारिओ' यदि मनसा एवं चिंतयति, वाचा सर्वादरेण यथापरिपाट्या निमन्त्रयति, कायेन च परार्थेन ददाति स भिक्षुर्भवति, यः पुनर्मनसा वचसा कायेन च सुसंवृत्तः स भिक्षुर्भवति। 'आयामगं चेव०' ॥५०६-४२०॥ इत्यादि, आयामादि प्रसिद्धमेव नीरसं पिंडं पानकं वा लब्ध्वा'णो हीलये'न द्वेषं गच्छेत्, प्रान्तकुलादि च यः परिव्रजाति-पर्यटति स भिक्षुर्भवति। 'सद्दा विविधा०' ॥ ५०७ ॥ इत्यादि, शब्दा विविधा नानाप्रकारा लोके भवन्ति, दिव्या मानुष्यकाः तैरश्चाश्च भीमा भयानकाः भयभैरवाः-सुतरां उत्त्रासनका ओराला-महांता उपसर्गादिषु भवंति यस्तान् श्रुत्वा सतेन न बीभेति स भिक्षुर्भवति। 'वायं विविहं०' ॥५०८-४२०॥ इत्यादि, वादं विविधं-नानाप्रकारं समिच्च सं एत्य-ज्ञात्वा

॥२३७॥

प्रत सूत्रांक [१] गाथा ||४९४-५०९||

दीप अनुक्रम [४९५-५१०]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १५ सभिक्षु० ||२३८||

भिक्षु लक्षणं

'लोए' लोकप्रवादं श्रुत्वा 'सहिते' सहितो ज्ञानदर्शनचारित्रे खेयाणुगतो-खेदेन अनुगतो, खेदो विनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायादिषु, प्रज्ञश्च एतेष्वेव कोवियप्पा-कोविदात्मा ज्ञातव्येषु सर्वेषु, परिचेष्टित इत्यर्थः, प्राज्ञोऽभिभूय परीषहान्, आत्मवत् सर्वदर्शी, उपशान्तो विहेडनं प्रपञ्चनं, वाचा कायेन च परापवाद इत्यर्थः, अनपवादी पूर्वोक्तगुणायुक्तश्च यः असौ भिक्षुर्भवति। 'असिप्पजीवी०' ||५०९-४२०|| इत्यादि, न शिल्पेन जीवति, नास्य गृहं विद्यत इत्यगृहः, अमित्रः जितेन्द्रियः बाह्याभ्यन्तरसंगविप्रमुक्तः अणु-स्तोकं अल्पं, अल्पकषायी, लघूनि-निःसाराणि निष्पावादीनि तान्यपि अल्पानि भक्षते, शरीरगृहमपि त्यक्त्वा एके रागद्वेषरहिता, एभिः गुणैर्युक्तो यः स भिक्षुर्भवति। इदानीं नयाः–णीञ् प्रापणे, नयन्तीति नयाः, नयंति गमयंति प्राप्नुवंति वस्तु ये ते नयाः, अथवा द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ, अथवा निश्चयव्यवहारौ, अथवा सप्त नयाः, अथवा पंच नयाः, एकैकः शतभेदः, एवं सप्त पंच वा नयनशतानि भवन्ति, अथवा ज्ञाननयश्चरणनयश्च, एवमेते आत्मीयेनाभिप्रायेण वस्तुगमका अस्मिन्नध्ययने भवंतीति। अयं ज्ञाननयः 'णायंमि गिण्हियव्वे०' ॥ गाहा, अयं पुनश्चरणनयः 'सव्वेसिंपि नयाणं'॥ गाथा, इति परिसमाप्तौ उपप्रदर्शने, बेमि-ब्रवीमि आचार्योपदेशात्, न स्वमनीषिकया ॥ पञ्चदशमध्ययनं समाप्तम् ॥

उक्तं पञ्चदशमध्ययनं, इदाणिं षोडशमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, सम्बन्धो वक्तव्यः, स सम्बन्धस्त्रिविधः, तद्यथा–'सूत्रप्रकरणाध्याय' इत्यादि, सूत्रप्रकरणसम्बन्धौ उक्तौ, अध्यायसम्बन्धः भिक्षुगुणाः पञ्चदशेभ्यो वर्णिताः, भिक्षुश्च ब्रह्मचर्यव्यवस्थितो भवति, इह च षोडशेऽध्ययने ब्रह्मचर्यगुप्तयो वक्ष्यन्ति, अनेन सम्बन्धेन आयातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्फण्णे निक्षेपे दशबंभचेरसमाहिट्ठाणमिति णाम, दशशब्दस्य ब्रह्मशब्दस्य चरणशब्दस्य समाधिशब्दस्य स्था- ||२३८||

अध्ययनं -१५- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१६- "ब्रह्मचर्यसमाधि" आरभ्यते

एकदशक ब्रह्मसमाधि निक्षेपाः

नशब्दस्य च निक्षेपः कर्त्तव्यः,दश एकेन विना न भवन्तीति एकस्य तावन्निक्षेपः क्रियते,स सप्तप्रकारः'णामं ठवणा०'॥३७९-४२१॥ इत्यादि, णामैककं देवदत्तादि, स्थापनैककं द्विविधं-सद्भावे असद्भावे च, सद्भावस्थापनैककं लेप्यहस्त्यादि, असद्भावे अक्खादि, द्रव्यैककं सचित्तादि, मातृकापदैककं'उप्पण्णेति वा०'संग्रहैककं ग्रामादि, पर्यायैककं एको जीवपर्यायो नारकादि, अजीवपर्यायो वा गन्धादि, भावैककं औदयिको भाव इति । इदानीं दशशब्दस्य निक्षेपः-'दससु अ छक्को०'॥३८०-४२२॥इत्यादि,नामदशा दश नामानि देवदत्तयज्ञदत्तादीनि,स्थापनादश स्थापनाथा(दशा)नां स्थापना, सद्भावे असद्भावे च, द्रव्यदश दश सचित्तादीनि द्रव्याणि, क्षेत्रदश दश आकाशप्रदेशा दशसु वा क्षेत्रेषु यद् द्रव्यमवगाढं,कालदश दश समया दशसमयस्थितिकं वा यद् द्रव्यं,भावदशा पर्यायद्रयं(दशकं),जीवपर्याया अजीवपर्यायाश्च,देशकालपर्याया,(क्रोधादयः)नरकादिगतयश्चत्वारः, साकारोपयोगोऽनाकारोपयोगश्च,अमी जीवपर्याया दश,अजीवपर्याया रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाः शुभा शुभाश्च पर्यायाः॥'बंभंमी उ चउक्कं०'॥३८१-४२२॥इत्यादि,नामब्रह्म ब्रह्म इति यस्य नाम, ठवणाबंभं वण्णुप्पत्ती जहा बंभचेरेसु, द्रव्यब्रह्म अज्ञानीनां बस्तिनिग्रहः, मोक्षाधिकारशून्यत्वात्, भावेऽपि बस्तिनिग्रहः एव ब्रह्मचर्यमभिधीयते ज्ञानिनां मोक्षपथास्थितानां, तस्य रक्षणार्थममूनि वसत्यादीनि स्थानानि रक्षणीयानि सूत्राभिहितानि'चरणे छक्को०' ॥३८३-४२२॥ इत्यादि, चरणे षट्को निक्षेपः, नामस्थापने पूर्ववत्, द्रव्यचरणं द्विविधं-गतौ भक्षणे च वर्त्तते, गतौ भूम्यां गच्छति, चरणे मोदकादीन् भक्षयति, क्षेत्रचरणं यस्मिन् क्षेत्रे गच्छति भक्षयति वा, यस्मिन् वा क्षेत्रे चरणं व्यावर्ण्यते, एवं कालचरणमपि, भावचरणं गुणानां चरणं ।'समाधीए उ चउक्को०'॥३८४-४२२॥इत्यादि,समाधिशब्दस्य चतुर्धा निक्षेपः, नामस्थापने पूर्ववत्, द्रव्यसमाधिः येन द्रव्येण समाधिः उत्पद्यते, भावसमाधिः ज्ञानदर्शनचारित्रतपआत्मिका, स्थाप-

॥२३९॥

प्रत सूत्रांक [२-१२] गाथा ||५१०-५२६|| दीप अनुक्रम [५११-५३८]

स्थान-निक्षेपः

ना(स्थान)शब्दस्य पञ्चदशप्रकारो निक्षेपः'नामं ठवणा०'॥३८५-४२२॥इत्यादि,नामस्थापना यो यस्य नाम्नः अर्हो, योग्य इत्यर्थः, स्थापनस्थापनं यो यस्य स्थापनार्हो, यथाऽऽचार्यगुणोपेत आचार्यः स्थाप्यते, द्रव्यस्थानं सर्वद्रव्याणां स्थानमाकाशः, क्षेत्रस्थानं क्षेत्रमुखमाकाशमुख्यं तस्य यच्चात्मस्थानं, 'अद्धा' इति कालस्याख्या तस्य स्थानं समयक्षेत्रं अर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्ररूपं, ऊर्ध्वस्थानं साधोः कायोत्सर्गस्थानं, 'उपरतिस्थानं' उपरमणमुपरतिः, प्राणातिपातादीनां विरतिरित्यर्थः, वसतिस्थानं साधोः स्थानं, स्त्रीपशुपण्डकविवर्जिता वसतिः, संयमस्थानं संयमाध्यवसायविशेषाः, प्रग्रहस्थानं धनुषः खड्गस्य वा ग्रहणस्थानं, समपदं वैशाखमित्यादि, अचलस्थानं यस्मिन् स्थाने स्थितस्य चलनं न भवति, यथा सिद्धस्य, गणनास्थानं अक्षं(एकं)दश शतं सहस्रमित्यादि, संधनास्थानं अयं मूलेन सह संबध्यते वस्तुनि, न अग्रं, अग्रेण सह, मूलं वा मूलेन सह संबध्यते, भावस्थानं, सर्वेषां भावानामौदयिकादीनां जीवे स्थानं, आश्रय इत्यर्थः ॥ उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः । इदानीं सूत्रालापकस्य विषयः, स च अवसरप्राप्तोऽपि न निक्षिप्यते, कुतः ?, सूत्राभावात्, असति च सूत्रे कस्य आलापकाः ?, सूत्रं च सूत्रानुगमे भविष्यति, सोऽनुगमो द्विविधः- सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च, निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः-निक्षेपनिर्युक्तिः उपोद्घातनिर्युक्तिः सूत्रस्पार्शिकनिर्युक्तिश्च, निक्षेपनिर्युक्तिः अनुगतैव, उपोद्घातनिर्युक्तिः इमाहिं दोहिं मूलदारगाहाहिं अणुगंतव्वा, तंजहा-"उद्देसे०"॥गाहा॥"किं कतिविहं०"॥ गाहा, एवं सूत्रानुगमो सूत्रालापकनिष्पन्नो निक्खेवो सूत्रस्पार्शिकनिर्युक्तिर्नयाश्च युगपद्गच्छन्ति, तथा चोक्तं-'एत्थ य सुत्ताणुगमो सुत्तालावयकयो य निक्खेवो । सुत्तप्फासियनिज्जुत्ती नया य पतिसुत्तमायोज्जा ॥ १ ॥' सूत्राणुगमे सूत्रमुच्चारणीयं, तच्चेदं- **"सुअं मे आउसं! तेण भगवया एवमक्खायं० (सूत्रं२-४४१)** ॥ श्रुतं मया हे आयुष्मन्! तेन भगवता एवमाख्यातं, हे आयुष्मन्!

||२४०||

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १६ ब्रह्मचर्या० ॥२४१॥

स्थान-निक्षेपः

इति शिष्यामन्त्रणं, सत्स्वप्यन्येषु जात्यादिषु आमन्त्रणेषु आयुरेव गरीयः, कुतः ?, आयुषि सति सर्वाण्येव जात्यादीनि भवंति, के एवमाह--सुधर्मास्वामी, जम्बुनामानं शिष्यमाश्रित्य ब्रवीति, यथा मया भगवतः समीपे श्रुतं, अनेन शिष्याचार्यप्रबन्धः प्रदर्शितो भवति, अथवा श्रुतं मया आयुषि सति भगवता, जीवता भगवता एवमाख्यातमितियावत्, अनेन क्षणभङ्गनिरासः कृतो भवति, अथवा श्रुतं मया आवसताऽनु, समीपे निवसता इत्यर्थः, अनेन गुरुकुलवासः ख्यापितो भवति, नित्यं गुरुकुलवासिना भवितव्यमिति, अथवा श्रुतं मया आमृषता, गुरुपादाविति वाक्यशेषः, विनयेन मया लब्धं इतियावत्, अनेन विनयमूलो धर्म्मः प्रदर्शितो भवति, 'इह खलु थेरेहिं' इत्यादि, इह अस्मिन् प्रवचने, खलु अवधारणे, इहैव नान्यस्मिन् प्रवचने, धर्म्मे स्थिरीकरणात् स्थविराः तैर्भगवद्भिः स्थविरैः ऐश्वर्यादिसम्पदुपेतैर्दश ब्रह्मचर्यस्थानानि, प्रज्ञप्तानि कथितानीत्यर्थः, यानि भिक्षुः भिक्षुशब्दश्च पूर्वोक्तः, श्रुत्वा निशम्य, अवधार्येत्यर्थः, 'संजमबहुले' संयमः-पृथिवीकायादिकः संवरः-पंच महाव्रतानि समाधिः-ज्ञानादिकः, बहुलशब्दः पुनः पुनः करोत्यर्थः, एतानि ब्रह्मचर्यावस्थितः सर्वाण्येवाराधयति, तथा च यः गुप्तो मनोवाक्कायैः, तथा इन्द्रियैः ब्रह्मचर्ये च गुप्तः सदा अप्रमत्तो विहरेत्, सः अमूनि स्थानानि आराधयतीति । इदानीं शिष्यः पृच्छति--कतराणि तानि दश ब्रह्मचर्यस्थानानि०?॥ (सूत्रं३-४२४) ॥ आचार्यो निर्वचनं करोति--अमूनि तानि, वक्ष्यमाणानि, तंजहा--'नो इत्थीपसुपंडग' इत्यादि, 'न' इति प्रतिषेधे, स्त्रियः प्रसिद्धाः, पशवः गावीमहिषीअश्वगर्दभादि, पण्डका-नपुंसकाः, संसक्तानि-आकीर्णानि तैः, शयनानि स्थानानि च, एतानि न सेवते यः स निर्ग्रन्थो भवति,'तं कथ'मित्यादि, तत्कथमिति चेत्(कथं) एतानि स्थानानि सेवमानो न निर्ग्रन्थो भवति ?, उच्यते--एतानि स्थानानि सेवमानस्य ब्रह्मचर्ये शंका भवति, सेवामि न सेवामीति शङ्कामात्रं,

॥२४१॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [२-१२] गाथा ||५१०-५२६|| दीप अनुक्रम [५११-५३८]

स्थान-निक्षेपः

कांक्षा कतमां सेवामीति, किं दिव्या मानुष्याः तिरिश्चीर्वा कांक्षामात्रं, विचिकित्सा मतिविप्लुतिः धर्म्मज्ञस्य, किं जायते सेवमानस्य?, कर्म बध्यते, असेवमानस्य न बध्यते, ईदृशी विचिकित्सा समुत्पद्यते, भेदं संयमाल्लभते, चारित्रखण्डनमित्यर्थः, उन्मादं वाऽऽप्नुयात्, ग्रहगृहीत एव भवेत्, केवलिपन्नत्ताओ वा धर्माद् भ्रस्येत, धर्म्मो द्विविधः-श्रुतधर्मश्चारित्रधर्मश्च, अस्माद् द्विविधादपि धर्माद् भ्रस्यते, तस्माद्विदेत् दोषजालं, ज्ञात्वा-णो इत्थीपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेविता भवति से णिग्गंथे, अयमुपनयः॥ तहा-'नो इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ से निग्गंथे भवति०'। (सूत्रं ४-४२५)। यः स्त्रीणां कथामपि न कथयति, सा च इत्थीणं कथा चतुर्विधा भवति, तंजहा--जातिकहा कुल० रूव० णेवत्थकहा, जातिकहा बंभणी खत्तिणी सोभणा असोभणा वा, कुलकथा उग्गादि दमिला मरहट्टिका, णेवत्थं जं जंमि देसे सोभणं वा असोभणं वा तं कहयति, तत्कथमिति चेत् यतः तै सार्द्धं निवसतः शयनासनस्थानानि सेविनः दोषजालं भवति। तथा कथामपि तथा कथयति तदेव दोषजालं सविशेषतरं भवति, तस्मात् कथापि स्त्रीणां न कथनीया इति। 'नो इत्थीहिं सद्धिं संनिसिज्जागए विहरेत्ता भवति०' (सूत्रं ५)॥ यः स्त्रीभिः सार्द्धं निसिज्जागतो न तिष्ठति, तत्कथमिति चेत्? यथा कथां कुर्वतः दोपजालं भवति तथा नैषद्यागतस्यापि, तस्मात् निषद्यागतेनापि स्त्रीभिः सार्द्धं न स्थातव्यमिति। इन्द्रियाण्यपि न निरीक्षितव्यानि तासां, कस्मात्?, दोषजालभयात्, 'एवं नो इत्थीणं०'॥(सूत्रं ७-४२६!) कुड्डंतरे वा कुंचिदादिसद्दं सुणेत्ता(न)भवति स निर्ग्रन्थो, पक्केष्टकादि कुड्यं, केतुगादि भित्ती, वस्त्रादि दुष्यं, कुपितशब्दं रत इत्यर्थः, शेषशब्दा गतार्थाः, एवमादयः शब्दाः स्त्रीणां न श्रोतव्याः, पूर्वोक्तदोषजालभयात्, एवं पूर्वरतक्रीडितानि न स्मर्त्तव्यानि, पूर्वदोषजालभयात्, एवं नो इत्थीणं कुड्डंतरे ठातितव्वं, पूर्वोक्तदोषजालभयादेव, एवं प्रणीतं रसभोजनं न भक्षयेत्, दोषजालभयात्, प्रणीतं- ||२४२||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [२-१२] गाथा ||५१०-५२६||

दीप अनुक्रम [५११-५३८]

गलत्स्नेहं तैलघृतादिभिः। तथा अतिमात्रं यावत् आहारो नाभ्यवहरणीयः, अतिमात्राया अप्रणीतस्य कस्मादभ्यवहरणं न क्रियते ?, उच्यते--पूर्वोक्तदोषजालभयादेव, तथा विभूषापि शरीरवस्त्रादिषु न करणीया, किमिति ?, विभूषितशरीराः स्त्रीणां अभिलषणीया भवंति ततस्तदेव दोषजालमाप्नोति। तथा--शब्दरूपरसगन्धस्पर्शेषु यः सक्तिं न करोति स निर्ग्रन्थो भवति, कथमिति चेत् ?, उच्यते--शब्दादिषु प्रसक्तस्य तदेव पूर्वोक्तं दोषजालमापद्यते। इदानीं एतदेवार्थः श्लोकैः प्रदर्शयति ॥ नयाः पूर्ववत् ॥ उक्तं बंभचेरसमाहिठाणं षोडशमध्ययनमिति ॥

इदाणिं सप्तदशं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, सम्बन्धो वक्तव्यः, स च सम्बन्धः त्रिविधः, तद्यथा--'सूत्रप्रकरणाध्यायः' इत्यादि, सूत्रप्रकरणसम्बन्धौ ऊह्यौ, अध्यायसम्बन्धः षोडशमे दश ब्रह्मस्थानानि वर्णितानि तैः सम्प्रयुक्तः सुश्रमणो भवति, एवं श्रमणेन कर्त्तव्यमिति, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्यते,नामनिष्फण्णे निक्षेपे पावसमणिज्जंति पापशब्दो निक्षेप्तव्यः, श्रमणशब्दश्च,'पावे छक्क' मित्यादि(३८६-४३१) पापशब्दस्य षट्को निक्षेपः, नामादि, नामस्थापने पूर्ववत्, द्रव्यपापं आगमनोआगमाभ्यां, आगमतः पापपदार्थज्ञः अनुपयुक्तः, नोआगमतः ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तः सचित्तादि, सचित्तं द्विपदादि, द्विपदानां पापमनुष्यादि, पापः पापसमाचारः, अशोभनसमाचार इत्यर्थः, एवं सर्वत्र पापं अशोभनमभिधीयते, चतुष्पदानां शृगालादि, अपदानां विषवृक्षकिंपाकफलादि, अचित्तानि एतान्येव जीवरहितानि, मिश्राणि एषामेव भागो जीवसहितः भागो जीवरहितमिति, क्षेत्रपापं नरकानि, यस्मिन् वा क्षेत्रे नरकादिकं वर्ण्यते, कालपापं अतिदुस्समादि, यस्मिन् वा काले पापं वर्ण्यते। 'भावे पावं इणमो०' ॥ ३८७-४३२ ॥ इत्यादि, भावपापं इमं प्राणातिपातः मृषावादः अदत्तादानं

अध्ययनं -१६- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१७- "पापश्रमणिय" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||५२७-५४७|| दीप अनुक्रम [५३९-५५९]

श्रमण-निक्षेपः

अब्रह्म परिग्रहः, क्रियते, तानि च शब्दादीनि पापस्थानानि अभिधीयंते, कारणे कार्योपचारः, तैः पापं बध्यते इति, ततस्तानि पापस्थानानि अभिधीयंते, यानि च सूत्रोक्तानीति, इदानीं श्रमणशब्दः—'**समणे चउक्कनिक्खेवो**०' ॥ ३८८-४३२ ॥ इत्यादि, तस्य चतुष्को निक्षेपः, नामादि, नामस्थापने पूर्ववत्, द्रव्यश्रमणः निह्नवादि, भावश्रमणो ज्ञानी चरित्रयुक्तश्च, '**जे भावा**०' ॥ ३८९-४३६ ॥ इत्यादि, '**एयाइं पावाइं**०' ॥ ३९१-४३६ ॥ इत्यादि, एतद्गाथाद्वयं गतार्थं, ये भावाश्चाशोभना इहाध्ययने वर्णिताः तान् सेवमानो पापश्रमणोऽभिधीयते, उक्तो नामनिष्फण्णो निक्षेपः । इदानीं सूत्रालापकस्य विषयो, अस्माद् यावत् सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं, एतत् पूर्ववद् द्रष्टव्यं, सूत्रं चेदं–'जे केइ उ (मे) पव्वइए०' ॥ ५२७-४३६ ॥ इत्यादि, यः कश्चित् प्रव्रजितः अनिर्दिष्टस्वरूपः तस्येदं विशेषणं, निर्ग्रन्थो बाह्याभ्यन्तरग्रन्थविप्रमुक्तः, बाह्यो ग्रन्थः द्विपदचतुष्पदहिरण्यसुवर्णादिकः, अभ्यन्तरः क्रोधादि, श्रमणधर्म्मं श्रुत्वा '**विनयोपपन्नो**' ज्ञानदर्शनचारित्रउपचारविनयसम्पन्नो इत्यर्थः, 'सुदुर्लभं लभेज्जा (लहिउं) बोधिलाभं' संवेगवैराग्यसंम्पन्नः संयमं प्रति यतितुमारब्धः, स एवंगुणविशिष्टोऽपि भूत्वा चरित्रावरणीयकर्मोदयात् सीदितुमारब्धः यथासुखं विहरति, तत्र चोदितः--किं स्वाध्यायादि न करोति ?, पश्चात् सीदतां यानि वचनानि तान्यसौ वक्तुमारब्धः '**सिज्जा दढा**०' ॥५२८-४३६॥ इत्यादि, शय्या-वसतिः, सा च मे दृढा निरूप्यते, तथा निरसं पावरणाणि च विद्यन्ते, अन्नपानादि च लभ्यते, न कश्चिदतिशयो विद्यते, न च बहुश्रुताल्पश्रुतयोः कश्चिद्विशेषः, ततः किं मम गलतालुविशोषणेण, निर्धर्मवचनमेतत्, पापश्रमणोऽपि स एव अभिधीयते, एतानि च पापानि कुर्वन् पापश्रमणोऽभिधीयते । 'जे केइ उ' ॥५२९-४३६॥ इत्यादि,'निद्राशीलः'निद्रास्वभावः, निद्रां प्रकामशः सेवते, भुक्त्वा पीत्वा च निरपेक्षं स्वपिति, न स्वा-

||२४४||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||५२७-५४७||

दीप अनुक्रम [५३९-५५९]

ध्यायादि करोति, असौ निद्राप्रमादे वर्त्तमानः पापश्रमणो भवति।'आयरिय०'||५३०-४३६||इत्यादि, श्रुतं विनयं च यैः शिक्षापितः तानेव खिंसति--परिभवति बालः-अज्ञः,असावपि पापो भवतीति।'आयरिय०'||५३१-४३६||इत्यादि, तथा आचार्योपाध्यायानां सम्यक् प्रतिपत्तिं न करोति, यश्च न सम्यक् प्रतिपूजयति, स्तब्धश्च भवति,असौ पापो भवति।'संमद्दमाणे०'||५६२-४३६|| इत्यादि, तथा जीवेषु च यः निरपेक्षः सन् संमर्दयन् अणाउत्तो गच्छति, पाणिग्रहणाद् द्वीन्द्रियादयः त्रसाः परिगृहीताः, बीजहरितग्रहणात् स्थावराः, यश्च असंयतः संयत इति आत्मानं मन्यते असावपि पापो भवति। 'संथारं०'||५३३-४३६|| इत्यादि, संथारे यत्र सुप्पते, फलगं-शयनं उपविशनं वा, पीढं उपविशनमेव, निषद्या पायकंबलादि वा,एतत् सर्वं अपमज्जित्ता आरुभती,तथा ग्रहणं स्थापनं अपमज्जित्ता यः करोति स पापो भवति।'दवदवस्स०'||५३४-४३६||इत्यादि,निक्कारणमेव त्वरितगामी, युगान्तरप्रलोकी उपयुक्तश्च न भवतीत्यर्थः, तथा प्रमत्तश्च अन्यतरेण प्रमादेन पुनः पुनर्भवति, उल्लंघनं पाटनमन्यतरस्य सत्त्वविशेषस्य रोषाविष्टः करोति, चंडो--रोषणः, नित्यं रोषणशीलश्च यः स पापो भवति।'पडिलेहेइ०'||५३५-४३६||इत्यादि, तथा प्रतिलेखनां च यः करोति प्रमत्तः, अन्यतरेण प्रमादेन, पादकंबलादि च न प्रतिलेखयति, तदपि दोषदुष्टं अणाउत्तं प्रतिलेखयति यः स पापो भवति। 'पडिलेहेइ०' ||५३६|| इत्यादि, तथा प्रतिलेखयति प्रमत्तः, किंचिन्मनोहरकलरिभितादि शब्दं श्रुत्वा गुरुणा णोदितः अज्जो! न वट्टति, ततस्तमेव गुरुं परिभवति यः स पापो भवति।'बहुमाई०' ||५३७-४३६||इत्यादि, बहुमायी-सर्वत्र प्रयोजनेषु मायया व्यवहरति, न सुद्धहृदयः, प्रकर्षेण मुखेन अरिमावहतीति मुखरी, तादृशं भाषते येन सर्व एव अरिर्भवति, तथा स्तब्धः लुब्धश्च, यथा मायया क्रोधेन मानेन लोभेन च न क्वचित् किंचित्करोति निग्रहं, एतदुक्तं भवति-सर्वमेव प्राणातिपातादि करोती-

||२४५||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||५२७-५४७|| दीप अनुक्रम [५३९-५५९]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १७ पापश्रम० ||२४६||

पापश्रमणं लक्षणानि

त्यर्थः, न क्वचित् विवेको विरतिर्वा विद्यते, न च संविभागशीलः, एतद्दोषदुष्टत्वात् न कस्यचित् प्रियः, असौ पापो भवति। 'विवायं च०'||५३८-४३६||इत्यादि, खामितविउसिताइं अधिकरणाइं उदीरेति, अन्येषामुपशान्तानामिति विग्रहः,उदीरयति, अधर्मशीलत्वात्, अदुवा-अथवा स्वपक्षं परपक्षं वा हंति, व्युद्ग्रहे कलहे वा युक्तः--आयुक्तः, विग्रहः सामान्येन कलहो वाचिकः, यः एवंप्रकारः असौ पापो भवति।'अथिरासणे०'||५३९-४३६|| इत्यादि, स्थिरासनो न भवति, निक्कारणमेव इतश्चेतश्च बंभ्रमीति, 'कुच परिस्पन्दने' तास्ताः क्रियाः करोति येन परस्य मोहमुत्पादयति, सुद्धपुढवीए ण निसीएज्जत्ति एतन्न स्मरति, आसनोपविष्टेनोपयुक्तेन भवितव्यं, तच्च तथा न करोति यः स पापो भवति।'ससरक्ख०'||५४०-४३६||इत्यादि, स्वपन् पादौ न प्रमार्जयति,संथारउत्तरपादौ(पट्टौ)न प्रतिलेखयति,संस्तारके च तिष्ठन् उपयुक्तो न भवति,सर्वत्र च तिष्ठता गच्छता च उपयुक्तेन भवितव्यं, यश्चैवं न करोति असौ पापो भवति।'दुद्धदही०' ||५४१-४३६|| इत्यादि, विकृतिं-अशोभनं गतिं नयन्तीति विगतयः, ताश्च क्षीर विगत्यादयः, त्रिगतीमाहारयतः मोहोद्भवो भवति, न च कथंचिदपि अनशनादि तपः करोति असौ पापो भवति। 'अत्थंतंमि य०' ||५४२-४३६||इत्यादि, अस्तमनकालेऽपि आहारं नित्यमाहारयति, यदि नाम कश्चिच्चोदयति किमिति भवं आहारं नित्यमाहारयति न चतुर्थषष्ठादि कदाचिदपि करोति ?, एवं चोदितः प्रतिचोदयति यः स पापो भवति। 'आयरिय०' ||५४३-४३६|| इत्यादि, आचार्यपरित्यागी परपाषंडसेवकः 'गाणंगणिए' गणा गणं संचरति जघन्येन अपूर्णषण्मासे निष्कारणे असौ गाणंगणिकोऽभिधीयते,'दुब्भूते' दुष्प्रा(दुष्टा)र्थो, दुष्टं-अशोभनं भवनं यस्य, भवनं वर्त्तनं करणमित्यर्थः, यः एवंप्रकारः स पापो भवति। 'सयं गेहं०' ||५४४-४३६|| इत्यादि, स्वयं गृहं परित्यज्य-प्रव्रज्यां गृहीत्वा परगृहेषु व्यापारं करोति, निमित्तादीनां च व्यापारं

||२४६||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||५२७-५४७||

दीप अनुक्रम [५३९-५५९]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १८ संयतीया. ||२४७||

संयताधिकारः

करोति, एवं संयमं प्रति सीदन् पापो भवति।'संनाइपिंडं०'॥५४५-४३६॥इत्यादि, सन्नायपिंडं जेमेइ जिह्वेन्द्रियासक्तः, सुखासक्तश्च समुदानं भिक्षापर्यटनं नेच्छति,एतच्च एतद्‌द्वयमपि न भवति,तथा गृहस्थासनानि नित्यं सेवति यः असौ पापो भवति।'एयारिसे० ॥ ५४६।५४७-४३७ ॥ इत्यादि, वृत्तद्वयं, ईदृशः 'पंच कुसीलसंवृत्तः' पंच इति पासत्थोसण्णकुसीलणितियसंसत्तरूवधरा इत्यर्थः, मुनीनां प्रवराणां हिट्ठिमो निकृष्टो जघन्य इत्यर्थः, एवंप्रकारस्य आत्मा साधुलोके विषमिव गर्हितो भवति, नासौ इहलोके पूज्यः, नापि परलोके, यः पुनरेतान् दोषान् वर्जयति यदा स सुव्रतो भवति मुनीनां मध्ये, तस्यात्मा साधुलोके अमृतमिव पूज्यते, अमृतं कियद्वर्णगन्धरसोपेतं वर्णबलपुष्टिसौभाग्यजननं सर्वरोगनाशनं अनेकगुणसम्पन्नं कल्पवृक्षफलवदमृतमभिधीयते, स एयत्थविशिष्ट इहलोकं परलोकं च आराधयतीति । इति ·परिसमाप्तौ उपप्रदर्शने च, गुरूपदेशात्, न स्वाभिप्रायेणेति । नयाः पूर्ववत् ॥ इति **पापसमणं नाम सप्तदशमध्ययनमिति १७ ॥**

उक्तं सप्तदशमध्ययनं, इदानीमष्टादशं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, सम्बन्धो वक्तव्यः, स च त्रिविधः, तद्यथा-'सूत्रप्रकरणाध्याय' इत्यादि, सूत्रप्रकरणसम्बन्धौ उक्तौ, अध्यायसम्बन्धः सप्तदशमे पापश्रमणो व्यावर्णितः, इह पुनरष्टादशमे सुश्रमणो व्यावर्ण्यते, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य अध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्फन्ने निक्खेवे संजईज्जं, 'निक्खेवो संजइज्जंमि०' ॥३९१-४३८॥ इत्यादि, संजयशब्दस्य चतुर्विधो निक्षेपः नामादि, यावत् ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तः त्रिविधः, एकभविकादि, भावसंजओ आगमतो नोआगमतो य, 'संजयनामं गोयं वेयंतो०' ॥३९२-४३८॥ इत्यादि, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः । इदानीं सूत्रालापक इति, अस्मात्तावज्ज्ञेयं यावत् सूत्रं-'कंपिल्ले नयरे०' ॥५४८॥ इत्यादि, निर्युक्तिगाथाः सूत्रगाथाश्च ||२४७||

अध्ययनं -१७- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१८- "संयतीय" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||५४८-६००||

दीप अनुक्रम [५६०-६१३]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १८ संयतीया. ||२४८||

संयताधिकारः

प्रायसः प्रकटार्था एव, निर्युक्तिकारः सूत्रोक्तमेवार्थं क्वचिदनुवर्त्तते, अतः परं गाथानुसारेण प्रवेशः आख्यातकप्रायं प्रायः भविष्यति, सो य संजओ राया कहिं आसी ?, कहिं वा तेण साहुत्तणं लद्धं ?, तं भण्णति-'कंपिल्लपुर०' ||३९४-४३८|| इत्यादि, कंपिल्लपुरं नयरं, तत्थ य संजतो नाम राया, सो कइया मिगवहाए णिग्गतो चउव्विहेणं सेन्नेणं हयेहिं गएहिं रहेहिं पुरिसेहि य, तदेव चउव्विहं सेन्नं नासीरं भवइ, तस्स य कंपिल्लपुरवरस्स समीवे केसरं नाम उज्जाणं, घणघडियकडच्छायं, तेण राइणा ते मिगा समंततो परुद्धा संता केसरुज्जाणं पविट्ठा,अप्फोयमंडवे गद्दभालीणामं अणगारो झाणं झियायमाणो चिट्ठति,'अप्फोव०'||५५२-४३९|| इति, किमुक्तं भवति?-आकीर्णः, वृक्षगच्छगुल्मलतासंछण्णे इत्यर्थः, सो य राया गच्छगते मिगे वधेति, तेसिं च मिगाणं कति मिगा भीता तेसिं सरणमिव मग्गमाणा उपगता, तेण राइणो अच्छरीयमिति चिंता जाता–किं मण्णे इत्थ कोइ होज्जा ?, ततो राया आसगतो ते मिगे हए अहए य पासति, तं च साधुं दट्ठूण संभंतो भीतो भणति–अहो मया मन्दपुण्णेणं मन्नेऽनगारो विंधितोऽतिरसगिद्धेण 'घत्तुणा' घातणसीलेनेत्यर्थः, सो राया,'आसं विसज्जइत्ताणं०'||५५५-४४०|| तं साहुं विणएणं वंदिऊण अवराहं तं तु खामेति राया, ण जाणिया तुब्भे तो सरो घत्तितो मया,'अह मोणेण०'अह मोणमस्सितो सो अणगारो ण वाहरति तस्स, तब्भयभीतो इणमत्थं सो उदाहरति–'कंपिल्लपुराहिवई०' || ४००-४४० || इत्यादि, सर्वा निर्युक्तिगाथाः प्रकटार्थाः, सूत्रगाथा अपि प्रायसः प्रकटार्था एव, यद्वक्तव्यं तदुच्यते-ततो सो संजओ राया गद्दभालिस्स अंतिए चेच्चा रज्जं पव्वइतो,ग्रामसमुदायो राष्ट्रमभिधीयते, तो तं पव्वइतं सोऊण तत्थ खत्तिओ देवलोयचुतो सारिसतो वीमंसाए पुच्छति-जहा ते दिस्सती रूवं, पसन्नं ते जहा

||२४८||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||५४८-६००||

दीप अनुक्रम [५६०-६१३]

मणो ॥ किंनामे किंगोत्ते, कस्सट्ठाए व माहणे? । कहं पडियरसी बुद्धे?, कहं विणीयत्ति वुच्चसि? ॥ ५६८-४४३ ॥ उच्यते--संजओ नाम नामेणं, अहं (तहा) गोत्तेण गोयमो । गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरणपारगा ॥ ५६९,४४३ ॥ जम्हा सव्वे पाणिणो ण हंमि तम्हा माहणेत्ति वुच्चामि, तथा पुनरपि क्षत्रिय आह--क्रियावादिणं आसीतं शतं अक्रियावादिनां चतुरशीतिः अज्ञानिकवादीनां सप्तषष्टि वैनयिकानां द्वात्रिंशत्, एभिश्चतुर्भिः स्थानैः एकान्तवादिनः 'मितज्ञा' मितज्ञानिनः मितशीलमुपचारः, मितं परिमितं स्तोकमित्यर्थः, ज्ञानिनः, कथं एवमेते परमार्थं ज्ञास्यन्ते?, कथं वा परस्योपदेशं दास्यंति?, अज्ञानाच्च पापं कुर्वन्ति, ततो पडंति णरए घोरे, पुनर्धर्ममाचरन्ति ते दिव्यां गतिं गच्छन्ति, सव्वे ते विदिता मज्झ इत्यादि गतार्था, पुनरपि क्षत्रिय आह--अहमासी ब्रह्मलोके कल्पे महाप्राणे विमाणे द्युतिमां वरिससतोवमा, किमुक्तं भवति ?-पल्योपमसागरोपमैर्यत्रोपक्रमः क्रियते आयुए, पाली मर्यादा, या पल्योपमैः स्थितिः सा ाली, या पुनः सागरोपमैः स्थितिः सा महापाली, सोऽहं बहूनि सागरोपमानि ब्रह्मलोककल्पे भोगान् भुक्त्वा इदं मानुष्यकं भवमायातः, इहापि मम ज्ञानमस्ति येनात्मनः परेषां च आयुं जाणामि, तंजहा--स एव क्षत्रियः संजयस्योपदेशं ददाति, नानाप्रकारां रुचिं च छंदं च परिवर्ज्य संजतो भवति जिनमते, एकग्गचित्तो भव इत्यर्थः, ये च अनर्थास्तां सर्वां ज्ञात्वा परिवर्जयेत्, ये च साधिकरणप्रश्नाश्च तेषां प्रतिक्रमे, अहो विस्मये, अहो भवां संयमे उत्थितः, अहोरात्रं सर्वमित्यर्थः, एतज्ज्ञात्वा तपः कुरु, यच्च मां पृच्छसि तत् तं कथयामि, क्रिया अस्तित्वं तत्र रुचिं कुरु, कथं ?, अस्ति माताऽस्ति पिता अस्ति सुकृतदुष्कृतानां कर्मणां फलविपाक इति, नास्तित्वं च परिवर्ज्य, सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा धर्म्ममाचर, एतत्पुण्यपदं श्रुत्वा कृत्वा च ये मोक्षं गता तानहं कीर्त्तियिष्यामि स्थिरीकरणार्थं, भरहोवि भरहवासं चेच्चा कामाणि पव्वइए इत्यादि, एव-

क्षत्रियाय-क्रियाद्युपदेशः

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||५४८-६००||

दीप अनुक्रम [५६०-६१३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

श्रीउत्तरा० चूर्णौ १९ मृगापुत्रीये ||२५०||

मृगापुत्र-निक्षेपादि

मादाय धीरा धर्म्मं कृत्वा मोक्षं गताः, ये पुनरहेतुभिर्वर्त्तन्ते उन्मत्तका इव विचरन्ति, एतत् शुभाशुभं विशेषं गृहीत्वा ये धीरा बुद्धिमंतो दृढपराक्रमाः ते शुभं प्रति प्रयतंते, ये पुनरन्ये ते विपरीतं कुर्वन्ति, एतज्ज्ञात्वा मया अणिदाणखमचि—अनिदानमबन्धस्तत्क्षमा तत्समर्थास्तन्निष्पादका, यद्वा अबन्धात्मिका सत्यभाषाभाषिता, एतत् कुर्वतः त्रिष्वपि कालेषु परमां गतिं गताः, ये पुनरहेतुभिः वर्त्तन्ते ते कथं शुभां गतिं यास्यन्तीति, शेषं तदेव, नयाः पूर्ववत्।।संजइज्जं अष्टादशमध्ययनं परिसमाप्तमिति१८।।

उक्तं अष्टादशम्, इदानीमेकोनविंशतितमम्, अत्र सम्बन्धः, अष्टादशमे भोगऋद्धीपरित्यागात् सुश्रमणो भवति, इहापि अप्रतिकर्म्मशरीरत्वात् सुतरां श्रमणो भवति, अनेन सम्बन्धेनायातस्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे मियापुत्तिज्जं, मृगशब्दः पुत्रशब्दश्च निक्षेप्तव्यः, ‘णिक्खेवो अ मिआए०’।।४०५-४५१।। इत्यादि गाथात्रयं गतार्थं। इदानीं नामनिरुक्तिं ब्रवीति-‘मिगदेवीपुत्ता ओ०’।।४०८-४५१।।इत्यादि, गतार्था, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः। इदानीं सूत्रालापक इति, अस्मात्तावद्वक्तव्यं यावत्सूत्रं निपतितं, सूत्रं चेदं–‘सुग्गीवे णयरे०’ ।।६०१-४५२।। इत्यादि, सूत्रोक्तमप्यर्थं निर्युक्तिकारः पुनरपि ब्रवीति, किं?, द्विविद्धं शु(सुब)द्धं भवतीति, ‘ ‘सुग्गीवे णगरे’ इत्यादि आख्यानकगाथाः प्रायसः गतार्था, ‘उण्णंदमाण’ इति ‘टुनदि समृद्धौ’ हृदयेन तुष्टिबहुमानो भोगसमृद्धः सः तुल्यो नान्य इति, दोगुंदक इति त्रायस्त्रिंशदेवा नित्यं भोगपरायणा ते दोगुंदगा इति भण्यन्ते, एवं सोऽवि नित्यं भोगपरायण इति दोगुंदगः, देहति-पश्यति, संनिणाणमिति संज्ञिनः ज्ञानं संज्ञिज्ञानं तत्समुत्पन्नं, जातिस्मरणमित्यर्थः, तेन जाइस्मरणेन स्मरति यथा मया अन्यस्मिन् जन्मनि संयमः कृत इति, पच्छा पुरा व जहि- ||२५०||

अध्ययनं -१८- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -१९- “मृगापुत्रीय” आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६०१-६९८|| दीप अनुक्रम [६१४-७१२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २० महा-नियंठिज्जं ||२५१||

यव्वो, पर्यन्तकालो पुरा लघुवयस एव, यद्वा युष्माकं पश्चात्पुरतो वा, परित्यज्य, शेषं तावदेव जाग्रते इति, नयाः पूर्ववत् ॥ एकोनविंशतितमं मृगापुत्रीयं समाप्तम् ॥ १९

इदाणिं विंशतितमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, एकोनविंशतितमे अप्रतिकर्म्मशरीरता व्यावर्णिता, विंशतितमे महानिर्ग्रन्थत्वमिति व्यावर्ण्यते, अप्रतिकर्म्मशरीरश्च महानिर्ग्रन्थो भवतीत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य अध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद्व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे महानियंठिज्जं, खुड्डगणियंठिज्जं भण्णति, क्षुल्लके अज्ञाते नो महान्तं ज्ञायते ततो क्षुल्लकज्ञापनार्थं 'नामं ठवणा०'॥४२२-४६६॥इत्यादि, नामक्षुल्लकं क्षुल्लक इति यस्य नाम, स्थापनाक्षुल्लकः असद्भावे अक्षादि, सद्भावे काष्ठकर्म्मादिक्षुल्लकस्थापना, द्रव्यक्षुल्लकं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं सचित्तादि, सचित्तं प्रथमसमयोत्पन्नं सूक्ष्मपनकजीवशरीरं, अचित्तं परमाणु, मिश्रं तस्य पनकशरीरस्य परित्यागकाले केचित् सचित्ताः केचिदचित्ताः शरीरप्रदेशाः, क्षेत्रे क्षुल्लकं आकाशप्रदेशः, यस्मिन् वा क्षेत्रे क्षुल्लकं व्यावर्ण्यते, योगः व्यापारः, स च शैलेश्यवस्थायां क्षुल्लको भवति, भावानामौपशमिक एव क्षुल्लकः, सर्वस्तोक इत्यर्थः, एतेसिं क्षुल्लकानां प्रतिपक्षे महंतगा होंति, महंतशब्दोऽपि व्याख्यात एव । इदानीं नियंठशब्दस्य निक्षेपः--'निक्खेवो नियंठंमि०'॥४२३-४६६॥इत्यादि, गाथाद्वयं गतार्थं, भावनिर्ग्रन्थः पंचविधः-पुलाकः बकुशः कुशीलः निर्ग्रन्थः स्नातको, निर्ग्रन्थः स च पंचविधः एभिर्वक्ष्यमाणैः द्रव्यैरनुगन्तव्यः, तानि चामूनि-'पण्णवण वेय रागे' इत्यादि गाथात्रयसङ्गृहीतानि ॥ ४२५ ।४२६।४२७-४७१। प्रज्ञापना-एषां पुलाकादीनां स्वरूपकथनं, पुलाको पंचविहो पण्णत्तो, तंजहा--णाणपुलाए दंसणपुलाए चरित्रपुलाए लिङ्गपुलाए अहासुहुमपुलाए णाम पंचमो, तत्थ णाणपुलाओ ज्ञानस्य विराधनां करोति, कथं ?,

क्षुल्लक-निर्ग्रन्थ-निक्षेपाः ||२५१||

अध्ययनं -१९- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२०- “महानिर्ग्रन्थिय” आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८|| दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २० महा-नियंठिज्जं ||२५२||

कालविनयबहुमानादीनि न सम्यक्करोति, तथा ज्ञानस्य ज्ञानिनां च निन्दाप्रद्वेषमत्सरादीनि करोति, एवं ज्ञानं पुलाकीकरोति, निस्सारीकरोतीत्यर्थः, एवं सर्वत्र, दर्शनपुलाए शंकादिदोषसहितं दर्शनं धारयति, गुणाश्चोपबृंहणादयः, नात्र सम्यक्करोति, तथा दर्शनिनां च निन्दाप्रद्वेषमत्सरादीनि करोति, एवं दर्शनं पुलाकीकरोति, चरित्तपुलाओ चारित्रस्य देहे देशस्य खण्डनं सर्वखंडणं वा करोति, तथा चारित्रस्य चारित्राणां च निन्दाप्रद्वेषमत्सरादीनि करोति, एवं चारित्रं पुलाकीकरोति, लिंगपुलाओ लिंगं--रजोहरणमुखवस्त्रिकाणि तं अविधीए अणादरेण वा धारयंति, निन्दाप्रद्वेषमत्सरादीनि(वा)करोति, एवं दर्शनं पुलाकीकरोति-निस्सारीकरोति, अहासुहुमताए एषां चतुर्णामपि सूक्ष्मान् अतिचारान् करोति, एवं पुलाकी व्याख्यातः । बउसे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा--आभोगबउसे अणाभोगबउसे संवुडबउसे असंवुडबउसे अहासुहुमबउसे णाम पंचमे, बकुस इति किमुक्तं भवति ?--रागेण सरीरोपकरणादिषु विभूषां करोति, शरीरे देशस्नानं सर्वस्नानं वा करोति, केशादिषु संयमनं वा करोति, शरीरस्य वर्णरूपगन्धादि वा करोति, तथा आभोगेन जानं करोति आभोगबकुशः, अनाभोगेन अजानन्-अज्ञानीभूत्वा करोति अनाभोगबकुशः, संवृत्तः सन् करोति, चारित्रावरणीयकर्मोदयात्, असंवृतबकुशः, असंवृतो वा करोति असावसंवृतबकुशः, अथाप्य(यथा)सुहुमं वा यत्किंचित्तावन्मात्रंकरोति, एवं उपकरणवसत्यादिषु करोति। कुसीले दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-पडिसेवणकुसीले कसायकुसीले य, पडिसेवणकुसीले जहा पुलाए, नवरं कुशीलशब्दोच्चारणं कर्त्तव्यं, कुत्सितं शीलं कुशीलं मूलोत्तरगुणेषु, कषायकुशीले पंचविधे चेव जहा पुलाए, नवरं कषायशब्दोच्चारणं कर्त्तव्यं, कषायानुगतं शीलं । नियंठे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा--पढमसमयनियंठे अपढमसमयनियंठे चरमसमयनियंठे अचरमसमयनियंठे आहासुहुमणियंठे णामं पंचमं, निर्गतग्रन्थो निर्ग्रन्थः, कर्म्माष्टविधं मिथ्यात्वाविरति दुष्टयोगाश्च,

पुलाकादीनां प्ररूपणादीनि.

||२५२||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८||

दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

यद्वा ग्रन्थो बाह्योऽभ्यन्तरश्च, बाह्यः स्वजनबान्धवधनकनकरजतादि, अभ्यन्तरः क्रोधादि, अस्माद् ग्रन्थान्निर्गतो निर्ग्रन्थः, असौ प्रथमसमयोत्पन्नः प्रथमसमयनिर्ग्रन्थोऽभिधीयते, आहासुहुमनियंठो निर्ग्रन्थत्वं यत्किंचित्तावन्मात्रेण वर्त्तते। सिणाते पंचविहे पण्णत्ते, तं०--अच्छवी असबले अकम्मंसो संसुद्धणाणदंसणधरे अरहा जिणो केवली अपरिस्सावी, छवि-सरीरं, नास्य छवि विद्यत इति अच्छवि, कथं?, यथा नास्य शरीरे मनागवि मूर्च्छा विद्यते, परित्यक्तशरीर इत्यर्थः, न चान्यशरीरप्रतिबन्धकः १, अशबलः शुभाशुभकर्म्मविप्रमुक्तः२, घातिकर्माणि प्रति नास्य स्तोकोऽपि कर्म्मबन्धो विद्यत इति अकर्मांशः, घातिकर्माण्येव प्रति ३, संशुद्धज्ञानदर्शनधरः, क्षायिकज्ञानदर्शनधर इत्यर्थः४, देवासुरमनुजेभ्यः पूजामर्हतीति अरहा, क्रोधादिजयाज्जिनः, केवलं--सम्पूर्णं ज्ञानदर्शनं धारयतीति केवली, नास्य ज्ञानदर्शनसुखानि परिश्रवन्तीति अपरिश्रावी५। पुलाकादीनां स्वरूपकथनमुक्तम्, इदानीं तेषामेव पुलाकादीनां वेदचिंता--ते हि किं सवेदका अवेदका इति ?, वेदास्त्रयः- स्त्रीपुंनपुंसका इति, पुलाए सवेदए, णो अवेदए, जइ सवेदए किं थिअवेदए पुरिसवेदए नपुंसवेदए ?, णो इत्थीवेदए, पुरुषवेदए वा णपुंसगवेदए वा होज्जा, बउसा पडिसेवगा तीहिवि सवेदए होज्जा, कसायकुसीलए सवेदए अवेदए उवसन्तवेदए वा खीणवेदए वा होज्जा, सवेदए तीहिंपि वेदेहिं वा होज्जा, णियंठो सवेदए अवेदए होज्जा, जति अवेदए उवसंतवेदए वा खीणवेदए, जइ सवेदए तीहिंपि सवेदए, सिणायए अवेदए खीणवेदए होज्जा। पुलाकादयः सरागा वीतरागाः इति प्रश्नः ?, पुलाए सरातो, ण वीतरागो होज्जा, एवं जाव कसायकुसीले, णियंठे णो सरागो होज्जा, वीतरागे होज्जा, उवसंतवीतरागे खीणवीतरागो वा होज्जा, सिणाते खीणवीतरागे णियंठे होज्जा। पुलाकादयः किं स्थितकल्पे अस्थितकल्पे भवन्तीति प्रश्ने, कः स्थितकल्पे ?, पुरिमपश्चिमानां तीर्थकराणां तीर्थेषु नियमात् क्रियते अयं कल्पः

पुलकादि-स्वरूपं.

||२५३||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८|| दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २० महा-नियंठिज्जं ||२५४||

पुलकादि-स्वरूपं.

ततः स्थितकल्पोऽभिधीयते, शेषाणां अनियतः, स चायं-आचेलक्कुद्देसिय सज्जायर रायपिंड कितिकम्मा। वत जेट्ठ पडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पे ॥ १ ॥ कल्पशब्दश्च करणे वर्त्तते, यथोक्तं-“सामर्थ्ये वर्णनाकाले, छेदने करणे तथा। औपम्ये चाधिकारे (वासे) च, कल्पशब्दं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥” पुलाकादयः सर्वेऽपि स्थितकल्पे अस्थितकल्पे वा भवंतीति, अथवा कल्पसामान्यात् पुलाए किं जिणकप्पे थेरकप्पे कप्पातीते वा होज्जा?, णो जिणकप्पे, णो कप्पातीए, थेरकप्पे होज्जा, बउसे पडिसेवणाकुसीले य जिणकप्पे थेरकप्पे वा होज्जा, णो कप्पातीते, कसायकुसीले तिहिवि होज्जा, णियंठे सिणातो कप्पतीते, पुलाए सामाईयसंजएण वा छेदोवट्ठावणियातो वा होज्जा, सेसेसु पडिसेधो, एवं बउसपडिसेवगावि, कसायकुसीलो आइल्लेसु चउसु संजमेसु होज्जा, णो अहक्खाए, णियंठसिणायगा णियमा अहक्खातसंजमे होज्जा। पुलाए किं पडिसेवए अपडिसेवए ?, णियमा पडिसेवते, जति पडिसेवए मूलगुणपडिसेवए उत्तरगुणपडिसेवए ?, मूलगुणेसु पंचण्हं महव्वयाणं अन्नयरं पडिसेविज्जा, उत्तरगुणेसु दसविहस्स पच्चक्खाणस्स अन्नतरं पडिसेविज्जा, बउसे उत्तरगुणपडिसेवए, नो मूलगुणपडिसवए, पडिसेवणाकुसीले जहा पुलाए, उवरिल्ला तिण्णिवि अपडिसेवगा। पुलाए कतिहिं णाणेहिं होज्जा ?, दोहिं वा तीहिं वा, बउसपडिसेवगादि, एवं कसायकुसीले, णियंठया दोहिं वा तीहिं वा चउहिं वा होज्जा, पुलाओ न अपुव्वाइं अहिज्जेज्जा, बउसो जहण्णेणं अट्ठ पवयणमाताओ उक्कोसेणं दस पुव्वाइं अहिज्जेज्जा, एवं पडिसेवओऽवि, कसायकुसीलो णियंठो य जहण्णेण अट्ठ पवयणमाताओ उक्कोसेणं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जेज्जा, सिणातो सुयवतिरित्तो। पुलाओ तित्थे होज्जा, णो अतित्थे, एवं बउसपडिसेवगावि, कसायकुसीलो तित्थे वा अतित्थे वा होज्जा, ||२५४|| जति अतित्थे तित्थकरो वा पत्तेयबुद्धो वा होज्जा, एवं नियंठसिणायावि। पुलाओ किं सलिंगे होज्जा अण्णेसिं लिंगे वा होज्जा?,

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८||

दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २० महा-नियंठिज्जं ||२५५||

पुलकादि-स्वरूपं.

दव्वलिंगं पडुच्च सलिंगे वा अन्नलिंगे वा होज्जा, भावलिंगं पडुच्च णियमा सलिंगे होज्जा, एवं जाव सिणातो। पुलातो कइहिं सरीरेहिं होज्जा?, तीहिं ओरालियातेयाकम्मएहिं, बउसपडिसेवगाणं वेउव्वियं अब्भहियं, कसायकुसीलो पंचहिं सरीरेहिं भयणाए, णियंठसिणाता जहा पुलाओ। पुलाओ किं कम्मभूमिए होज्जा० ?, जम्मणं संतिभावं पडुच्च कम्मभूमिए होज्जा, णो अकम्मभूमीए होज्जा, एवं सेसावि, साहारणं पडुच्च कम्मभूमीए वा होज्जा अकम्मभूमीए वा होज्जा, (पुलाओ कंमि काले होज्जा? जम्मणं संतिभावं च पडुच्च सुसमदूसमाए दूसमसुसमाए दूसमाए,) एवं सेसावि, साहरणं पडुच्च (छसुवि, जम्मेणं), सुसमदुस्समाए दूसमसुसमाए दूसमाए तिसुवि कालेसु होज्जा, उस्सप्पिणीए जम्मणं पडुच्च दुस्समसुसमाए सुसमदुस्समाए य दोसु कालेसु होज्जा, महाविदेहे चतुर्थप्रतिभागे सर्वकालमेव भवेज्जा, संतिभावं पडुच्च पढमदुगं छट्ठो य कालो य पडिसिज्झति, सेसेसु होज्जा, जम्मणं जंमि काले जन्मोत्पत्तिः, संतिभावो यस्मिन् काले विद्यमानत्वं, एवं बउसकुसीलनियंठसिणायावि साहारणं पडुच्च सव्वत्थ होज्जा, णवरं णियंठसिणाताण साहरणं णत्थि। पुलाए कालगते समाणे कहिं उववज्जेज्जा ?, जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं सहस्सारे, बउसपडिसेवगाणं जहण्णेणं तं चेव, उक्कोसेणं अच्चुते कप्पे, कसायकुसीले जहण्णेणं तं चेव, उक्कोसेणं अच्चुते कप्पे, कसायकुसीले जहण्णेणं तं चेव, उक्कोसेणं अणुत्तरोववाइएसु, नियंठस्स सव्वाए, पडिसेवित्ता अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा, सिणातो सिद्धिगतीए उववज्जेज्जा, पुलाए देवेसु उववज्जेज्जा, पुलाए देवेसु उववज्जमाणे किं इंदत्ताए सामाणियत्ताए तायत्तीसत्ताए लोकपालत्ताए अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा ?, अविराधणं पडुच्च एतेसु सव्वेसु उववज्जेज्जा अहमिंदवज्जं, विराहणं पडुच्च अण्णतरेसु उववज्जेज्जा, एवं बउसपडिसेवगावि, कसायकुसीले अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा, णियंठे अजहण्णमणुक्कोसेणं ||२५५||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८||

दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २० महा-नियंठिज्जं ||२५६||

पुलकादि-स्वरूपं.

सव्वट्ठसिद्धे उववज्जेज्जा, एवं बउसपडिसेवगादि। पुलागस्स देवलोगट्ठिती जहण्णेणं पलिओवमपुहुत्तं, उक्कोसेणं अट्ठारससागरोवमाइं, बउसपडिसेवगाणं जहण्णेणं तं चेव, उक्कोसेणं बावीससागरोवमाइं, कसायकुसीलस्स जहण्णेणं तं चेव, उक्कोसेणं तेत्तीससागरोवमाइं, णियंठस्स अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीससागरोवमाइं। पुलागस्स असंखेज्जा संजमट्ठाणा, एवं जाव कसायकुसीलस्स, णियंठसिणाताणं एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमट्ठाणे, एतेसिं पुलागादीणं संजमट्ठाणाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पगा वा बहुगा वा उभया वा विसेसाहिया वा ?, णियंठसिणाताणं अजहण्णमणुक्कोसा संजमट्ठाणा सव्वत्थोवा, दोण्हवि तुल्ला, पुलागस्स असंखेज्जगुणा, एवं बउसकुसीलाणं असंखेज्जगुणा, पुलागस्स अणंता चारित्तपज्जवा, एवं जाव सिणातस्स, पुलागेणं पुलागस्स सट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहि य सिय हीणे सिय तुल्ले सियऽब्भहिते, जइ हीणे वा अणंतभागहीणे वा असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा, एवं अब्भहियएवि, पुलाए बउसस्स परट्ठाणसंनियासेणं चरित्तपज्जवेहिं हीणो, णो तुल्लो, णो अब्भहिए, जइ हीणे अणंतगुणहीणे सेसेहिं, एवं पडिसेवगस्स कसायकुसीलस्स छट्ठाणपडिए, णियंठसिणाता जहा बउसस्स, एवं सेसेहिवि सह संजोगो कायव्वो, उवरिल्ला अब्भहिया हेट्ठिल्ल(का हीणा)। पुलाए सजोगी तीहिवि जोगेहिं, एवं जाव णियंठो, सिणातो सजोगी वा अजोगी वा। पुलाए सागारोवउत्ते चेव अणागारोवउत्ते चेव, एवं जाव सिणातो। पुलाए सकसायी तं संजलणेहिं चउहिं, एवं जाव पडिसेवओ, कसायकुशीलो छहिं, णियंठो एक्काते सुक्कलेसाए, सिणातो परमसुक्कलेसाए। ते पुलाए वड्ढमाणा हीयमाणा अवट्ठिता ?, तीहिवि परिणामतेहिं, एवं बउसकुसीलावि, णियंठसिणाता वड्ढमाणा अवट्ठियपरिणामा वा, पुलाए वड्ढमाणपरिणामा जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, एवं हीयमाणेवि, अवट्ठिए जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं सत्त समया, एवं जाव णियंठो ||२५६||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८||

दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

पुलकादि-स्वरूपं.

सिणातो अवट्ठियपरिणामए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। पुलाए आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ बंधति, बउसो सत्त वा अट्ठ वा बन्धति, एवं पडिसेवएवि, कसायकुसीले सत्त वा अट्ठ वा छ वा बन्धति, छ आउयमोहणिज्जवज्जाओ बंधति, णियंठे एगं वेदणिज्जं बन्धति, सिणाए बंधए वा अबंधए वा, जति बंधए वेदणिज्जं एगं बन्धति, पुलाए अट्ठ कम्मपगडीओ वेदति, एवं जाव कसायकुसीले, णियंठो मोहणिज्जवज्जाओ सत्त वेदेति, सिणाए वेदणिज्जआउयणामगोत्ताओ चत्तारि वेदेति। पुलाए चेव वेदणिज्जाउअवज्जाओ छ उदीरेइ, बउसे सत्त वा छ वा उदीरेति, आउवेदणिज्जवज्जाओ छ उदीरेति, एवं पडिसेवएवि, कसायकुसीले सत्त वा अट्ठ वा छ वा पंच वा उदीरेति, आउवेदणिज्जमोहणिज्जवज्जाओ पंच उदीरेति, (णियंठे) पंच वा दोन्नि वा उदीरेति, दोन्नि उदीरमाणे णामं गोत्तं च उदीरेवि, सिणाए उदीरए वा अणुदीरए वा, जति उदीरेति णामं गोत्तं च उदीरेति। पुलागे पुलागत्तं चइत्ता कसायकुसीलत्तं वा असंजमं वा उवसंपज्जति, पडिसेवओ पडिसेवं चइत्ता बउसत्तं वा कसायकुसीलत्तं वा असंजमं वा संजमासंजमं वा उवसंपज्जइ, कसायकुसीले कसायकुसीलत्तं चइत्ताणं पुलागत्तं वा बउसत्तं वा संजमं वा संजमासंजमं वा उवसंपज्जति, णियंठत्तणं चइत्ता कसायकुसीलत्तं वा सिणायत्तं वा असंजमं वा उवसंपज्जति, सिणायतो सिणायत्तं चइत्ता सिद्धिगतिं उवसंपज्जति। पुलाए णोसंनोवउत्तो होज्जा, बउसपडिसेवणकसायकुसीला उभयं वावि। णियंठसिणाता जहा पुलाए आहारए होज्जा, एवं जाव णियंठे, सिणाते उभयहावि। पुलाए जहण्णेणं एगं भवं होज्जा, उक्कोसेणं तिण्णि भवग्गहणाइं, बउसे जहण्णेणं एगं उक्कोसेणं अट्ठ, एवं जहा कसायकुसीले, णियंठे जहा पुलाए, सिणाए एक्कं। पुलागस्स एगभवग्गहणिया आगरिसा जहण्णेणं एक्को उक्कोसेणं सतग्गसो, एवं जाव कसायकुसीलस्स, णियंठस्स जहण्णेणं एक्को उक्कोसेणं ||२५७||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८|| दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २० महा-नियंठिज्जं ||२५८||

दोन्नि, सिणातस्स एक्को, पुलागस्स णाणाभवग्गहणिया आगरिसा जहण्णेणं दोन्नि उक्कोसेणं सत्त, बउसस्स जहण्णेणं दोन्नि उक्कोसेणं सहस्सग्गसो, एवं जाव कसायकुसीलस्स, णियंठो जहण्णेणं दोन्नि उक्कोसेणं पंच, सिणातस्स णत्थि एक्कोऽवि। पुलाए कालओ केच्चिरं होति?, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, बउसे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी, एवं जाव कसायकुसीले, णियंठे जहा पुलाए, सिणाए जहा बउसे। पुलाका बहवः, पुलाकत्वेन कियच्चिरं कालं [अंतरं] होति?, जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, एवं नियंठावि, अवसेसा सव्वद्धं। पुलागस्स केवतियं कालं अंतरं होति ?, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं, अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं जाव णियंठस्स, सिणातस्स नत्थि अंतरं, पुलागाणं केवतियं कालं अंतरं होति ?, जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वासाइं, एवं णियंठाणवि जहण्णेणं, उक्कोसेणं छम्मासो, सेसाणं णत्थि अंतरं। पुलागस्स तिन्नि समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा--वेदणा कसाया मारणंतिया, बउसपडिसेवगाणं पंच, तिन्नि ते चेव, विउव्विए तेयए य, कसायकुसीलस्स छ, पंच ते चेव, आहारए य, णियंठस्स नत्थि एक्कोऽवि, सिणातस्स एक्को, केवलिसमुग्घातो। पुलाए लोगस्स कतिभाते होज्जा ?, किं संखेज्जतिभागे असंखेज्जतिभाए होज्जा? संखेज्जेसु भाएसु होज्जा? असंखेज्जेसु भाएसु होज्जा? सव्वलोएसु होज्जा ?, गोयमा ! असंखेज्जतिभागे होज्जा, सेसेसु पडिसेहो, एवं जाव णियंठे, सिणाते सव्वेसु होज्जा, एवं बउसगाणवि। पुलागो खओवसमिते भावे होज्जा, एवं जाव कसायकुसीले, णियंठे खइए वा उवसमिए वा भावे होज्जा, सिणाते खइए भावे होज्जा, एवं पुण माणा, (पुलाए णं पुव्वपडिवण्णया) किया पडिवज्जमाणयावि होज्जा?, गोयमा ! सिय अत्थि, सिय णत्थि, जति अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सयपुहुत्तं, पुव्वपडिवन्निया सिय अत्थि सिय णत्थि, जति अत्थि

पुलकादि-स्वरूपं. ||२५८||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८||

दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २० महा-नियंठिज्जं ||२५९||

पुलकादि-स्वरूपं.

जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सहस्सपुहुत्तं, बउसावि एगसमएणं केवतिया पडिवज्जमाणया, (सिय अत्थि सिय णत्थि) जति अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सहस्सपुहुत्तं, पुव्वपडिवण्णया जहण्णेणं उक्कोसेणवि कोडिसयपुहुत्तं, एवं कुसीलपडिसेवगावि, कसायकुसीला पडिवज्जमाणया जति अत्थि जहण्णेणं एक्को, उक्कोसेणं सहस्सपुहुत्तं, पुव्वपडिवण्णया जहण्णेणवि उक्कोसेणवि कोडिसहस्सपुहुत्तं, णियंठा पडिवज्जमाणया जति अत्थि जहण्णेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं बावट्ठं [ति]सतं, खवगाणं चउप्पण्णा होंति, उवसमगाण उ पुव्वपडिवण्णया जति अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहुत्तं, सिणाया पडिवज्जमाणया जति अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं अट्ठसयं, पडिवन्नस्स जहण्णेण उक्कोसेणवि कोडिपुहुत्तं। एते णं भंते, पुलागबकुसकुसीलणियंठसिणायाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोतमा! सव्वत्थोवा णियंठा, पुलागा संखेज्जगुणा, सिणाता संखेज्जगुणा, बउसा संखेज्जगुणा, पडिसेवणाकुसीला संखेज्जगुणा, कसायकुशीला संखेज्जगुणा इति ॥ उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, असति सूत्रे कस्यालापकाः?, सूत्रं च सूत्रानुगमे भविष्यति, तत्रानुगमो द्विविधः-सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च, निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः- निक्षेपनिर्युक्तिः उपोद्घातनिर्युक्तिः सूत्रस्पर्शिकानिर्युक्तिश्च, यो यस्य विषयः स पूर्वोक्तः, सूत्रादिचतुष्टयं युगपद्गच्छति, एत्थ य सुत्ताणुगमो इत्यादि, सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चार्यते,तच्चेदं-'सिद्धाण णमोकिच्चा' (६९९)इत्यादि, सिद्धस्यैवाध्ययनस्य प्रकटार्थस्यादि यत्किंचिद्वक्तव्यं तदुच्यते-सिद्धार्थानां परिनिष्ठितार्थानां नमस्कृत्वा संयतानां च, भावतः परमार्थतः, धर्म्मवतां तथ्यां अनुशास्तिं शृणुत मम, क एवमाह?-सुधर्म्मस्वामी, आख्यानकप्रबंधेन कथयति, अत्थि मगहाविसए रायगिहं ||२५९||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||६९९-७५८|| दीप अनुक्रम [७१३-७७२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २१ समुद्र पा० ||२६०||

नयरं, तत्थ सेणिओ राया विहारजत्ताते निग्गतो, विहारजत्ता परिभणिया भण्णति, तन्निमित्तं निग्गतेण मंडिकुच्छीनाम चेइयं, तहिं ठितो साहू दिट्ठो, झाणं झियायति, तत्थ तेसिं समुल्लावो--रण्णो साधुस्स य, एत्थ अज्झयणे वण्णिज्जति, प्रायसः प्रकटार्थ एव, स राजा तं साधुं दृष्ट्वा परं विस्मयं गतः, अहो अस्य साधोः रूपसौभाग्यसौम्यवत्ता क्षांतिमुक्ति असंगवत्ता च भोगेषु लक्ष्यते, तस्य पादौ प्रणम्य प्रदक्षिणं च कृत्वा नातिदूरे निषण्णः, ततो ब्रवीति, (कथं) तरुणो रूपवान् प्रव्रजितः?, साधुरुवाच- अनाथोऽहं, मम सुहृन्न विद्यते, अनुकंपको वा, ततो राजा प्रहसितः, एवंगुणसमेतस्य कथं नाथो तव न विद्यते ?, अहं तव नाथो भवामि, साधुरुवाच--त्वमपि अनाथ एव, मम नाथत्वं कथं करिष्यसि?, एवं साधो राज्ञश्च संवादो वर्ण्यते, जाव विहरति वसुधं विगतपापोत्ति ब्रवीमि, नयाः पूर्ववत् ॥ **विंशतितममध्ययनं महानियंठिज्जं २०** ॥

उक्तं विंशतितममध्ययनं, इदानीं एकविंशतितमं, तस्य कोऽभिसंबंधः ?, विंशतितमे निर्ग्रंथोऽभिहितः, एकविंशतितमे विविक्तचर्याऽभिधीयते, स च निर्ग्रंथो विविक्तचर्यासहित एव भवतीति, नान्यः, अनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं व्यावर्ण्य नामनिष्फन्ने निक्षेपे आदाणपदेन समुद्दपालिज्जं नाम, अर्थतो विविक्तचर्यानामाध्ययनमिदानीं एकविंशतितमं, नामनिक्षेपं करोति **'समुद्दपालिय'**मिति, **'निक्खेवे'** इत्यादि (४२९) नामादिको चतुर्द्धा निक्षेपः, नामस्थापनाद्रव्याणि पूर्ववत्, भावे समुद्रपालितायुर्वेदंतो भावतो तु णातव्वो, ततो समुट्ठितमिणं समुद्दपालिज्जमज्झयणं, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद्यावत्सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं, सूत्रं चेदं— **'चंपाए पालिए नाम'**मित्यादि (७५९-४८४) सूत्रोक्तमेवार्थं यत्पुनः निर्युक्तिकारो ब्रवीति तत्पुनरुक्तं, तत् ज्ञापयति— वैराग्यभावना येन जायते

निक्षेपाः ||२६०||

अध्ययनं -२०- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२१- "महानिर्ग्रन्थिय" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्ति: एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

न तत्पुनरुक्तं , यत्संयमपुष्टिकारमेव भवति, तथा च आह— 'सज्झायज्झाणतव०' गाथा ॥ इदानीमाख्यानकप्रबंधेन तस्योत्पत्तिसंबंधि कारणं चाभिधीयते—चंपा णाम णगरी, तत्थ पालित्तो णाम सत्थवाहो, अहिगतो जीवार्थे(दि)षु पदार्थेषु, अरहंत-सासणरतो, सो अन्नया कयाई पोएणं पत्थितो, गणिमधरिमभरिएणं, गणिमं पूगफलज्जातिफलकक्कोलादि, समुद्तीरे पिहुंडं नाम नगरं संपत्तो, तत्थ य वाणियएणं दारिया दिन्ना, विवाहिता य, अन्नया कयाइ तं पत्तिं आवण्णसत्तं घेत्तूण पत्थितो सदेसस्स, सा समुद्दमज्झंमि पसवती पुत्तं पियदंसणं लक्खणजुत्तं, तस्स समुद्दपालेत्ति नामं कयं, पंचधाईहिं परिक्खित्तो परिवड्ढति, बावत्तरिकलापंडितो जातो, ततो जुव्वणपत्तस्स कुलरूवाणुसरिसं चउसट्ठिगुणोपेतं रूविणीनामभारियं आणावेति, सो रूविणीए सहितो दोगुंदओ व देवो भुंजति भोए निरुव्विग्गो। अह अन्नया कयाई सो ओलोयणचिट्ठिते पासत्ति(नगरं),वज्झं णीणिज्जंतं पासेति, तं दट्ठूणं सन्नी वित्तेगी णाणी सुकियदुक्कियाणं कम्माणं जाणती फलविवागं, चरित्तावरणीयकम्माणं खओवसमेणं च संबुद्धो संवेगमणुत्तरं च संपत्तो आपुच्छिऊण जणणिं णिक्खंतो, खायकित्तीओ, काऊण तवच्चरणं बहूणि वासाणि सो धुयकिलेसो तं ठाणं संपत्तो जं संपत्ता ण सोयंति, एषोऽर्थः सूत्रेऽभिहित एव, तथापि निर्युक्तिकारेणाभिहितः, द्विर्बद्धं सुबद्धं भवतीति । इदानीं सूत्रे यत्किंचिद्वक्तव्यं तद् ब्रवीमि 'जहित्तुऽसग्गंथ'॥ (७५९-६८६)॥ इत्यादि,'ओहाकूत्यागे' त्यक्त्वा असद्ग्रन्थं-कर्म्म अशोभनं कर्म्म अशुभकर्म्मगतिबन्धात्मकं, नरकतिर्यग्योनिप्रायोग्यमित्यर्थः, तं, महान् क्लेशो यस्मिन् तं महाक्लेशं, महान्मोहो यस्मिँस्तन्महामोहं, कृष्णं कृष्णलेश्यापरिणामि, भयानकं, असद्ग्रन्थं त्यक्त्वा संयमपर्याये स्थित्वा श्रुतधर्म्मे अभिरुचिं करोति, व्रतानि—महाव्रतानि, शीलानि च-उत्तरगुणानि, तानि च अभिरोचयति, तथा परीषहा सहति अहिंसयन्नित्यादि, सव्वेहिं ॥२६१॥

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||७५९-७८२|| दीप अनुक्रम [७७३-७९६]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २१ समुद्रपा० ॥२६२॥

समुद्रस्य साधुता

भूतेहिं इत्यादि गतार्था। 'कालेण' इत्यादि(७७२-६८७) कालेण कारणभूतेन यद् यस्मिन् काले कर्त्तव्यं तत् तस्मिन्नेव समाचरति, स्वाध्यायकाले स्वाध्यायं करोति, एवं प्रतिलेखनाकाले प्रतिलेखयति, वैयावृत्यकाले वैयावृत्यं, उपसर्गकाले उपसर्गं, अपवादकाले अपवादं करोति, राष्ट्रविषये आत्मनश्च बलाबलं ज्ञात्वा, सिंह इव साध्वसजादेत(सो) न त्रासं गच्छाति, वाङ्मात्रमेव इदं, असत्यमपि न चिंतयति, स तत्र गच्छाति, एवं सर्वार्थेषु रागद्वेषात्मकेषु दढो भवति। 'उवेहमाणो' इत्यादि (७७३-४८७) उपेक्षां कुर्वन् परिव्रजति, प्रियमप्रियं सर्वं समानं सर्वकार्येषु अभिरोचयति, अपवादं न सर्वकालमेव रोचयतीत्यर्थः, न चापि पूजायां सक्तिं करोति, न च परापवादं करोति। 'अणेगछंदा' इत्यादि (७७४) यावत्परिसमाप्तं, छन्दोऽभिप्रायः, अनेकाभिप्राया इह मानवेषु दश्यन्ते, रागद्वेषात्मको यस्तेष्वनिष्टेषु द्वेषं करोति स कर्म्मबन्धको भवति, के च ते ?, भयानकाः- भैरवाः, तत्र तस्मिन् मनुष्यलोके उपगच्छन्ति दिव्या मानुष्याः तैरश्चा वा, तथा परीषहा अनेके उदयं गच्छंति यत्र सीदन्ति कातराः, स भिक्षुस्तत्र न सीदति, संग्राममध्ये इव हस्तिराजा, परीषहा विशेष्यन्ते, शीतोष्णदंशमशकादयः, आतंका-रोगाः, ते च नानाप्रकाराः स्पृशंति तान्, अककरः- अनाक्रन्दं, अधियासेति, राजसैः पुराकृतानि कर्माणि क्षपयति, प्रहाय रागं च द्वेषं च अज्ञानं च विचक्षणो भिक्षुः, मेरुर्यथा वायुना न चाल्यते, एवं परीसहोपसर्गैर्यथा न चाल्यते तथा करोति, तथा नात्यर्थमुन्नतेन न चात्यर्थमवनतेन, किं ?-युगान्तरप्रलोकिना गन्तव्यं, महर्षिणाम महान्तं वा एषते यः स महर्षी, मोक्षार्थीत्यर्थः, न पूजायां सक्तिं करोति, न चापवादं करोति, किन्तु ऋजुभावं प्रतिपद्यते, स एवंविधः निर्वाणमार्गमुपैति। 'संयमे अरइरइसहे०'॥७७९-४८७॥ संयमे अरतिः असंयमे च या रतिः तां सहति, संस्तवो वचनसंस्तवः संवासश्च तच्च त्यजति, अकर्त्तव्येषु विरतः, स आत्मसहितं करोति, प्रधानश्च भवति, ॥२६२॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||७८३-८३१|| दीप अनुक्रम [७९७-८४६]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २२ रथनेमीयं ॥२६३॥

रथनेमि निक्षेपादि

परमार्थपदानि-ज्ञानदर्शनचारित्राणि, तेषु तिष्ठति, मिथ्यादर्शनादीनि श्रोतांसि छिन्नानि-अपगतानि तस्य, न क्वचित् ममीकारः, ततः न किञ्चनं विद्यते तस्य । 'विवित्ताणि'॥७८०-४८७॥स्त्रीपशुपण्डकविवर्जितानि लयनानि सेवति, तान्येव विशेष्यन्ते, अकृतमकारितमसंकल्पितानि संयमोपघातविरहितानि पूर्वऋषिभिः आचीर्णानि सेवति, तथा परीषहांश्च सहति, शोभनं ज्ञानं सज्ज्ञानं, सज्ज्ञानेन उपगतः महर्षिः, नास्य उत्तरो विद्यत इत्यनुत्तरं, सर्वप्रधान इत्यर्थः, तं अनुत्तरं धम्मसंचयं चरेत्ता मूलगुणज्ञानधारी भ्राजते सूर्य इव अन्तरिक्षे, स एवंगुणविशिष्टः शुभाशुभकर्म्मविप्रमुक्तः संशुद्धज्ञानदर्शनधरः तीर्त्वा संसारं समुद्रमिव समुद्रपाले अपुणागमं गतिं गतोत्ति, इति परिसमाप्तौ, नयाः पूर्ववत्, ब्रवीम्याचार्योपदेशात् ॥ एकविंशतितमं अध्ययनं समाप्तं ॥

उक्तं एकविंशतितमं, इदानीं द्वाविंशतितमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, एकविंशतितमे विविक्तचर्याऽभिहिता, द्वाविंशतितमे वृत्ति(धृति)श्चरणं च वर्ण्यते,सा च विविक्तचर्या धृतिमता चरणसहितेन च शक्यते कर्त्तुम्,अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्फन्ने निक्षेपे रहणेमिज्जंति- 'रहनेमी निक्खेवो०' ॥४४३॥४४४॥४४५-४८८॥ इत्यादि गाथात्रयं गतार्थं, तत्र कोऽसौ हरि(रह) णेमी?, तस्योत्पत्तिः गाथानुसारेणैव च विज्ञेया,सिवात्ति देवी अणोज्जंगी,किमुक्तं भवति?- अनुपमाङ्गी, प्रथमाङ्गी इत्यर्थः, रहनेमिस्स चत्तारि वरिसशते गिहत्थत्तं, एगं वरिसं छउमत्थे, पंच वर्षशते केवली, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः । इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्मात् यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं, सूत्रं चेदं-'सोरियपुरंमि नयरे०' ॥ ७८३-४९१ ॥इत्यादि, सर्वं गाथानुसारेणेव णेयं यावत् 'जहा से पुरिसोत्तमो' त्ति बेमि, नयाः पूर्ववत्, ब्रवीम्याचार्योपदेशात्, द्वाविंशतितममध्ययनं रहनेमिज्जं समाप्तम् ॥

॥२६३॥

अध्ययनं -२१- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२२- "रथनेमिय" आरभ्यते

अध्ययनं -२२- परिसमाप्तं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||८३२-९२०||

दीप अनुक्रम [८४७-९३५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २३ केशिगौत० ||२६४||

केशिगौतम समागमः

उक्तं द्वाविंशतितमं, इदानीं त्रयोविंशतितमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, द्वाविंशतितमे धृतिश्चरणं च वर्णितं, सा धृतिर्धर्म्मे कर्त्तव्या, चरणं पुनश्चारित्रधर्म्म एव, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्फण्णे निक्षेपे केसीगोतमिज्जंति - 'निक्खेवो गोअमंमी चउक्कओ०' ॥४५१॥४५२॥४५३-४९८॥ इत्यादि गाथात्रयं गतार्थं, उक्तो नामनिष्फण्णो निक्षेपः। इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद् यावद् सूत्रं निपतितं तावद्वोद्धव्यं, सूत्रं चेदं-'जिणे पासत्ति णामे' इत्यादि (८३२-४९९) सर्वं हृदि व्यवस्थाप्य यत्किंचित् वक्तव्यं तदुच्यते, अस्य पार्श्वस्वामिनः केशी नाम शिष्यो, ज्ञानचरणसंपन्नो बहुशिष्यपरिवारः श्रावस्त्यां तिंदुकनाम उद्यानं तत्र समवसृतः, अथ तस्मिन्नेव काले वर्द्धमानस्वामिनः शिष्य इंद्रभूती गौतमगोत्रः, तस्यैव नगरस्य बहिः कोष्ठकं नामोद्यानं तत्र स्थितः, द्वावपी अत्यर्थं लीनौ, मनोवाक्कायगुप्तावित्यर्थः, सुसमाहितौ, ज्ञानादिसमाधियुक्तावित्यर्थः, उभयोरपि शिष्याणां चिन्ता समुत्पन्ना- तुल्ये तीर्थकरत्वे किमिति शिक्षोपादाननानात्वं?, अथ तौ तत्र विज्ञाय शिक्षाणां प्रवितर्कितं समागमकृतमतीकौ द्वावपि केशिगोतमौ पूर्वतरं ज्येष्ठ इतिकृत्वा केशीं गौतमः प्रति विनयाद् यावद् शिष्यपरिवृतो तिंदुकोद्यानमुपगतः, तस्येदानीं केश्याचार्यः(स्य) अनुरूपां प्रतिपत्तिं कर्त्तुमुद्यतः, पलालांकुशतृणानि च साधुप्रायोग्यानि भूमौ निषद्यादुपरि निषद्यां च दापयति, तौ केशीगौतमौ भ्राजेते चंद्रसूर्यसमप्रभौ। तौ समागतौ ज्ञात्वा बहवः पाषंडा गृहस्था देवदानवाश्च समागताः, तयोः किल विवादो भविष्यति, ततः केशी गौतमं पृच्छति, गौतमोऽपि केशीं ब्रवीति, पृच्छ पृच्छस्वेति, यमा-महाव्रतानि, तव तत्र पार्श्वस्वामिना चत्वारि महाव्रतानि अभिधीयंते, तानि वर्द्धमानस्वामिना पंच, एककार्यप्रवृत्तानां किमिति विसंवादः?, कार्यं मोक्षः, केशिमेवं ब्रुवाणं गौतमः स प्रज्ञायते प्रज्ञा प्रज्ञया-ज्ञानेनालोच्य तत्त्वातत्त्वानां च ||२६४||

अत्र अध्ययन -२३- "केशिगौतमिय" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||८३२-९२०|| दीप अनुक्रम [८४७-९३५]

पदार्थानां विनिश्चयं आलोच्य देशकालानुरूपं धर्मं कथयंति तीर्थकराः, किं तद्विप्रत्ययकारणं ?, तदुच्यते, द्वादश कारणानि, सूत्रोक्ता(नि) एव निर्युक्तिकारेण प्रोक्तानि, 'सिक्खा वया य' इत्यादि (४५५-६-७) गाथात्रयसंगृहीतानि, शिक्षापदानि पंच महाव्रतानि, चत्वारि किमित्यभिहितानि प्रथमं, तथा लिंगद्विविध्यं किमिति द्वितीयं, आत्मा कषाया इंद्रियाणि च शत्रं तत्तृतीयं, पाशानां अवकर्शनं, वृत्तीच्छेदने पाशानां छेदनमित्यर्थः, रागद्वेषादयः पाशः, चतुर्थं तंतूद्धरणबंधने, तंतू-भवलता उद्धरणं-नाशनं तद् बंधने कृते भवलता(उद्धृता)भवति, अग्निविध्यायनं च पंचमं, अग्निः कषायः निर्वापणं श्रुतं शीलं च६,दुष्टाश्वो मनः७, पथः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राणि तस्य परिज्ञानं ८, महापरिश्रोतानि-मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाः तेषां निवारणं ९, संसारार्णवस्य पारगमनं १०तमः-अज्ञानं तस्य विघाटं-प्रकाशीकरणं ११, मोक्षस्थानस्य उपसंपदा, मोक्षस्थानप्राप्तिरित्यर्थः१२, एवमेतानि द्वादश स्थानानि सूत्रे व्याख्यातानि, पुरिमाण दुव्विसोज्झो उ इत्यादि, प्रथमतीर्थकरशिष्याणां दुर्विशोध्यः संयमः, ऋजुजडत्वात्, पश्चिमतीर्थकरशिष्याणां दुरनुपालकः संयमः, वक्रजडत्वात्, मध्यमतीर्थकरशिष्याणां ऋजुप्रज्ञत्वात् सुविशोध्यः सुखं चानुपाल्यः, अतो-अनेन कारणेन द्विधा प्रकल्पितः।'साधु गोतम'इत्यादि, सर्वत्र पृच्छा उत्तरं च बोद्धव्यं, तथा अ(स)चेलको मध्यमतीर्थकरैः, स(अ)चेलकः प्रथमपश्चिमैर्धर्म्मः प्रदर्शितः,लिंगद्वैविध्येऽपि इदमेव कारणं,तथा च संयमयात्रार्थमात्रकं(ग्रहणं)अग्रहणं भवितव्यमिति, परमार्थतस्तु ज्ञानदर्शनचारित्राणि मोक्षकारणं, न लिंगादीनि, एवं द्वादशसु कारणेषु व्याख्यातेषु केश्याचार्यो गौतमस्य स्तुतिं करोति, साधु गोमत ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो । नमो ते संसयातीत !, सव्वसत्तमहोदही ।। ९१६ ॥ एवं तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमो। वंदित्तु पंजलिउडो, गोतमं तु महामुणी ॥९१७॥ पंचमहव्वयजुत्तं, भावतो

विप्रत्यय-कारणानि

||२६५||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||९२१-९४७|| दीप अनुक्रम [९३६-९६२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २४ प्रवचन० ||२६६||

पडिवाज्जिया। धम्मं पुरिमस्स पच्छिमंमि मग्गे सुहावहे ||९१८|| तोसिता परिसा सव्वा, सम्मत्ते पज्जुवत्थिया। संजुता ते पदीसंतु, भगवं केसीगोतम॥९२०-५१२॥त्ति बेमि। नयाः पूर्ववत्, ब्रवीमीत्याचार्योपदेशात्, त्रयोविंशतितमं॥ उक्तं त्रयोविंशतितमं, इदानीं चतुर्विंशतितमं, तस्य कोऽभिसंबंधः?, त्रयोविंशतितमे धर्म्मो व्याख्यातः, स धर्म्मः समितिगुप्तिं विना नैव भवति, ताश्च चतुर्विंशतिमे व्याख्यायंते, अनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद्व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे समितीउ-समितयः पंच तिस्रो गुप्तयः एताः प्रवचनमातरोऽभिधीयंते, तत्र प्रवचनशब्दस्य तावन्निक्षेपः 'निक्खेवो पवयणंमि'गाथाद्वयं (४५८-९।५१४) व्यतिरिक्तं कुतीर्थिकप्रवचनं, भावप्रवचनं द्वादशांगं गणिपिटकं, पिटकशब्दः समुदायवाची, प्रोच्यते अस्मिन् जीवादयः पदार्था इति प्रवचनं॥ इदानीं मातृशब्दस्य निक्षेपः 'मातंमि उ निक्खेवो' इत्यादि गाथाद्वयं (४६०-१।५१४) व्यतिरिक्तं भाजने द्रव्यमातं, स्थितमित्यर्थः, भावे समितिगुप्तिषु प्रवचनं मातं, स्थितमित्यर्थः, 'अट्ठसु इ' इत्यादि(४६२-५१४)गतार्था,उक्तोनामनिष्पन्नो निक्षेपः,इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद्यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं,सूत्रं चेदं'अट्ठ उ पवयणमाता'इत्यादि गाथात्रयं(९२१-२३।५१५,गतार्थं,'आलंबणेन'गाथाद्वयं(९२४-५।५१६)ईर्यासमितिरभिधीयते, 'ईर गतिप्रेरणयोः' ईर गतौ, गंतव्यं गमनं, तत् कारणपरिशुद्धं वक्तव्यं, तद्यथा-आलंबनेन कालेन मार्गेण उपयुक्तेन च, आलंबनेन-कारणेन, चैत्यवंदनआचार्यादिप्रयोजनशरीरचिंतादिना कारणेन गमनं कर्त्तव्यं, न हि निर्निमित्तं, तथा आगमेऽप्यभिहितं 'जाव णं अयं जीवे एयति वेयति चलती'त्यादि, कालेन यद्यस्मिन् काले कर्त्तव्यं तस्मिन्नेव करोति, यथा भिक्षाकाले भिक्षार्थं पर्यटति, एवं सर्वकाले मंतव्यं, मार्गेण संयमोपघातरहितेन गंतव्यं, यत्नेन युगांतरप्रलोकिना उपयुक्तेन गंतव्यं,

समितयः ||२६६||

अध्ययनं -२३- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२४- “प्रवचनमातृ” आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||९२१-९४७||

दीप अनुक्रम [९३६-९६२]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २४ प्रवचन० ॥२६७॥

गुप्तयः

इंद्रियार्थाव्याक्षिप्तेन गंतव्यं, न च स्वाध्यायं कुर्वता गंतव्यं, तन्मूर्त्तिना तदेव पुरस्कृत्य गंतव्यं। इदानीं भाषासमितिः-'कोहे माणे य' इत्यादि गाथाद्वयं(९२९-३०।५१७)क्रोधादिविरहितेन उपयुक्तेन भाषा भाषणीया, तथा चोक्तं-"पुव्वं बुद्धीए पासेत्ता,पच्छा वक्कमुदाहरे"इदाणीं एषणासमितिः'गवेसणा य'इत्यादि गाथाद्वयं(९३१-२।५१७)अन्वेषणग्रहणपरिभोगैःत्रिभिः कारणैराहाररुपधिशय्या विशोधयेत्,उद्गमोत्पादना च गवेषणाऽभिधीयते,ततः ग्रहणं,ततः परिभोगैः, चउक्कं विशोधयेत्, संयोजना प्रमाणं अंगारः धूमे कारणे च। इदानीमादाननिक्षेपणासमितिः-"ओहोवहिवुग्गहितं" इत्यादि गाथाद्वयं(९३३-४) द्विविधो उपधिः-औधिको औपग्रहिकश्च, इमं विधिं प्रयुंजीत-पूर्वं चक्षुषा प्रतिलेख्य पश्चाद्यत्नेन मृदुना प्रमार्जयेत्, इदानीं प्रतिष्ठापनासमितिः- 'उच्चारं पासवणं'इत्यादि गाथा(९३५।५१८)गतार्थं। उक्ताः समितयः,इदनीं गुप्तयोऽभिधीयंते,मनोगुप्तिः वचनगुप्तिः कायगुप्तिरिति, तत्र मनोगुप्तिश्चतुःप्रकारा, सत्या मृषा सत्यामृषा असत्यामृषा चेति चतुर्विधा मनोगुप्तिः, संरभसमारंभात्मकं सत्यं न चिंतयति, एवं सत्यामृषं न चिंतयति, 'संकल्पः संरंभः परितापकरो भवेत् समारंभः। आरंभः व्यापत्तिकरः शुद्धनयानां तु सर्वेषां॥१॥एवं वाग्गुप्तिरिति विज्ञेया,इदानीं कायगुप्तिः'ठाणे निसियणे' इत्यादि गाथाचउक्कं(९४४-७।५२०)स्थानं कायोत्सर्गादि, निषीदनं त्वग्वर्त्तनं ऊर्ध्वं लंघनं उल्लंघनं, उत्क्षेपणं विक्षेपणं चेत्यर्थः,इंद्रियाणं युंजनं, स्थविरकल्पे जिनकल्पे वा स्थितः समारंभे आरंभे वा कायं वर्त्तमानं निवर्त्तयेत् यत्नेन, समितयश्चरणस्य प्रवर्त्तने, गुप्तयः अशुभनिवृत्तये, ता एताः प्रवचनमातरो यः समाचरति संसाराद्विमुच्यत इति,नयाः पूर्ववत्।मार्गाख्यं२४॥

➡ इदानीं पंचविंशतितमं,तस्य कोऽभिसंबंधः?,चतुर्विंशतितमे समितयो गुप्तयश्च व्यावर्णिताः, पंचविंशतितमे ब्रह्मगुणा व्यावर्ण्यंते, ॥२६७॥
तच्च ब्रह्म समितिभिर्गुप्तिभिर्विना नैव भवति, अनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद्व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने

अध्ययनं -२४- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२५- "यज्ञीय" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||९४८-९९१||

दीप अनुक्रम [९६३-१००६]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ यज्ञीया० ||२६८||

जयघोषस्य वैराग्यं

निक्षेपे जणइज्जं,'णिक्खेकेवो जण्णंमी'त्यादि गाथाद्वयं(४६२-४।५२१)व्यतिरिक्तं ब्राह्मणादीनां जयनं,भावयज्ञः तपःसंयमानुष्ठानं, अध्ययननिरुक्तगाथा 'जयघोसा' इत्यादि (४६५।५२१) गतार्था। उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद् यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं,सूत्रं चेदं-'माहणकुलसंभूतो'(९.४८५२३)इत्यादि प्रायसः गतार्थं, तथापि यत्किंचिद्वक्तव्यं तदुच्यते,यथा इदं प्रवृत्त तथा कथ्यते-वाणारसीए नगरीए दो विप्पा भायरो य, जमलाऽऽसी,जयघोसो विजयघोसो, तत्थ जयघोसो ण्हातुं गतो गंगं, तत्थ पेच्छति सप्पेण मंडुकं गसिज्जंतं, सप्पोऽवि मज्जारेण छन्नो, मज्जारो सप्पं अक्कमिउं ठितो, तथावि सप्पो मंडुकं चिञ्चयंतं खायेति, मज्जारोवि सप्पं चडप्पडमाणं खायति, तं अण्णमण्णघाता इत्यादि सर्वा निर्युक्तिगाथा गतार्था,जायाई जयनशीलः, 'जमजन्नंति'(यम)तुल्यो यमयज्ञः, मारणात्मकः, इंद्रियग्रामं निगृह्णाति, सम्यग्दर्शनादिमार्गगामी, अथ तस्मिन् काले जयघोसेण यज्ञः प्रस्तुतः, ततोऽसौ (वि)जयघोषः मासक्षपणपारणके भिक्षार्थं समुपस्थितः, तेनासौ प्रतिषिद्धः, न ते दास्यामि भो भिक्षां, ये च वेदविदो विप्रा, ये च यज्ञस्य याजिनः। ज्योतिषांगविदो ये च, ये च धर्म्मस्य पारगाः॥१॥ ये समर्थाश्च उद्धर्त्तुं, आत्मानं परमेव वा। तेषामिदं तु दातव्यं, अन्नदानं हितैषिणा॥२॥तत्त्वं वेदमुखं वक्षि, यज्ञानामपि यन्मुखं। नक्षत्राणां मुखं यच्च, धर्माणां चापि यन्मुखं॥३॥ ये समर्थाश्च उद्धर्त्तुं, आत्मानं परमेव वा। तेनापि त्वं न जानीषे, अथ ज्ञानी ततो भण॥४॥ अस्याक्षेपस्य उत्तरं दातुं अशक्तः, ततोऽसौ सपरिवारः ब्रवीति-भगवन्! ब्रूहि सर्वं यथा तथा,-अग्निहोत्रमुखा वेदा, यज्ञार्थं वेदसां मुखं। नक्षत्राणां मुखं चंद्रः, धर्म्माणां काश्यपो मुखं ॥ १ ॥ राहुमुक्तं यथा चंद्रं, नमस्यंति अजानकाः। एवं वेदविदः केचित्, ब्रह्मतत्त्वं न जानते ॥ २ ॥ यो गृहान्निर्गतस्सन् न पुनस्तत्रैव सज्जति, यश्च प्रव्रजन् न शोचति, आचार्यवचने च रमते, रागद्वेषौ च न कुरुते, तं वयं ||२६८||

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||९९२-१०५८||

दीप अनुक्रम [१००७-१०४३]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २६ सामाचारी ॥२६९॥

जयघोषस्य वैराग्यं

कर्म्मब्राह्मणं प्राणातिपातादिविरतं, वयं इमं ब्राह्मणं पशुबंधादिपापकर्म्मरहितं, निरतं न तं ब्राह्मणं ब्रूमः, एवं जयघोषेण विजयघोषो भवति प्रतिपादितः, तस्यैव सकाशे प्रव्रजितः, तपः कृत्वा 'खवित्ता पुव्वकम्माइं'इत्यादि गतार्थाः (९९१।५३१) नयाः पूर्ववत् ॥ जण्णइज्जं नाम पंचवीसइममज्झयणं ॥

उक्तं पंचविंशतितमं, इदानीं षड्विंशतितमं, तस्य कोऽभिसंबंधः?, पंचविंशतितमे ब्रह्मगुणा व्यावर्णिताः, षड्विंशतितमे सामाचारी, ब्रह्मगुणावस्थितेन अवश्यमेव सामाचारी करणीया, अनेन संबंधेनायातस्यास्याप्यध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद्व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे सामाचारी'निक्खेवो सामंमि'इत्यादि गाथाद्वयं(४८३-४।५३३)व्यतिरिक्तं क्षीरशर्करादीनां सामभावो,भावसामं इच्छामिच्छादिकं,'आयारे निक्खेवो'इत्यादिगाथात्रयं ४८७-८-९।५३३ व्यतिरिक्तो नामादि,नामने तिणिसलता,धोवने हरिद्राराग:, वासने कपिल्लकादि,शिक्षापने शुकसारिकादि,सुकरणे सुवर्णादि लब्धि(दघ्ना)सार्द्धं गुडाः,एष द्रव्याचारः, भावे दशविधसामाचार्याचरणं, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः,इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः,अस्माद्यावत् सूत्रं निपतितं तावक्तव्यं, सूत्रं चेदं-'सामायारिं पवक्खामि'इत्यादि(९९२-५३४) सर्वं प्रायः गतार्थं,तथापि यत् किंचिद्वक्तव्यं तदुच्यते-दिवा पौरुषिप्रमाणं छायया ज्ञायते,आसाढमासे इत्यादि प्रयोगेण,रात्रौ पुनः कथं नातं तद्?, उच्यते,यन्नक्षत्रं रात्रिं परिसमापयति तस्मिन्नक्षत्रे चतुर्भागे स्थिते प्रथमप्रहरः कालिकश्रुते तस्य तस्मिन् स्वाध्यायः क्रियते, तस्मिन्नेव नक्षत्रे णभोमध्ये स्थिते अर्द्धरात्रः, तस्मिन्नेव नक्षत्रे चतुर्भागे शेषस्थिते पश्चिमः प्रहरः,दशविधा सामाचारी चक्रवालसामाचारी न अत्राभिहिता, (ओघरूपा च) तौ च आवश्यकानुसरेण ज्ञातव्याविति, नयाः पूर्ववत्, षड्विंशति-तमं सामाचारीनामकं समाप्तं ॥

॥२६९॥

अध्ययनं -२५- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२६- "सामाचारी" आरभ्यते

अध्ययनं -२६- परिसमाप्तं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||१०४४-१०६०||

दीप अनुक्रम [१०५९-१०७५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २७ खलुंकीये ||२७०||

निक्षेपादि शैक्षदुष्टता च

इदानीं सप्तविंशतितमं, तस्य कोऽभिसंबंधः?, षड्विंशतितमे सामाचारी अभिहितेति सप्तविंशतितमे अशठता व्यावर्णिता, सा च साधुना सर्वप्रयोजनेषु कर्त्तव्या, अनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद्व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे 'खलुंकिज्जंमि' इत्यादि गाथाद्वयं (४९०-१।५४८) व्यतिरिक्तो बलीवर्दो मायी, खुलुंका गली मरालो शठो प्रतिलोमे अविनीत इत्येकार्थः, भावे खलुंको प्रतिलोमो, सर्वेषु मोक्षप्रयोजनेषु खलप्रकार 'अवदाली' इत्यादि (४९२-५४८) अवदाली स्कंधानुयुगं योत्रं च सुविण्णासति, उत्रसति, योत्रं युगं च भांडं भनक्ति, उत्पथेन गच्छति, विपथेन-विषमेण पथा गच्छति,'जं किर दव्वं खुज्जं'इत्यादि गाथाद्वयं(४९३-४।५४८)गतार्थं, 'दंसमसक' इत्यादि (४९५।५४८) दंसमसकतुल्या जात्यादितुदनसीला,जलूकतुल्या दोषग्राहिनः, कपिकतुल्या असमाधिकारिणः,'तीक्ष्णा' निस्त्रिंशा मृदवः अत्यंतं अज्ञाः चंडा-रोषणाः मार्दविका-अत्यंतमलसा, एते भावखलुंका। 'जे किर गुरुपडिणीया' इत्यादि गाथात्रयं(४९६-७-८।५४८)गतार्थं,उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद्यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं,सूत्रं चेदं- 'थेरे गणधरे गग्गे'इत्यादि (१०४४ ५५०) स्थिरीकरणात् स्थविरः, गणं धारयतीति गणधरः-गणी, गच्छआचार्य इत्यर्थ , गर्गसगोत्र इति, मन्यते त्रिकालावस्थितं जगदिति मुनिः, विशारद हेतोः, संग्रहोपग्रहकुशल इत्यर्थः, गणिभावं प्रति आकीर्णः, सुतरां आचार्यगुणोपेतः, ज्ञानादिसमाधिकारकः, स इदानीं आचार्यः शिष्यस्योपदेशं ददाति-वहनं-रथादि तस्मिन् युक्तस्य बलीवर्दादेर्वहत यातव्योपदेशः अभिवर्त्तते, अथ न वहते तत् तस्यैवाशोभनं भवति, एवं शिष्यस्यापि संयमयोगान् सम्यग्वहतः संसारच्छेदो भवति, यः पुनः संयमयोगेषु अविनीतान् खलुंकान् योजयति असौ विधिचोदनामपि कुर्वन् क्लिश्यति, असमाधिं च लभते, लाघवं च प्राप्नोति, वक्ष्यमाणबलीवर्दसदृशाः कुशिष्या भवंति, ते च इमे

||२७०||

अत्र अध्ययन -२७- “खलुंकिय” आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||१०४४-१०६०||

दीप अनुक्रम [१०५९-१०७५]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २८ मोक्षमार्ग. ||२७१||

निक्षेपादि शैक्षदुष्टता च

‘एगं डसति पुच्छंमि’(१०४७-५५२)इत्यादि गाथा सर्वा. एकं बलिवर्दविशेषं पुच्छे पीलयति, अन्यमभीक्ष्णं तुदयति, अन्यदतस्तत्र दुष्टस्तत्कारणं कृत्वा पार्श्वस्थं उल्लंघ्य नश्यति, एवमादि कियत् वर्णयिष्यामि, यादृशास्ते दुष्टबलीवर्दा दुष्टशिक्षा अपि तादृशा एव, धर्म्मयाने वा योजिता भज्यन्ते धृतिदुर्बला एभिः कारणैर्भज्यन्ते, रिद्धिरससातागुरुत्वात् , सबलशीलत्वात् , क्रोधनत्वात् , भिक्षाऽलसिकत्वात्, स्वपक्षपरपक्षमानभीरुकत्वाद्भज्यन्ते, अन्यैः अनुशास्यमानोऽपि अन्तरभाषया दोषोद्घट्टनान् कुरुते, आचार्याणां वचनं प्रतिकूलयति, कथं ?, क्वचित् प्रेष्यमाणो ब्रवीति-नासौ ममं जानाति, अथवा नासौ मम दास्यति, अथवा निर्गता सा एवमहं मन्ये, अन्यं तत्र प्रेष्यतां, प्रेष्यमानो प्रतिकूलयति, ततः स्वच्छन्दी सुखं विहरति, राजवेष्टिमिव मन्यमानो भृकुटिं कुर्वंति, आचार्येण वाचिता संगृहीता भक्तपानेन पोषिता जातपक्षा पलायंते हंसा इव दिशोदिशं, ततो आचार्या विचिंतयंति-खलुंकैः सह समागतः किं मम दुष्टशिष्यैः?, आत्मा मेऽवसीदति-‘ यादृशा मम शिष्यास्तु, तादृशा गलिगर्द्दभा । गलिगर्दभं परित्यज्य,दढं गृह्णात्यसौ तपः॥१॥आचार्यः मृदुगंभीरसुसमाहितः शीलसमाहितो विहरतीति,नयाःपूर्ववत् । सप्तविंशतितमं समाप्तम् ॥

उक्तं सप्तविंशतितमं, इदानीमष्टाविंशतितमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, सप्तविंशतितमे अशठता व्यावर्णिता, अष्टाविंशतितमे मोक्षमार्गोऽभिधीयते, मोक्षमार्गोऽशठस्यैव भवति, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद्व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे मोक्खमग्गगती-‘णिक्खेवो मोक्खंमि०’।।४९९-५००-५५५॥ इत्यादि, गाथाद्वयं, द्रव्यव्यतिरिक्तो निगलादिषु, भावमोक्खो-अट्ठविहकम्ममुक्को नायव्वो भावमोक्खो, ‘निक्खेवो मग्गंमि०’ ॥५०१-२।५५६॥ इत्यादि गाथाद्वयं, व्यतिरिक्तो जले स्थले वा, भावमार्गो ज्ञानदर्शनचारित्राणि, ‘निक्खेवो उ गतीए०’ ॥ इत्यादि गाथात्रयं (५०३-४५) व्यतिरिक्तं जीवानां ||२७१||

अध्ययनं -२७- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२८- “मोक्षमार्गगति” आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१२...] गाथा ||१०६१-१०९६|| दीप अनुक्रम [१०७६-११११]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ २९ सम्यक्त्वा. ||२७२||

पुद्गलानां वा गतिः, भावगती पंचप्रकारा, मोक्षगतीए अधिकारो, उक्तो नाम िष्पन्नो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद् यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं, सूत्रं चेदं- 'मोक्खमग्गगतिं तच्चं०' ||१०६१-५५६|| इत्यादि, सर्वं प्रायः प्रकटार्थं, तथापि यत्किंचिद्वक्तव्यं तदुच्यते, चत्तारि कारणा ज्ञानदर्शनचारित्रतपांसि चतुष्टयमपि, ज्ञानदर्शनलक्षणं कथं ?, येन ज्ञानदर्शनाभ्यां विना आत्मभावं न लभेत, गुणानामाश्रयो द्रव्यं, जीवद्रव्यस्य ज्ञानादयो गुणाः, अजीवद्रव्यस्य रूपादयः गुणा, द्रव्यासृताः पर्यायासृताश्च, पर्यायाः गुणाश्रिताश्च, धर्माधर्माकाशानि एकद्रव्यानी,न तेषां स्वतः प्रदेशकल्पना विद्यते,जीवाः पुद्गलाः कालाश्च अनन्तानि,वर्त्तनालक्षणः कालः बालयुवावृद्धत्वादिभिर्लक्षणैर्लक्ष्यते,पुद्गललक्षणं तत्रान्धकारआतपोद्योतादीनि, पर्यायलक्षणं एकत्वं पृथक्त्वं एकद्वित्र्यादिका संख्या संस्थानं-आकारविशेषः, संयोगवियोगौ, देवदत्तस्य गृहेण सह सम्बन्धः संयोगः, तस्माद् वियोगो विभागः, जीवादयस्तथ्याः पदार्थाः, तत्वा(थ्या)नां भावानां निसर्गादधिगमाद्वा शुद्धानां रुचिः सम्यग्दर्शनं, तद्दशप्रकारं निसर्गादि, कथं लक्ष्यते ?, तत्त्वानां भावानां गुणोत्कीर्त्तनेन सम्यग्ज्ञानानुष्टानेन व्यापन्नकुदर्शनवर्जनेन च लक्ष्यते, सम्यग्दर्शनविरहितं चारित्रं न भवति, दर्शनं तु चारित्रविरहितमपि भवति, तथा ज्ञानं च दर्शनरहितं न भवति, ज्ञानेनापि विना चारित्रं न भवति, ज्ञानादिगुणविरहितस्य मो क्षो न भवति, अमुक्तस्य च निर्वृतिर्नास्ति, सुखं नास्तीत्यर्थः, ज्ञानादीनां विषयं प्रदर्शयति ज्ञानेन सर्वपदार्थान् जानाति, दर्शनेन तानेव श्रद्धत्ते, चारित्रावस्थितस्यापूर्वपापग्रहणं न भवति, तपसा पूर्वोपात्तस्य कर्म्मणः क्षयं करोति । नयाः पूर्ववत् ॥ **अष्टाविंशतितमं मोक्षमार्गगतिनामकमध्ययनं समाप्तं ॥**

उक्तं अष्टाविंशतितमं, इदानीमेकोनत्रिंशत्तमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः?, अष्टाविंशतितमे मोक्षमार्गोऽभिहितः, एकोनत्रिंशत्तमे अवश्य-

निक्षेपादि शेषश्च दुष्टता च ||२७२||

अध्ययनं -२८- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -२९- “सम्यक्त्व पराक्रम” आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१३-८८] गाथा ||१०९७||

दीप अनुक्रम [१११२-११८८]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३० तपोमार्ग. ||२७३||

संवेगादि

मेवाप्रमादः करणीयः, स एव मोक्षमार्गः, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे अप्पमादज्झयणंति, आदानपदेनेदमध्ययनं सम्यक्त्वपराक्रममभिधीयते, गौणी संज्ञा अप्रमादश्रुतमिति, अन्ये तु वीतरागश्रुतमिति, तत्र द्रव्ये पत्रादिलिखितं, अथवा व्यतिरिक्तं सूत्रं पंचप्रकारं-अंडजादि, उक्तो नामनिष्फण्णो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः,अस्माद्यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं,सूत्रं चेदं-'सुतं मे आउसं! तेण'(१३सू०५७२)मित्यादि सर्वं, सम्यक्त्वसहितस्य पराक्रमः सम्यक्त्वपराक्रमः, पराक्रमः- उत्साहो, वक्ष्यमाणेषु प्रयोजनेषु उत्साहः करणीयः, प्रत्येककारणानि सिद्ध्यन्ति, संसारे स्थितश्च भवति संविग्नः, 'ओविजी भयचलनयोः' संसारोद्विग्नः, उक्तंच-' यथा मृगा मृत्युभयस्य भीता, उद्विग्नवासा न लभन्ति निद्राम् । एवं बुधा ज्ञानविबोधितात्मा, संसारभीता न लभन्ति निद्रां ॥१॥' संवेगेन कृतेन को गुणो भवति ?, तदुच्यते-' संवेगेणं भंते! (जीवे) किं जणयति?, गोयमा! संवेगेणं रुद्धा जणयति'(१५सू०५९८ एवं सर्वेषु पदेषु पुच्छानिबन्धनं वाच्यं,निव्वेतेण सातासौख्यात् गृहस्वजनबन्धाच्च निर्वेदं करोति, निर्विन्नः सन् धर्मे उद्यमं करोति, भावसत्यं प्रतिलेखनादिक्रियां यथोक्तां सम्यगुपयुक्तः करोति, योगा-मनोवाक्कायाः, सत्यमनोयोगः कर्त्तव्यः, नासत्यमनोयोगः, एवं वागपि, काये लंघनप्लवनडेवनादि न करोति, एवं यावत् संभोगभत्तपच्चक्खाणेणं अणियाट्टिं जणयति, अत्र प्रवृत्तौ प्रत्याख्यानशब्दो, यथा अम्बुव्रतो, अनिवृत्तिश्च तस्मिन् सयोगे भवति ' सेलेसी णं भंते ! किं जणयति ?, अकम्मताए जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति, ब्रवीमीति, नयाः पूर्ववत् ॥ समाप्तं एकोनत्रिंशत्तमम् ॥

उक्तं एकोनत्रिंशत्तमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, एकोनत्रिंशत्तमे अप्रमादो व्यावर्णितः, त्रिंशत्तमे तपोऽभिधीयते, तच्च तपः ||२७३||

अध्ययनं -२९- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -३०- "तपोमार्गगति" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||१०९८-११३४||

दीप अनुक्रम [११८९-१२२५]

तपोवर्णनं.

अप्रमादसहितस्यैव भवति, अनेन सम्बन्धेनायातस्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं (५१३-४-५-६।५९९) पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे तपोमार्गगती 'णिक्खेवो तु तवंमी' त्यादि, गाथाचतुष्टयं, व्यतिरिक्तो पंचतपादि, भावे द्वादशविधं तपः शेषं गतार्थं, उक्तो नामनिष्फण्णो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद् यावद् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं, सूत्रं चेदं- 'जहा य पावगं कम्मं' इत्यादि(१०९८।६००)सर्वं, 'तप संतापे' तपसो मार्गः तपोमार्गः, गमनं गतिः, तपोमार्गस्य गतिः २, तपो येन प्रकारेण क्रियते इत्यर्थः, यदि पूर्वं संवृताश्रवद्वारः ततः तपसा निःशेषं कर्म्म क्षपयति, प्राणिवधादीन्याश्रवद्वाराणि, अनशनं द्विविधं-इत्वरं यावत्कथितं च, इत्वरं चतुर्थादि, तदा अनेन प्रकारेण षड्विधं भवति श्रेण्यादि, चतुर्थषष्ठाष्टमादि षण्मासपर्यन्तसाना श्रेणी, श्रेणी श्रेण्या गुणिता प्रतरं भवति, प्रतरं श्रेण्या गुणितं घनं भवति, तदा घनो वर्गितो वर्गो भवति, सोऽपि वर्गः पुनरपि वर्ग्यते ततो वर्गवर्गो भवति, षष्ठोऽपि चित्तो नानाप्रकारो प्रकीर्णतपोऽभिधीयते, तदन्यत्राभिहितं, शेषं दशवैकालिकचूर्णौ अभिहितं, एवमेवं तु द्विविधं, जे सम्मं आयरे मुणी। से खिप्पं संसारा मुंचति पंडितेत्ति बेमि, नयाः पूर्ववत् ॥ इति त्रिंशत्तमं अध्ययनं समाप्तम्

उक्तं त्रिंशत्तमं, अथैकत्रिंशत्तमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः?, त्रिंशत्तमे तपोमार्गगतिरभिहिता, एकत्रिंशत्तमे चरणविधिरभिधीयते, तपसा च विना चरणं नैव सम्पूर्णं भवति, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्फण्णे निक्षेपे चरणविधिरिति, 'निक्खेवे चरणम्मि' इत्यादि गाथा पंच (५१७-८-९-२०-२१।६११) व्यतिरिक्ते चैत्यवन्दनको गच्छति, मोदकं भक्षयति, भावे पंचविधमाचारमाचरति, व्यतिरिक्ते इन्द्रियार्थानां विधिः, भावे संयमयोगस्य तपसश्च यो विधिः, उक्तो नामनिष्फ- ||२७४||

अध्ययनं -३०- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -३१- "चरणविधि" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता: आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||११३५-११५५|| दीप अनुक्रम [१२२६-१२४६]

ण्णो निक्षेपः॥ इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, असमाद् यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं, सूत्रं चेदं-‘चरणविधिं पवक्खामि’ इत्यादि (११३५) सर्वं, असंयमाद् विरतः, संयमे प्रवर्त्तनं, मंडलग्रहणाच्चातुरंतः संसारः परिगृह्यते, नारकतिर्यग्योनिमनुष्यामरभावः, पिंडेषणायां अवग्रहप्रतिमासु भयस्थानेषु ब्रह्मगुप्तिषु च एवं प्रतिक्रमणाणुसारेण ज्ञेयं, इत्येतेषु स्थानेषु यः प्रयत्नं करोति असौ संसाराद् विमुच्यते इति ब्रवीमीति, नयाः पूर्ववत् ॥ इति एकत्रिंशत्तमं अध्ययनं समाप्तम् ॥

उक्तं एकत्रिंशत्तमं, इदानीं द्वात्रिंशत्तमं, एकत्रिंशत्तमे चरणविधिरभिहिता, द्वात्रिंशत्तमे प्रमादस्थानान्यभिधीयंते, चरणं च अप्रमत्तस्यैव सम्पूर्णं भवति, अनेन सम्बन्धेनायातस्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्खेवे प्रमादस्थानं, ‘निक्खेवो उ पमाते’ इत्यादि गाथा अष्ट ॥ (५२२-३--४-५-६-७-८-९।६२०) ॥ व्यतिरिक्तो द्रव्यप्रमादः मद्यमधुप्रसन्नादि, भावप्रमादः निद्रा विकथा कषाये इन्द्रियाणां च कियास्थानं पूर्वोक्तं, तीर्थकराणां अप्रमत्तता व्यावर्ण्यते, ऋषभस्वामिनो वर्षसहस्रेऽपि संकलिज्जमाणे अहोरात्रं प्रमादः, वर्द्धमानस्वामिनः द्वादशसु वर्षेषु समधिकेषु संकलिज्जमाणे अन्तर्मुहूर्तं प्रमादो, ये पुनर्नित्यं प्रमादास्ते संसारसागरं पर्यटन्ति, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपो, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, असमाद् यावत् सूत्रं निपतितं तावद् वक्तव्यं, सूत्रं चेदं-‘अच्चंतकालस्स०’॥११५६-६२२॥ इत्यादि, सर्वं, अत्यन्तकालः अतीतोऽनागतो वर्त्तमानः परिगृह्यते, समूलस्य सर्वदुःखस्य यः प्रमोक्षस्तस्य, सर्वमूलस्येति दुःखस्य मूलं कर्म्म, कर्म्मणो मूलं रागद्वेषौ, तौ छित्त्वा भवति मोक्षो तन्मे प्रतिपादयितुः एकान्तहितं शृणुत, स मोक्ष एवं भवति ज्ञानप्रभावनया अज्ञानमृषावर्जनेन रागद्वेषक्षयेण गुरुवृद्धसेवया बालजनवर्जनेन स्वाध्यायेन धृत्या च भवति, तथा आहारेण मितेन एषणीयेन च, निपुणार्थे बुद्धिर्यस्य स सेव्यो गीतार्थः, निकेतनं-स्थानं, तद्विवेकयोग्यं समाधि-

अध्ययनं -३१- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -३२- “प्रमादस्थान” आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||११५६-१२६६||

दीप अनुक्रम [१२४७-१३५७]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३३ कर्म प्रकृत्य० ||२७६||

कामो भजते, रागद्वेषौ कर्म्मबीजं, मोहप्रभवं कर्म, कर्म च जातिमरणस्य मूलं, जातिमरणं दुःखमूलं, रागद्वेषौ मोहश्च यथा उद्ध्रियते प्रमादवर्जनं
तमुपायं वक्ष्ये, रसा ते कामं न निषेवणीया, आसेविता दीप्तिकरा भवन्ति, प्रीणितं कुर्वन्तीत्यर्थः, प्रीणितं च कामा समभिद्रवन्ति,
द्रुमं यथा स्वादुफलं हि पक्षिणः, यथा दवाग्निः प्रचुरेंधनः समारुतो नोपशमं गच्छति, तथेन्द्रियाग्निरपि प्रकामभोजने शमं न
गच्छति, विविक्तशय्यासनयंत्रितानां ओमासणाणं दमितेन्द्रियाणां रागादयो नाभिभवन्ति चित्तं, पराजितो व्याधिरिवौषधीभिः
ये इन्द्रियाणां विषया मनोज्ञा न तेषु रागं करोति, अमनोज्ञेषु च द्वेषं, तदाऽसौ समो भवति, चक्षु रूपं गृह्णाति, रूपेणापि गह्यते
चक्षुः, रूपेषु यो गद्धिमुपैति तीव्रां स शीघ्रमेव विनश्यति, आलोकलोलो यथा पतंगः, रूपानुगतोऽसौ चराचरप्राणिनो हिनस्ति,
तस्माद्रागानुगतस्य परिग्रहो दोषः, यस्य जायते परिग्रहादत्ताहारित्वं ततो मृषावादः, एवं रागद्वेषानुगतो बहुकर्म्मसंचयो भवति,
रूपाद्विरक्तो विशोको भवति, दुःखौघपरंपरेण च न लिप्पते, जलेन वा पद्मिनीपत्रं, एवं श्रोत्रघ्राणजिह्वास्पर्शा, विनाशमागच्छति
इहलोके परलोके च, इहलोके तावत् शब्दान् मृगो घ्राणान्मधुकरः मच्छो जिह्वया गजो स्पर्शेन, इहलोके एवं विनाशमागच्छन्ति,
निश्चयेन न ते दोषमुत्पादयन्ति, किन्तु यस्तेषु रागं द्वेषं वा करोति स बध्यते, एवं क्रोधादयोऽपि कर्म्मबन्धहेतवो भवन्ति, यः
पुनर्विरक्तभावः स कर्म्मबन्धेन न लिप्यते, ततः शुभाध्यवसायिनः क्षपकश्रेण्यनुप्रवेशः, ततः क्रमेण मोहनीयज्ञानावरणीयदर्शनावरणी-
यांतरायेषु क्षयं गतेषु केवलं-सम्पूर्णं ज्ञानमुत्पद्यते, तत आयुषः क्षयात् सादिकमनन्तमव्याबाधं निर्वाणसुखं प्राप्नोति, एवं अनादि- ||२७६||
कालप्रभवस्य मोक्षो व्याख्यातः, येन अत्यन्तसुखिनः सत्त्वा भवन्ति। इति ब्रवीमि, नयाः पूर्ववत्॥ समाप्तं द्वात्रिंशत्तममध्ययनं॥
उक्तं द्वात्रिंशत्तमं, इदानीं त्रयस्त्रिंशत्तमं उच्यते, तस्य कोऽभिसम्बन्धः?, द्वात्रिंशत्तमे प्रमादोऽभिहितः, त्रयस्त्रिंशत्तमे कर्म्मा-

अध्ययनं -३२- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -३३- "कर्मप्रकृति" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||१२६७-१२९१|| दीप अनुक्रम [१३५८-१३८२]

ण्यभिधीयन्ते, प्रमादवशगो जीवः कर्म्म बध्नाति, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे कम्मपगडी 'कम्मंमि निक्खेवो०'॥ इत्यादिगाथा अष्ट (५३०.१-२-३-४-५-६-७|६४० निर्युक्तौ)) व्यतिरिक्तं कर्म्म द्रव्यं च नोकर्म्मद्रव्यं, अनुदयः कर्म्मणो, नोकर्म्मद्रव्यं लेप्यकर्म्मादि, भावे कर्म्मणां उदयः, व्यतिरिक्तो द्रव्यप्रकृतिः कर्मणो कर्माभ्यां कर्मणि अनुदयः, नोकर्म्म ग्रहणप्रायोग्यानि मुक्तानि द्रव्याणि, भावे मूलोत्तरप्रकृतीनां उदया,– पयतिट्ठिति अणुभागो पदेसकम्मं च सुट्ठु णाऊणं । एतेसि संवरे खलु खवणे उ सयाति जइतव्वं॥१॥ उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद्यावत्सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं, सूत्रं चेदं-'अट्ठ कम्माइं वोच्छामी' त्यादि(१२६७-६४१) सर्वे, तेषां कर्म्मणां चतुःप्रकारो बन्धो भवति प्रकृतिबन्धः स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध प्रदेशबन्ध इति, प्रकृतिशब्देन स्वभावो भेदश्चाभिधीयते, स्थितिः कालावस्थानं, अनुभावो यो यस्य कर्म्मणः शुभो अशुभो वा विपाकः, प्रदेशबन्धः जीवप्रदेशानां कर्म्मपुद्गलानां च सम्बन्धः, तत्र प्रकृतिबन्धो द्विविधः मूलोत्तरभेदः, अष्टौ मूलप्रकृतयः, तद्यथा-ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयं आयुष्कं नामं गोत्रं अन्तरायामिति, ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीयं, दर्शनमावृणोतीति दर्शनावरणीयं, वेदनां करोतीति वेदनीयं, मुह्यतीति मोहनीयं, येन नारकादिभावस्तिष्ठति तदायुष्कं, गतिजात्यादिभिः प्रकारैर्नामयतीति नाम, प्रधानमप्रधानं वा करोतीति गोत्रं, अन्तरायं करोतीति अन्तरायिकं, इदानीं उत्तरप्रकृतयोऽभिधीयंते-ज्ञानावरणं पंचप्रकारं आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि, एषामावरणं, दर्शनावरणं नवभेदं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानि तेषामावरणं, निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानार्द्धिरिति, एषामुदयं करोतीति, वेदनीयं सातमसातं च, तयोरुदयं करोतीति, मोहनीयं अष्टाविंशतिभेदं, तत्समासतो द्विविधं-दर्शनमोहं चरित्तमोहं, दर्शनमोहं ॥२७७॥

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||१२६७-१२९१||

दीप अनुक्रम [१३५८-१३८२]

सप्तभेदं अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं मिथ्यात्वं, चरित्तमोहनीयं एकविंशतिभेदं अप्रत्याख्यानाः क्रोधादयश्चत्वारः प्रत्याख्यानावरणा क्रोधादयश्चत्वारः संज्वलनक्रोधादयश्चत्वारः हास्यरत्यरतिभयशोकजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा, एषामुदयादेतानि भवन्ति, आयुष्कं चतुर्भेदं नरकतिर्यग्योनिमनुष्यदेवानि, एषामुदयात्, नाम द्विचत्वारिंशद्भेदं शुभमशुभं च अनयोरुदयात्, गोत्रं द्विविधं, शुभमशुभं च अनयोरुदयात्, अन्तरायं पंचप्रकारं— दानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च, एतान्यपि तदुदयादेव भवंति । इदानीं स्थितिबन्धोऽभिधीयते- णाणावरणीयस्य स्थितिः जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं उत्कृष्टेन त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोट्यः त्रीणि च वर्षसहस्राणि आबाधा अंतरं भवति, बाधृ लोडने, न बाधा अबाधा, तत्र उदयो न भवतीत्यर्थः, तैश्च सत्स्थितिरूना भवति, एवं दर्शनावरणीयान्तराययोः, वेदनीयस्थितिर्जघन्येन द्वादश मुहूर्त्ता उत्कृष्टेन त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः, शेषं तदेव, मोहनीयं द्विविधं-दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं च, दर्शनमोहनीयं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं उत्कृष्टेन चत्वारिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः, चत्वारि वर्षसहस्राण्याबाधा अन्तरं भवति, शेषं तदेव चारित्रमोहनीस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं उत्कृष्टेन सप्ततिः सागरोपमकोटाकोट्यः, सप्त वर्षसहस्राणि आबाधा अन्तरं भवति, शेषं तदेव, आयुष्कस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि, नामगोत्रयोर्जघन्येन अष्टौ मुहूर्त्ता, उत्कृष्टेन विंशतिः सागरोपमकोटाकोट्यः, वर्षसहस्रद्वयं आबाधा अंतरं भवति, शेषं तदेव । ईर्यापथस्य कर्म्मणः स्थितिर्जघन्येन उत्कृष्टेन च समयः, अनुभावप्रदेशबन्धौ पूर्वोक्तौ, कर्म्मबन्धकरणानां संवरः करणीयः, बद्धानां क्षपनं प्रति यत्नः करणीय इति, ब्रवीमि, नयाः पूर्ववत् ॥ इति त्रयस्त्रिंशत्तममध्ययनं समाप्तम् ॥ ||२७८||

उक्तं त्रयस्त्रिंशत्तमं, इदानीं चतुस्त्रिंशत्तमं उच्यते, तस्य कोऽभिसम्बन्धः? , त्रयस्त्रिंशत्तमे कर्मोक्तं, चतुस्त्रिंशत्तमे तत्कारणभूता लेश्या,

अध्ययनं -३३- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -३४- "लेश्या" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||१२९२-१३५२||

दीप अनुक्रम [१३८३-१४४३]

अनेन सम्बन्धेनायातस्याध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्पन्ने निक्षेपे लेसज्झयणं, 'लेसाणं निक्खेवो०' (५३८-४७नि०६५१)इत्यादि गाथा दश,व्यतिरिक्ता द्रव्यलेश्या द्विविधा-कर्म्मलेश्या अकर्म्मद्रव्यलेश्या,अकर्म्मद्रव्यलेश्या द्विविधा-जीवानामजीवानां च, जीवलेश्या भव्याभव्ययोः, सा सप्तविधा,कृष्णादयः, सप्तमा संयोगजा, लेश्याप्रायोग्यद्रव्याणि परिगृह्यन्ते,जोगा बज्झा बज्झंतगा य पत्ता उदीरणावालियं।(५४८)जीवलेश्या द्विविधा चन्द्रादि ग्रन्थत एव ज्ञायन्ते, कर्मद्व्यलेश्या षड्विधा कृष्णादि, अत्रापि जीवसंबद्धानि द्रव्याणि परिगृह्यन्ते,भावलेश्या द्विविधा-विशुद्धा अविशुद्धाः,उपशमे क्षये च, शेषं गतार्थं, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः,इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः,अस्माद्यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं, सूत्रं चेदं-'लेसज्झयणं पवक्खामी०' ॥१२९२-६५२॥ इत्यादि,सर्वं,लेश्यानां दश कारणानि नामादीनि वक्तव्यानि,कृष्णलेश्यावर्णःजीमूतो-मेघ,स च स्निग्धः,गवलं-महिषं शृंगं, रिष्ठो-द्रोण-काकः,कापोते कोइलछगो तेलंकरका,रसा जह कडुगतुंबगादी,गंधा गोमडाती,स्पर्शा जहा करगयादि,परिणामो उत्तमाधममध्यमास्त्रिविधः, स एव त्रिभिर्गुणितो नवभेदो भवति, नव त्रिभिर्गुणिताः सप्तविंशतिः, सप्तविंशति त्रिभिर्गुणिता एकाशीति एकाशीतिस्त्रिभिर्गुणिता द्वे शते चत्वारिंशे भवतः, कृष्णाद्यास्तिस्रो लेश्या दुर्गतिगमनाय भवन्ति, लेश्यापरिणामस्य आदिसमये अन्तसमये वा न कश्चित् म्रियते, यदा तु अन्तर्मुहूर्तें गते शेषे वा भवति तदा परभवं गच्छति, अपसत्थाओ परिवज्जेजा, पसत्थाओ अहेट्ठए मुणित्ति, बेमि, नयाः पूर्ववत् ॥ इति चतुस्त्रिंशत्तमं अध्ययनं समाप्तम्

उक्तं चतुस्त्रिंशत्तमं, इदानीं पंचत्रिंशत्तमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, चतुस्त्रिंशत्तमे लेश्याऽभिहिता, पंचत्रिंशत्तमे अणगार-गुणा अभिधीयन्ते, अनगारश्च अप्रशस्तलेश्याविरहितो प्रशस्यलेश्यायुक्तो भवति, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्याध्ययनस्य अनु- ||२७९||

अध्ययनं -३४- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -३५- "लेश्या" आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णि:

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||१३५३-१३७३||

दीप अनुक्रम [१४४४-१४६४]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३६ जीवाजीवः ||२८०||

प्रमादवर्जनं

योगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिष्फण्णे निक्षेपे अणगारमग्गगती 'अणगारे निक्खेवो०' ॥५४९-५०।६६३॥ इत्यादि गाथात्रयं, व्यतिरिक्तं निह्नवादि, भावे सम्यग्दृष्टिः अगारवासाद्विनिर्मुक्तः, उक्तो नामनिष्फण्णो निक्षेपः। इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः, अस्माद्यावत् सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं,सूत्रं चेदं-'सुणेह मे एगमणे' इत्यादि (१३५३-६६८)सर्वं 'पंज संगे' एसो संगं ज्ञात्वा परिवर्जयेत् , एकान्ते, परेण आत्मार्थकृते वासं तत्राभिरोचयेत्, नैव स्वयं गृहाणि कुर्वीत नैव कारापयेत् नैवानुजानीयात, यस्मात्तत्र त्रसस्थावराणां दृश्यते वधः, तथा भक्तपाने च करणकारणाणुमोदने त्रसस्थावराणां वधः, इन्धनं प्राप्य विसर्प्पते अग्निं, सर्वतो धारश्च, संयमयात्रार्थं भुञ्जीत, न रसार्थं, न वन्दनपूजनादि प्रार्थयेत् , धर्म्मशुक्ले ध्याने सदा ध्यायेत्, पश्चिमे काले आहारपरित्यागं कृत्वा, 'निर्ममो निरहंकारो, वीतरागो निराश्रवः। संप्राप्य केवलं ज्ञानं, शाश्वतं परिनिर्वृतः ॥' इति ब्रवीमि, नयाः पूर्ववत्। इति पञ्चत्रिंशत्तमं अध्ययनं समाप्तम् ॥

उक्तं पञ्चत्रिंशत्तमं, इदानीं षट्त्रिंशत्तमं, तस्य कोऽभिसम्बन्धः ?, पञ्चत्रिंशत्तमे अनगारगुणा अभिहिताः, षट्त्रिंशत्तमे जीवाजीवविभक्तिरभिधीयते, अणगारेन च जीवाजीवविभक्तिर्ज्ञातव्या, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य अध्ययनस्यानुयोगद्वारचतुष्टयं पूर्ववद् व्यावर्ण्य नामनिप्पन्ने निक्खेवे जीवाजीवविभक्तिः, 'निक्खेवो जीवंमि०'॥ (५५२-३।६७१)। इत्यादि गाथाद्वयं, व्यतिरिक्तं गुणपर्यायवियुक्तं जीवद्रव्यं, भावे गुणपर्यायसहितं, जीवपरिणामो दशविधः पंचेन्द्रियाणि क्रोधादयश्चत्वारः मनश्च, सहवर्त्तिनो गुणाः, क्रमवर्त्तिनः पर्याया,गुणाःप्रशस्ताःअप्रशस्ताश्च,प्रशस्ता ज्ञानादयो,अप्रशस्ता क्रोधादयः,पर्याया नरकादिभवाः,'निक्खेवो उ अजीवे०' ॥५५४-५।६७१॥ इत्यादि गाथाद्वयं,व्यतिरिक्तं गुणरहितं अजीवद्रव्यं, भावे गुणपर्यायसहितं अजीवद्रव्यं, परिणामो दशविधः शब्द-

||२८०||

अध्ययनं -३५- परिसमाप्तं

अत्र अध्ययन -३६- "अणगारगुण" आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||१३७४-१६४०||

दीप अनुक्रम [१४६५-१७३१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३६ जीवजीवा: ||२८१||

अधिकारी-तरे

रूपस्पर्शरसगन्धाः शुभा अशुभाश्च । 'निक्खेवो विभत्ती' इत्यादि गाथा सप्त (५५६-६२।६७१) विभजनं विभक्तिः, जीवानामजीवानां च भेदप्रत्याख्यापनं, जीवानां सिद्धानां असिद्धानां च, अजीवानां रूपीणामरूपीणां च, भावे भावानां विभक्तिः भावविभक्तिः, भावानां भेदप्रत्याख्यापनं, अत्राधिकारः जीवद्रव्यविभक्त्या अजीवद्रव्यविभक्त्या च, जे इति निर्देशे, किलशब्दः परोक्षवाची, एवं किल आचार्याः कथयन्ति-ये भव्यास्तेषामपि ये परीतसंसारिणो-भवाष्टाभ्यन्तरे सेत्स्यन्तो, पुनरपि भव्यग्रहणं येषां तदावरणीयकर्म्मणां क्षयोपशमो विद्यते,किल पठन्ति धीरा छत्तीसं उतरज्झाए,तम्हा जिणपण्णत्ते अणंतगमपज्जवेहिं संजुत्ते। अज्झाये जहजोग्गं गुरुप्पसाया अहिज्जंति॥१॥येषां सिद्धिर्भविष्यति, ये च गंठियसत्वा रागद्वेषबहुला ये च अणंतसंसारिणःते संकिलिट्ठकम्मा कर्मभिः ओतप्रोताः ते अयोग्याःउत्तराध्ययनानां,तस्माज्जिनप्रज्ञप्तं अनन्तगमपर्यायैः संयुक्तं तं स्वाध्याययोगेन यथायोगं यथाविधिं युञ्जीत, यो यस्याध्ययनस्य योगः तेन गुरुप्रसादादधीते,उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः। इदानीं सूत्रालापकस्यावसरः,अस्माद्यावत्सूत्रं निपतितं तावद्वक्तव्यं, सूत्रं चेदं-'जीवाजीवविभत्ती०' ॥१३७४ ६७२॥ इत्यादि,सर्व, विभजनं विभक्तिः,भेदप्रत्याख्यापनमित्यर्थः, शृणुत तां मम, क एवमाह-सुधर्मस्वामी जम्बूनामं ब्रवीति, तं०-जीवाजीवात्मको लोकः, स च क्षेत्रकालभावादिभिरनुगन्तव्यः, अजीवाऽरूविणो दशविधा, धम्मत्थिकायाधर्मास्तिकायः सम्पूर्णः परिगृह्यते, देशः त्रिभागचतुर्भागादि, प्रदेशो निरंशः एव धर्मास्तिकायः, आकाशं च, कालो, दशधा, धर्म्माधर्मौ लोकालोकप्रमाणं, समयक्षेत्रे कालः, द्रव्यार्थिकनयाभिप्रायात्सर्वं अनाद्यपर्यवसितं, पर्यायार्थिकस्य सादिपर्यवसितं, रूपिणश्चतुर्विधा, स्कन्धो अचित्तमहास्कन्धादि सम्पूर्णः परिगृह्यते, देशस्त्रिभागचभतुर्भागादि, प्रदेशोऽसंख्येयतमोऽनन्ततमो वा प्रदेशः, परमश्चासावणुश्च परमाणु, निरंशः, क्षेत्रतः स्कन्धा, परमाणवः, लोकालोकौ भजनीयौ, कालतः ||२८१||

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||१३७४-१६४०|| दीप अनुक्रम [१४६५-१७३१]

श्रीउत्तरा० चूर्णौ ३६ जीवाजीवः ||२८२||

अजीव-भेदाः

सन्ततिं प्राप्य अनाद्यपर्यवसिताः, रूपिअजीवानां स्थितिर्जघन्येन समयः उत्कृष्टेन असंख्येयः कालः, अन्तरं जघन्येन समय उत्कृष्टेन अनन्तः कालो, भावतो वर्णगन्धरसस्पर्शसंस्थानादि परिणामः, वर्णः कृष्णादि, गन्धः सुरभ्यादि, रसः तिक्तादि, स्पर्शः कक्खडादि, संस्थानं परिमण्डलकादि, इदानीं संयोगः क्रियते-वर्णतो ताव किण्हे भयिते. स तु गन्धतो रसतो फासतो चेव भयिते, संठाणातोवि य, एवं नीललोहितहालिद्दसुक्किल्लसंठाणे भजना, संयोगः कर्त्तव्य इत्यर्थः, एवं वन्नगन्धरसफाससंठाणेहिं संजोया कायव्वा, एषा अजीवविभक्तिः समासतो व्याख्याता। इदानीं जीवविभक्तिरुच्यते-जीवा द्विविधाः-सिद्धा संसारिणश्च, सिद्धा परमार्थत एकाकारा एव, पूर्वभावप्रज्ञापनां प्रतीत्य भेदा अभिधीयंते-'इत्थी पुरिस सिद्धा य, तहेव य नपुंसगा। सलिंगे अन्नलिंगे य, गिहलिंगे तहेव य ॥१॥ उक्कोसियाए ओगाहणाए तह मज्झिमाए य। जहन्नाए य उड्ढं, अहो य तिरियं समुद्दंमि ॥२॥ दस चेव नपुंसेसु, वीसति इत्थीयासु य। पुरिसेसु अट्ठसतं, समएणेगेण सिज्झंति ३॥चत्तारि य गिहलिंगे, अण्णलिंगे दसेव य। सेणिमि य अट्ठसए, समएणेगेण सिज्झति ॥ ४ ॥ द्रव्यलिंगं प्रतीत्य इदमभिहितं, भावलिंगेन विना नास्ति सिद्धिः, उक्कोसयाए ओगाहणाए सिज्झंती जुगवं चेव। चत्तारि जहण्णा य जुगवं अट्ठुत्तरं सतं ॥ ५ ॥ चतुरो उड्ढलोगंमि, वीसपुहुत्तं अहे भवे। सतं अट्ठुत्तरं तिरिए, एगसमएण सिज्झती ॥४॥ दुवे समुद्दे सिज्झंति, सेसजलेसुं न यो(चउ)जणा। एसा उ सिज्झणा भणिता, जीवभावं पडुच्च उ॥७॥ संसारत्था जीवा द्विविधा-त्रसाः स्थावराश्च, स्थावरा तिविहा जीवा- पृथिवी आपो वनस्पति इति, त्रसा द्विविधा- तेजो वायवश्च कीर्त्तिता, द्वीन्द्रियादयश्चतुर्विधाः, एषां भेदः भवस्थितेः आयु इतरं च विज्ञेयं ग्रन्थानुसारेणेति, जीवमजीवे एते णच्चा सद्दहिऊण य सव्वन्नूसंमतंमी जएज्जा, संजमे विदू एसेज्जा, तेणोवगते कालं किच्चाण संजते सिद्धे वा सासते भवति देवे वावि महिड्ढिए॥ इति पादुकरे बुद्धे,

||२८२||

प्रत सूत्रांक [८८...] गाथा ||१३७४-१६४०|| दीप अनुक्रम [१४६५-१७३१]

णातते परिनिव्वुते। छत्तीसं उत्तरज्झयणे,भवसिद्धिय सण्णिये॥१॥त्ति,इति परिसमाप्तौ उपप्रदर्शने च,प्रादुः प्रकाशे,प्रकाशीकृत्य-प्रज्ञाप-यित्वा बुद्धः-अवगतार्थः ज्ञातकः-ज्ञातकुलसमुद्भवः वर्द्धमानस्वामी, ततः परिनिर्वाणं गतः, किं प्रज्ञपयित्वा ?, षट्त्रिंशदुत्तराध्ययनानि भवसिद्धिकसंमतानि-भवसिद्धिकानामेव संमतानि, नाभवसिद्धिकानामिति, ब्रवीम्याचार्योपदेशात्, न स्वमनीषिकया, नयाः पूर्ववत् ॥

वाणिजकुलसंभूओ, कोडियगणिओ उ वयरसाहीतो। गोवालियमहत्तरओ, विक्खाओ आसि लोगंमि ॥ १ ॥
ससमयपरसमयाविऊ ओयस्सी दित्तिमं सुगंभीरो। सीसगणसंपरिवुडो वक्खाणरतिप्पिओ आसी ॥ २ ॥
तेसिं सीसेण इमं, उत्तरज्झयणाण चुण्णिखंडं तु । रइयं अणुग्गहत्थं, सीसाणं मंदबुद्धीणं ॥ ३ ॥
जं एत्थं उस्सुत्तं, अयाणमाणेण विरतितं होज्जा । तं अणुओगधरा मे, अणुचिंतेउं समारेंतु ॥ ४ ॥

षट्त्रिंशोत्तराध्ययनचूर्णी समाप्ता, ग्रन्थाग्रं ॥ ५८५० ॥ उत्तराध्ययनचूर्णिः संमत्ता ॥

अध्ययनं -३६- परिसमाप्तं

उत्तराध्ययनचूर्णिः परिसमाप्ता

प्रत सूत्रांक [--] गाथा ||--||

दीप अनुक्रम [--]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिताः आगमसूत्र-[४३] मूलसूत्र-[०३] उत्तराध्ययन-निर्युक्तिः एवं जिनदासगणिरचिता चूर्णिः

||२८४||

इति श्रीउत्तराध्ययनानां षट्त्रिंशतश्चूर्णिः

❋ समाप्ता ❋

||२८४||

मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुनः संपादिता (आगमसूत्र ४३)

“उत्तराध्ययन-चूर्णिः” परिसमाप्ताः

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

भाग-7

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“उत्तराध्यनानि मूलसूत्र” [निर्युक्ति एवं जिनदासगणि-रचिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

“उत्तराध्ययन” निर्युक्ति: एवं चूर्णि: नामेण

परिसमाप्ता

सचूर्णिक-आगम-सुत्ताणि श्रेणि, भाग-७ [आगम-४३]

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सचूर्णिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

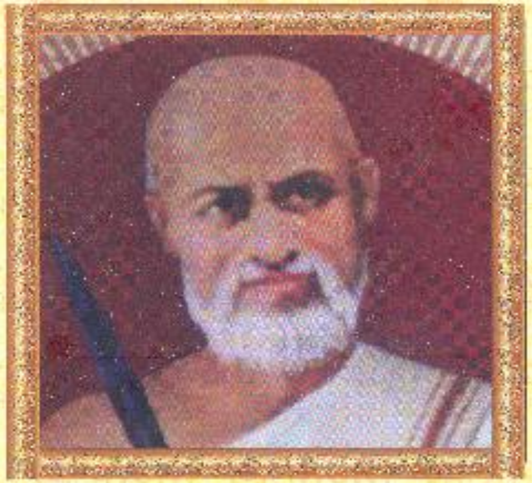

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

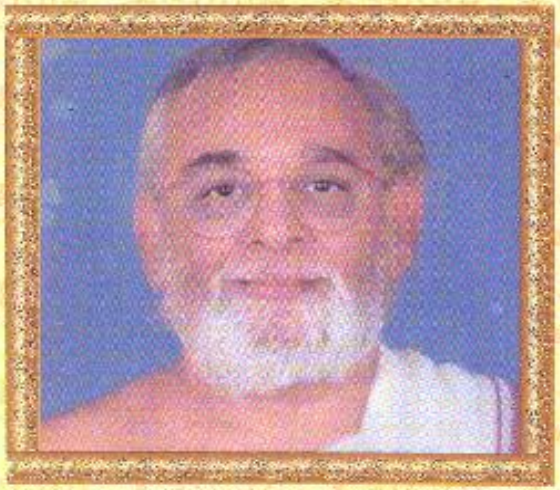

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

सच्चारित्र चूड़ामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब

श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब पचास साल पहेले परम पूज्य स्व र्गस्थ गच्छाधिपति आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है |

इस संघमें पूज्य साधू -भगवंत एवं साध्वी -महाराज के लिए उपाश्रय भी है , जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओ को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है | इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है | ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्भावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है |

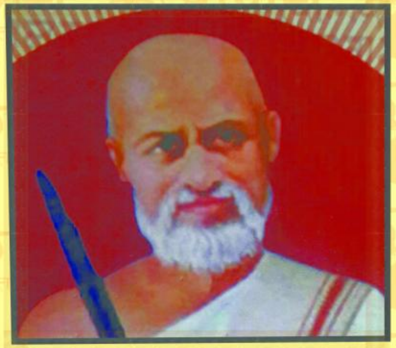

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम - ४३

“उत्तराध्ययन” निर्युक्ति एवं चूर्णि:

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**
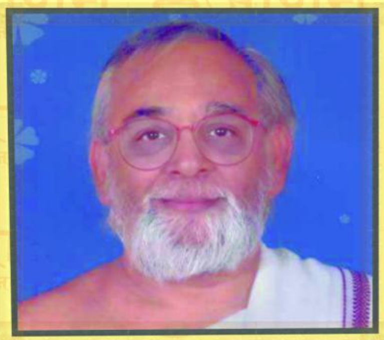
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]